Durga Sah Municipal Library
Naini Tal
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class No. 891.3
Book No. SK906 ll
Rcy No. 4646

उभरते खण्डहर

श्रीराम शर्मा 'राम'

हिन्दी प्रचारक-पुस्तकालय

वाराणसी–१

संस्करण
[फरवरी, १

मूल्य : पाँच रुपये

Durga Sah Municipal Library
NAINITAL.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाईब्रेरी
नैनीताल
Class No. 891.3
Book No. Sh 906 U
Received on Aug 1957
4646

प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी–१
मुद्रक : ज्योतिष प्रकाश प्रेस,
कालभैरव मार्ग, वाराणसी
आवरण- विद्यामन्दिर प्रेस, (प्राइवेट) लि०
मुद्रक : मानमन्दिर, वाराणसी—१
आवरण : कांजिलाल

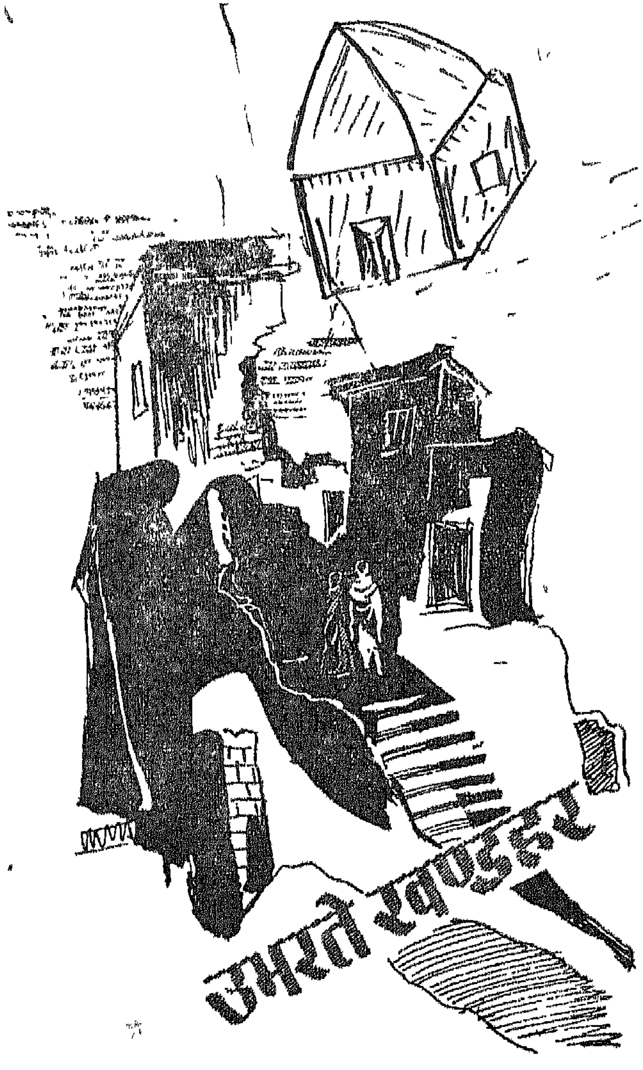
उभरते खण्डहर

उभरते खण्डहर

धू-धू करती हुई चिता के समान वह नगरी जल उठी! मनुष्य-समाज की परम्परायें, रीतियाँ और स्नेह-सम्बन्ध मानो क्षार-क्षार हो गये। लगा कि मताओं के स्तन का दूध सूख गया। मानव-मन की ममता मिट गयी। चारों ओर कोलाहल......वीभत्स शोक! निःसन्देह, यह स्पष्ट था कि उन दारुण-घड़ियों में इन्सान के सांस्कृतिक सम्बन्धों की कड़ियाँ टूट गयी थीं। मानव का खून......बच्चों की हत्या .....ऐसे रोमांचकारी दृश्य को देख, जैसे धरती भी चीख उठी थी। वह इन्सान के खून से शराबोर हो गयी थी। उस अवस्था में मनुष्य, पशु बन चुका था। वह हिंसक पशु इन्सान का भक्षण करने पर उतारू हो गया था। छोटे और दूधमुँहे बच्चे गेंद के समान उछाल कर जलती हुई आग में फेंक दिये जाते थे। निर्लज्ज इन्सान असहाय नारियों की लज्जा का नग्न-प्रदर्शन करने पर भी उतारू हो गया था। फलस्वरूप, नगरी के उस विषाक्त बने हुए वातावरण में सभी का दम घुट रहा था। बाहर शोर था और घरों में मौत सरीखा भयानक सन्नाटा! सदियों से चले आये इन्सान के समाज का नाता मानो एक धोखा था .....वह भ्रम-जाल था। अतएव, मानव कराह उठा था। अपने ही पराये बन गये थे। इन्सान मानो दिशा-भ्रष्ट बन कर सन्तप्त हो उठा था .....!

इस प्रकार सर्वत्र मानव की चीख थी और उसके चारों ओर अंधेरा था। अन्य रातों के समान जब एक और रात आई, तो मानो उसने भी डायन का रूप धारण कर लिया था। उस काले परदे में कितना शोर था, कैसा दारुण चीत्कार था, आह! मानो इन्सान का इतिहास झूठा बन चुका था। मानव क्रूर और मदान्ध बनने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उस काली रात में, उस विशाल नगरी की जलती हुई आग की लपटों के नीचे कितनी दुर्गन्ध उठ रही थी, उसे देख कर, बरबस ही, कलेजा मुँह को आ जाता। केवल इतना ही दीखता कि मानव जल रहा था...जलाया जा रहा था......

उस विकराल तथा विषम बनी हुई रात में एक परिवार जिसमें दो युवा लड़कियाँ, एक बच्चा और वृद्ध माँ-बाप थे, सहमे हुए नगर के उस सू-

खण्ड पर पड़े थे कि जहाँ दो दिन पूर्व एक विशाल भवन खड़ा था। आक्रान्ताओं ने वह भवन जला दिया था। उसके अभिभावकों को मार दिया गया था। उस भवन की श्री को लूट लिया था। अतएव, उसी खण्डहर हुए भवन की ओट में पूरा दिन इस परिवार ने छिप कर बिताया। किन्तु जब रात आई, तो उन्होंने उस खण्डहर का भी आश्रय छोड़ दिया। क्योंकि परिस्थिति ऐसी थी कि किसी समय भी इन्सान के वेष में खूनी भेड़िये वहाँ भी पहुँच सकते थे। वह उस परिवार को पकड़ सकते थे। एक का दूसरे के समक्ष ही वध कर सकते थे। ऐसी विषम परिस्थिति में अपने उस सहमे हुए प्राणों को समेटे, वह परिवार जब उस खण्डहर का आश्रय छोड़ कर नगर से बाहर चला, तो किसी सदस्य में भी इतना बल नहीं था कि वह पौरुष से काम ले। आगे का रास्ता पकड़े। धैर्य और सन्तोष प्राप्त कर सके। किन्तु उन्हें चलना ज़रूर था। उनकी आँखों के समक्ष ही नगर जल रहा था। चारों ओर चीत्कार उठ रहा था। मानव कराह रहा था। वह पीड़ा से भर अपना सिर पटक रहा था। नृशंसता के साथ उसका वध किया जा रहा था। ऐसे दारुण दृश्य को देख, वहाँ नहीं टिका जा सकता था। वह निरापद स्थान आश्रय नहीं बन सकता था। कदाचित इसीलिए वह भयातुर परिवार जब नगर से बाहर निकला, तो एक बार फिर उसने परमात्मा का धन्यवाद किया। चारों ओर सायँ-सायँ करती हुई हवा, सामने अन्धा और बीहड़ जंगल, वह उसी में प्रवेश कर गया।

उसी समय एक लड़की ने चीख भरी। वृद्ध रुक गया। उसने ममता-भरे स्वर में प्रश्न किया—'क्या हुआ बेटी ?'

लड़की का नाम कमला था। वही बड़ी सन्तान थी। उसने कहा—'पिताजी, काँटा चुभ गया !'

पिता ने सिर के ऊपर तारों भरे आसमान की ओर देखा। साँस भरी और कहा—'काँटा क्या, तुम्हारी गर्दन पर तो नंगी तलवार लटक रही है, बेटी ! आपत्ति सिर पर है। आँधी अभी शेष है।'

कमला फिर चल पड़ी। पिता की बात मानो कडुवे ग्रास की तरह उसके गले में अटक गयी। पथ पर चलते हुए वह बोली—'आप तो प्रायः कहा करते थे पिता जी कि आदमी खूँखार है, भेड़िया है पर मैं नहीं मानती थी कि इस

इन्सान का स्वार्थ इस तरह भी बोलता है कि अपनी सभी रूढ़ियों को भूल जाये।' उसने साँस भरी और कहा—'पर मैंने इन दो दिनों में यही देखा।' इतने समय में हमने क्या कुछ नहीं देखा, पिताजी!'

कमला के पिता पचास वर्ष से ऊपर की आयु के हो चले थे। दो दिन पूर्व वह समाज के विचारवान और शोभावान पण्डित कहलाते थे। नगर में सर्वत्र उनका सम्मान था। वे शरीर से पुष्ट थे। परन्तु उन दो दिन से उनके पेट में कोई आहार नहीं गया। उस पथ पर चलते हुए भी उनका गला सूख रहा था। उनके छोटे बच्चे को कमला ने कन्धे से लगा रखा था। छोटी बहिन सरला ने अपने सिर पर कुछ सामान रखा था। बच्चा सो रहा था। वह लड़का था। माँ उन सबके पीछे थी। वह मौन थी। मानो एकान्त! उस वार्ता के बाद पिता भी मौन रह गये। ज्येष्ठ पुत्री की वाणी में उन्होंने जितनी व्यथा और क्षोभ पाया, मानो उसी से वे आहत हो गये। पथ अपरिचित था और दुर्गम भी, इसलिए निष्कंटक तो वह किसी अवस्था में थे ही नहीं; परन्तु चले जा रहे थे। अपने प्राणों को छुपाये पग-पग पर बढ़ रहे थे। वे सब कितने चले, कितने आगे बढ़े—इससे भी अज्ञात थे।

देर से चलते हुए, एक स्थान पर वह परिवार जब बैठा, तभी कमला के पिता ने उन सभी को सुना कर कहा—'भगवान् और भावना को मानने-वाला इन्सान कभी शान्त नहीं रहा। आज भी तुम जो कुछ देख रही हो, यह भी तुम्हारे पूर्वजों का श्राप है। उन्हीं के पाप का फल तुम्हें भोगना पड़ गया है! इन्सान कभी भी सरल और सुगम नहीं रहा।'

पास बैठी हुई कनिष्ठ पुत्री सरला ने कहा—'पिताजी, पाप......हमारे पुरखों का पाप......!'

उस समय पिता के मुँह पर जिस प्रकार के क्षोभ और विषाक्त भाव की रेखा खिंच गयी थी, कदाचित वह भी सरला देख पाती, तो शायद वह अपने पिता के मर्मस्थल की पीड़ा समझ जाती। परन्तु वे सब तो अन्धेरे में थे—मानो एक-दूसरे से भी अज्ञात; किन्तु पुत्री की शंका को सुन, पिता ने कहा—'हाँ, बेटी! तुम्हारे पुरखों का पाप ही आज जाग उठा है। सर्वत्र उसी का कोलाहल है। मानव की चीख उसी के कारण व्याप्त है।' उन्होंने तभी साँस भरी और कहा—'इस संसार में सदा ही ऐसा होता आया है।

युद्धों का अर्थ ही यह है कि इन्सान मारा जाये। नगरों को भी बरबाद किया जाता है। धर्म और धन के लिए इन्सान का सदा कत्लेआम किया गया है। इस इन्सान की जातियाँ इस युद्ध के ही कारण बनी हैं और मिटी हैं। युद्ध, फिर युद्ध—यही तो इस इन्सान का सब से बड़ा मन्त्र रहा है।'

इतनी बात सुन कर कमला मौन रह गयी। वह मानो अपने अन्तःप्रदेश में ही खो गयी। जिस प्रकार उसकी आँखों के समक्ष अन्धेरा था, और वह कुछ नहीं देख सकती थी, उसी तरह उसके मानस का अंधेरा भी इतना अगम था कि जिस की थाह पा सकना उस युवा लड़की की शक्ति से बाहर हो गया था।

उसी समय, पिता ने फिर कहा—'बेटी, हम जिस पथ पर बढ़े हैं, इसी पर आगे दिल्ली है। वह दिल्ली बादशाहों द्वारा कई बार लूटी गयी है। वहाँ के नर-नारियों के खून से होली खेली गयी है। वहाँ भी इन्सान के खून की नदी बहायी गयी है। आज भी तुमने जो कुछ अपने नगर में देखा, उसका जन्म भले ही इन दो दिनों में हुआ हो, परन्तु इस क्रूरता और बर्बरता का संस्कार तो बहुत पहले हो चुका था। वह हमारी स्मृति से भी पहले हुआ था। जिस हिन्दुस्तान की तुम पुत्री हो, अपने को भावनामयी कहती हो और गौरवान्वित समझती हो, उसके नीचे ही हमारा पाप छिपा था। मेरी बच्ची! मुझे आज भी स्पष्ट लगता है कि हमने अपने धर्म को आज तक भी स्वीकार नहीं किया। धर्म की पुकार करनेवाला समाज धन और अपनी स्वाभाविक वासना का दास बन गया, स्वार्थी हो गया। धनिक कहलाने लगा। देश में पैदा हुए डाकू और चोरों का जन्मदाता भी वही सिद्ध हुआ। स्वार्थी और अभिमानी समाज धर्म की झूठी मान्यता और धन की लालसा के कारण इन्सानियत से गिर गया। मनुष्य क्षत्-क्षत् किया गया। विवेक और चरित्र निर्लज्ज इन्सान ने चुल्लू में भर कर पी लिया...जानती है बेटी! तुम्हारे नगर के धनिक पहिले ही भाग गये। वे अपना पाप चारों ओर छितरा गये।'

कमला ने कहा—'इंसान नहीं रहेगा।'

पिता ने कहा—'ऐसे क्या रहेगा, बेटी!'

सरला बोली—'लोग अपने पैतृक मकानों को छोड़ कर जा रहे हैं। भाग रहे हैं। सादियों के सम्बन्ध समाप्त हो रहे हैं।'

पिता के मुँह पर फिर कसैली मुसकराहट आयी—'हाँ, बेटी ! वे सम्बन्ध अब नहीं रहेंगे। इन्सान की क्रूरता के नीचे दब कर सभी मर जायेंगे...मिट जायेंगे, मेरी बेटी !'

सरला ने कहा—'राम-राम। उस दिन जब जुबेदा का घर जला था, उसके छोटे-छोटे भाइयों का कत्ल किया गया था, मैं भूल नहीं सकती कि कितना भयानक रोदन उस समय जुबेदा की माँ ने किया था।'

आश्चर्य था कि उस समय, देर से उन पुत्रियों की माँ मौन थी। वह जैसे वहाँ नहीं थी। कदाचित यही देख कर, सरला के पिता ने अपनी पत्नी को टंकोरा—'तुम मौन हो ! कुछ नहीं बोल रही हो।'

इतना सुना, तो सरला की माँ जैसे आसमान से पृथ्वी पर गिर पड़ी। वह एकाएक साँस भर बोली—'मैं क्या कहूँ...अब क्या कहूँ ?'

कमला ने कहा—'माँ से कुछ मत कहो। मत बोलो !'

किन्तु पिता ने कहा—'हम सब दुःखी हैं। भूखे हैं। मन में उठती हुई बात को बाहर निकाल कर भी शांति पाते हैं।'

कमला की माँ ने पूछा—हम कहाँ चल रहे हैं ? जिस रास्ते पर चले हैं ?'

'हम भूल नहीं कर बैठे तो ठीक रास्ते पर चले हैं। प्रातः तक अमृतसर पहुँच सकते हैं।' कमला के पिता ने कहा।

कमला की माँ बोली—'देर से बैठे हो, अब उठो। चलो। रास्ता लम्बा है। जाने कितना चलना है।'

वे सब उठे और चले। चलते गये। जब प्रातः की अरुणिमा दिखाई दी, तो उस परिवार के सदस्य अमृतसर की सीमा में आ गये थे। वे थके थे, परन्तु अपने प्राणों की रक्षा पा कर वे सन्तुष्ट थे, भगवान् के प्रति कृतज्ञ बने थे !

आह ! वे अपने प्राणों को सहेज कर, जाने कितने सहमे हुए उस काल-रात्रि से बाहर निकल सके थे !...

: २ :

पं० ज्ञाननाथ शरणार्थी शिविर में अपनी वयस्क पुत्रियों, छोटे पुत्र और पत्नी सहित जा कर ठहरे। उस नये प्रातःकाल में वह परिवार शिविर में प्रविष्ट हुआ, तो रास्ते की थकान और गत दिनों में आँखों देखा वीभत्स रूप मानव का क्रूर अट्टाहास तथा निंद्य-नर्तन अभी तक उस दम्पत्ति की आँखों के समक्ष घूम-फिर रहा था। बात यह थी कि अमृतसर पहुँचने से पूर्व ही, जब दिन निकल आया और उस परिवार ने अपने आप को निष्कंटक पाया, तो उस बीहड़ तथा दुर्गम पथ पर ही, उस ने देखा था कि वयस्क स्त्री-पुरुष तथा बच्चों के शरीर खून में लथ-पथ उन्हें देखने को मिले थे।

रास्ते की उस अवस्था को लक्ष्य करके ही, पण्डित ज्ञाननाथ ने अपनी पुत्रियों को बताया कि इन्सान का विवेक मिट गया...मनुष्यता का पतन...

ज्येष्ठ पुत्री कमला ने पिता से इतना सुना, तो जैसे उसके मन पर आघात पहुँचा। उसने अनायास ही अनुभव किया कि जब इतना पाप बढ़ गया है, मनुष्यता का अन्त हो गया है, तो यह दुर्दान्त मनुष्य कठोरता को भी लाँघ गया है, तो यह जगत भला कब तक जीवित रहेगा? तब तो भगवान् का नाम भी लोप हो जायेगा।

किन्तु उस समय तो पण्डित ज्ञाननाथ स्वयं ही, मनुष्य की उस बर्बरता तथा अमानुषिकता के अट्टहास में खो गये थे। लगा कि जैसे उनके वृद्ध शरीर से आग के पतंगे छूट रहे थे। नाड़ियों का रक्त सूख गया था। उन स्नायुओं में केवल ठण्डा पानी भरा था। कदाचित् इसीलिए वे निस्तेज थे। काँप रहे थे। निःसन्देह, वे अपनी पुत्री के मन का रोष समझ कर भी अपना मत नहीं दे रहे थे।

पिता की वह अवस्था कमला से छुपी नहीं रही। वह स्वतः ही उस कारुणिक और दुःखान्त मनुष्य के लहू से लिखे जानेवाले इतिहास में खो गयी। उसकी आँखें अन्धेरे में घूम गयीं। मुँह सूख गया। स्वर अवरुद्ध हो गया। उसी अवस्था में उसने ऊपर आसमान की ओर देखते हुए कहा—'हाय, कैसा हो गया, यह इन्सान! सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की उपासना करनेवाला मनुष्य इतना क्रूर बन गया? इतना वीभत्स हो गया......

रे परमात्मा !' कमला के हाथों की मुट्ठियाँ बँध गयीं। मस्तक में बल पड़ गये। आँखें भी चढ़ गयीं। लगा कि उस युवती के मन का समस्त रोष घृणा में परिवर्तित हो गया। उस अवस्था में ही, उसने पिता की ओर घूर कर देखा। छूटते ही उसने कहा—'तो कहूँगी मैं कि यह पुरुष पाखण्डी है! यह कोरा जानवर और वीभत्स है!' और वह बोली 'पिताजी, सूझ नहीं पड़ता कि फिर यह धर्म.. मानवीयता के अमर वाक्य क्यों...?'

पण्डित ज्ञाननाथ उस समय ऐसी अवस्था में नहीं थे कि वे अपनी प्यारी पुत्री के रोष को कम करने का प्रयत्न करते। वे स्वयं भी उसी दशा को प्राप्त थे। किन्तु जब उन्होंने कमला से मानव के मर्मस्थल पर ही सीधा आघात हुआ पाया, मानव की मानवीयता के प्रति रोष तथा घृणा का भाव देखा तो वे जैसे किंचित् स्वयं भी सहम गये। असमंजस में पड़ गये कि क्या सच, यही सत्य है? इस कमला का कहना ही ठीक है? आश्चर्य कि वृद्ध पण्डित ने पुत्री की बात का समर्थन नहीं किया। मानो आत्मा की वाणी भी उसे स्वीकार नहीं कर सकी। उनकी चिर समय से चली आई शिक्षा-दीक्षा ने भी समर्थन प्रदान नहीं किया। किन्तु अजीब बात तो यह थी कि पण्डित ज्ञाननाथ अपनी पुत्री की बात का भी विरोध नहीं कर सके। वे एक बार भी उससे यह नहीं कह सके कि तू मूर्ख है, नासमझ है। बेटी! यह विषय ही विवाद का है। तू इसमें न पड़। तू अपनी राह पर चल! अपने दृष्टि-लक्ष पर आधारित बन!

परन्तु उसी समय, जब कि कमला स्वयं ही, पिता को फिर टंकोरना चाहती थी, उसकी छोटी बहिन सरला ने बड़ी बहिन के समान ही, रोष से पूरित बन कर, दूर अन्तरिक्ष की ओर देखते हुए कहा—'जीजी, भला पिताजी क्या कहेंगे? इन्होंने भी तो सदा आदर्श की दुहाई दी। उसी की पूजा की। पिताजी भला धर्म के खेमे को किस तरह उखाड़ फेंकने की बात कहेंगे! न, ये कुछ नहीं बोलेंगे!'

छोटी पुत्री से इतनी तीखी बात सुन कर पण्डित ज्ञाननाथ का मस्तक जैसे चकरा गया। उन्होंने तुरन्त ही कहा—'हाँ बेटी! भला मैं क्या कहूँगा। मैं आज कैसे कहूँगा कि मनुष्य धर्महीन है। पुरुष कायर है!'

छूटते ही, कमला ने कहा—पिता जी, ये बच्चे...ये माताओं के प्राण! क्या ये पत्थर हैं। ठीकरे हैं! बताइये, ये निरपराध नर और नारी क्यों वध

किये हैं ! मजहब की तीखी और तेज धार से ये सब क्यों टुकड़े किये जाते हैं !' इतना कहते हुए कमला के हृदय का रोष आँखों में उतर आया। उसकी आँखें बह गयीं। वे उसके गालों पर तैर आईं। उस अवस्था में ही, वह फिर बोली—'जिन माताओं ने वे मरनेवाले बच्चे को नौ मास अपनी कोख में रखे, उस के लिये प्रसव की पीड़ा सहन की गयी तो क्या इसीलिए कि उनसे जान-वरों का पेट भरे, उन्हें इसी हेतु उस दुर्गम-पथ पर डाल दिया गया था।' उसने कहा—'हमें आपने बताया कि जीव में परमात्मा है ! तो फिर उस परमात्मा की ऐसी दुरव्यवस्था क्यों ? इन्सान की ऐसी वर्बरता क्यों ?'

पण्डित ज्ञाननाथ उस समय तनिक स्वस्थ थे। उनका परिवार विपत्ति से बाहर निकल आया था। इसलिए उन्होंने कमला की बात सुनी और अपने सूखे होठों से मुसकरा दिया—'तुम्हारे पिता में आज कुछ कहने की शक्ति नहीं है, बेटी ! फिर भी इतना तो मान लो, विपत्ति में सभी कुछ किया जाता है ! अपने पेट के बच्चे बेचे भी जाते हैं और यों पत्थर समझ कर फेंक भी दिये जाते हैं। आज इन्सान पर विपत्ति आई है। धर्म और जाति के नाम पर यह होनेवाला कत्लेआम आदमी के पागलपन का तो सूचक है ही, उसके हृदय की दबी हुई अमानुषिकता और वर्बरता का भी प्रतीक है। जब मनुष्य स्वार्थ तथा क्रोध में अन्धा बनता है, तो सभी-कुछ करता है। ऐसा भी करता है। इतना तक कर डालता है।' उन्होंने साँस भरी और कहा—'और ऐसा क्या आज ही हुआ है ! इन्सान के इतिहास में जाने कितनी बार हुआ है। नित्य ही होता है। आज सामुहिक रूप से हुआ है ! तुम्हारे सामने हुआ है...... तुम्हारे साथ हुआ है...'

'और फिर भी इन्सान टिका है ? इसे आगे भी टिका रहना है ?' सुनते ही एकाएक कमला ने प्रश्न किया।

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'हाँ, इन्सान क्या मरेगा ! संसार तो रहेगा ही। बीज का नाश नहीं हो सकेगा !'

कमला बोली—'ऐसे तो नाश हो जाना चाहिए, पिताजी ! सभी कुछ मिट जाना चाहिए ! इन्सान को भी जानवर की योनि में परिवर्तित होना चाहिए। साँप-बिच्छू बनना चाहिए ! मन्दिर, मस्जिद और गिरजों को गिरा

देना चाहिए। इस धार्मिक पुरुष का वध सर्व-प्रथम होना चाहिए। आदर्शवादी इन्सान को मार देना चाहिए।'

इतना सुना, तो पिता ने बरबस ही, अट्टहास किया। उन्होंने दोनों पुत्रियों को चौंका दिया। तदन्तर ही उन्होंने कहा—'मेरी बच्ची, देखता हूँ तुझे क्रोध है। स्वाभाविक भी है। परन्तु तेरा कहना क्या संगत है? स्वाभाविक है?' वह बोले 'न, बेटी! ऐसा नहीं होगा। होना भी नहीं चाहिए। जिस आँधी में तुम उड़ी हो उसमें न जाने कितने उड़े हैं! इस दुनिया के भवसागर में कभी भी उफान आता है। ऐसा ज्वारभाटा जाने कितने नगरों को अपने साथ समेट ले जाता है। भूचाल भी आते हैं। असंख्य प्राणी अनायास ही पृथ्वी की गोद में समा जाते हैं। जिस भवसागर को तुम पार करने चली हो—इस जीवन रूपी सागर को लाँघना चाहती हो, तो इसमें न जाने कितने छोटे-बड़े भँवर उठते हैं और मिटते हैं। उन भँवरों की गोद में अनायास ही इस जगत के प्राणी लोप हो जाते हैं। आज भी इन्सान के जीवन-सागर में एक बड़ा भँवर उठा है। उसने इन्सानी नौका को डुला देना चाहा है। नौका उस भँवर में फँस गयी है। वह चक्कर काट रही है, देखती हो न, यात्रियों की भीड़ जीवन-सागर में डूबती जा रही है। चारों ओर शोक है, चीत्कार है! अन्धेरा है! आश्रय स्थान आँखों से ओझल है। न सोचो कि जाने किस क्षण तुम्हारी नौका डूब सकती है! तुम...... तुम्हारे साथी...!'

एकाएक कमला ने चिल्लाया—'पिताजी...'

ज्ञाननाथ ने एक लम्बा साँस खींच कर कहा—'मुझे उद्वेलित मत करो, बेटी! मेरा प्राण कमज़ोर है! इस जीवन-सागर पर तैरनेवाला प्राणी केवल भगवान् का ही सहारा पा सकता है! कोई और नहीं। यहाँ हमारा कोई नहीं। मेरा-तुम्हारा यह क्षणिक नाता इतना कठोर और मजबूत नहीं कि न टूटे। कभी भी टूट सकता है। हमारा जीवन तिनके के समान बह कर ओझल हो सकता है।'

उसी समय सरला ने कहा—'पिताजी से कुछ मत कहो, जीजी!'

कमला ने कहा—'पिताजी कोमल हैं! कमजोर भी हैं।'

सरला बोली—'अतिशय भावुक हैं, हमारे पिताजी!'

अपनी छोटी पुत्री की बात को पण्डित ज्ञाननाथ ने सुन लिया। उन्होंने तुरन्त कहा—'न बेटी! तुम दोनों ही अधिक भावुक हो। देखता हूँ, तुम अधिक दुःखी हो। यह संगत भी है। परन्तु विधि की विडम्बना ही ऐसी बनी, इस देश का पतन ही इस रूप में होना था, तब दोष किसे दिया जाय! शायद भगवान् को यही स्वीकार था। हमें पराया बनाना था। बेगाना बनना था। निराश्रय होना ही हमारे भाग्य में था।' वह बोले—'आज तो सभी परम्परायें टूट गयीं। नियम भंग हो गये। माता डायन बन गयी। दयामय इंसान क्रूर हो गया। इस मनुष्य के हृदय में तूफान उठा है न, तो यह उसी में उड़ चला है। अपना-पराया भूल चुका है।'

कमला ने प्रश्न किया—'पर यह कब तक रहेगा, पिताजी?'

ज्ञाननाथ ने कहा—'ऐसा तूफान देर तक नहीं रहा करता। तेजी के साथ आता है और उसी वेग के साथ दब जाता है।'

उसी समय कमला की माँ ने पास आकर कहा—'अपने जीवन की बात करो। अब कैसे गुजारा होगा, यह सोचो।'

कमला ने कहा—'माँ सभी कुछ भगवान् पर आश्रित है। देर से रुका हुआ आज इंसान का काफिला चल पड़ा है। पुराना डेरा उखड़ गया है।'

साँस भर कर माँ ने कहा—'यह भी देखना था! '...इतना भी!'

कमला बोली—'माँ, किसी का डेरा एक जगह नहीं रहा। एक दिन यह हाड़-माँस का शरीर भी नहीं रहेगा। इस शरीर का डेरा भी उखड़ जायगा।'

उसी समय कमला का छोटा भैया वहाँ आया। वह माँ की गोद में बैठ गया। पण्डित ज्ञाननाथ ने उसकी ओर देखा। उन्हें लगा कि सभी के समान वह बच्चा भी दुर्बल हो गया है। वह फूल सरीखा सुकुमार और कोमल प्राण मुरझा गया है। किन्तु अजीब बात यह थी कि जैसे वह बच्चा भी अपने माता-पिता की विवशता को समझ चुका था। वह सहमा हुआ था। मानो किसी अव्यक्त शक्ति की प्रेरणा पर वह भी समय की विषमता को जान चुका था। अतएव, वह मौन था और कातर बना हुआ, अपने जिद्दी स्वभाव को जैसे भूल चुका था।

उसी समय कमला को पहिले दिन की स्थिति का ध्यान हो आया कि जब वह नगर के पास ही आ पाई थी, तब अतिशय थकी थी। प्याऊ में

आने पर उसने पानी पिया। वहीं पर चना और गुड़ बँट रहा था, वह भी उन्हें प्राप्त हुआ। जल और आहार लेकर जब दोनों बहिनें वापिस लौटीं, तो वे प्रसन्न थीं। दो दिन के बाद उनके पिता और माता के मुँह में कुछ जायेगा, उन्हें शांति मिलेगी, ऐसा विचार निश्चय ही उन दोनों बहिनों के मन में उतर आया था। चना और गुड़ पा कर ज्ञाननाथ ने कहा—'भगवान् बड़ा है, दयालु है।' वही चना और गुड़ सबने खाया। जब वे खा-पीकर स्वस्थ हुए, तो ज्ञाननाथ ने अपनी पुत्रियों की ओर देख कर कहा था—'यह हजारों प्राणियों का काफिला इस बात का प्रतीक है कि हम अकेले नहीं। हमीं पर मुसीबत नहीं। आज जाति पर मुसीबत आई है। किसी का पति गया है, किसी की पत्नी! बच्चों का हिसाब करना तो बेकार हो गया है। तूफान में सभी उड़े हैं। सभी के डेरे उखड़े हैं।'

तब कमला को भी ध्यान आया कि जब वह प्याऊ पर गयी तो एक आठ वर्ष का लड़का रो रहा था। उसकी माँ नहीं और बाप भी नहीं था। दोनों मार दिये गये थे।

उसी को सुन कर पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा था—'अरी बेटी! ऐसी कहानियाँ तो गिनी भी नहीं जा सकतीं। किसी का पति छिना, किसी का पुत्र! पुत्रों का निराश्रित होना तो बड़ी बात नहीं। एक दिन का यह इतिहास लिखा जायेगा, तो इतिहास-लेखक भी लिखते हुए शर्म करेगा। वह इस कथा को लिखते हुए अपने को गौरवान्वित नहीं समझेगा। निःसन्देह, वह भी इन्सान की बुराई का प्रचारक कहलायेगा। इस इन्सानी खून पर जितनी जल्दी मिट्टी डाली जाय, इसे पृथ्वी के गर्भ में जितनी जल्दी दबा दिया जाय, उतना ही अच्छा होगा। आगे आनेवाली पीढ़ी का तभी उद्धार होगा।' उन्होंने कहा था, 'मेरी बच्ची, यह इन्सानी क्रोध सदा तो स्थिर रहता नहीं। समय के साथ आदमी बदलता है। जब शांति आयेगी, मनुष्य में चेतना जागेगी, धर्म और भगवान के प्रति ममता जागरित होगी, तो तब इन्सान में शर्म आयेगी। गैरत पैदा होगी। वह सोचेगा, जो कुछ हुआ, अच्छा नहीं हुआ। बुरा हुआ। इन्सान के साथ क्रूरता का व्यवहार हुआ।'

तभी कमला ने कहा था—'क्या ऐसा समय आयेगा, पिताजी!'

पण्डित ज्ञाननाथ ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'हाँ, हाँ, मेरी बच्ची!

क्यों न ऐसा समय आयेगा ! मनुष्य तो देवता है न, तो यह देर तक राक्षस नहीं बना रहेगा । जो तूफान आज उठा है, वह जल्दी ही दब जायगा ।'

किन्तु दूसरे दिन जब वह परिवार आपस में बातें कर रहा था, तभी कमला ने उदास स्वर में कहा—'पिता जी, आज तो सभी कुछ मिट गया। लाखों व्यक्तियों का आश्रय ही लुट गया । लगता है कि इन्सान बदल गया। अपनी परम्परायें भूल गया ।'

उसी समय कमला की मा ने कहा—'अरी, कुछ खाने की बात भी करो ! देखो, सूरज डूब गया ।'

ज्ञाननाथ ने कहा—'हाँ, बेटी ! यह सब छोड़ो । आगे की सुध लो ।'

सब खड़े हो गये । छोटे भैया को गोद में लेते हुए कमला ने कहा—'अरे हम कहाँ आ गये हैं, रमेश !'

लेकिन रमेश नहीं बोला । शायद वह कुछ भी नहीं समझ सका । जब वे सब शिविर के एक बड़े बरामदे में प्रविष्ट हुए तो तभी, दूर पर खड़े एक युवक को देख, कमला के मन में एक विचार उठा, जैसे तूफान ! उसने तुरन्त ही, उस युवक के पास जाना चाहा । उससे कुछ कहना चाहा । किन्तु हाय, उस समय तो कमला के समान वह युवक भी निराश्रित था, जैसे अनाथ बनकर, उस शिविर का एक सदस्य आ बना था । तदन्तर ही कमला ने यह भी चाहा कि अपने परिवार को उस युवक के प्रति सूचना दे । किन्तु उसके कुछ कहने से पूर्व ही, सभी को उसका पता चल गया । सरला ने उस युवक को देखा, तो माता और पिता को बता दिया ।

...कुछ दिन पूर्व ही, उस युवक के साथ कमला का पाणिग्रहण निश्चित हुआ था ।

: २ :

लाहौर सरीखे विशाल नगर में रहनेवाले जिस परिवार की कथा का यहाँ वर्णन किया जा रहा है, उसका पूर्व इतिहास भले ही सर्वसाधारण को ज्ञात न हो; परन्तु परिचित आज भी इतना जानते हैं कि गदर के समय में एक अंग्रेज को शरण देने के फलस्वरूप वह परिवार एक बड़ी जायदाद का

मालिक बन गया था। उसी परिवार में वह युवक उत्पन्न हुआ कि जिससे पण्डित ज्ञाननाथ की पुत्री कमला का विवाह निश्चित हुआ। निःसन्देह, ज्ञान-नाथ सरीखे साधारण कोटि के ब्राह्मण के लिए यह सन्तोष और गौरव का विषय था कि उनकी कन्या को न केवल योग्य वर मिला, अपितु बड़ा घर भी प्राप्त हो गया। यह सम्बन्ध कैसे हुआ, भले ही यह विषय पण्डित ज्ञाननाथ और उनके अन्य कुटुम्बीजनों के लिए केवल रहस्य ही बना रहा, परन्तु स्वयं कमला और उसके भावी पति रमाकान्त को उस परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान था कि जिसके आश्रित बन कर उन्होंने एक दूसरे के प्रति जीवन-साथी बनना स्वीकार किया था। निःसन्देह, उस समस्या को सुलझाने के लिये स्वयं रमा-कान्त को अपने अभिभावकों के साथ संघर्ष करना पड़ा था। उसका मत एक सिद्धान्त पर आधारित था, इसलिए अन्ततः माता-पिता ने पुत्र के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। बात यह थी कि कमला शिक्षित और सुंदर थी, इसलिये अपने पिता की निर्धनता का अभाव अनायास ही, उसने प्रगट नहीं होने दिया। स्वयं पण्डित ज्ञाननाथ की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा भी अपना महत्व रखती थी। किन्तु रमाकान्त के पिता लालची ब्राह्मण थे। वे निर्धन से धनिक बने थे। जो धन उनके पास था, वह दान अथवा पुरस्कार में मिला था। पास में पैसा था, जायदाद थी; परन्तु उस ब्राह्मण परिवार के विचारों का धरातल अभी निम्न बना था। देश-द्रोह और जाति-द्रोह करके उन्होंने वह सम्पत्ति उपार्जित की थी, अतएव अंग्रेज जाति के समूचे शासनकाल में वे सरकार के कृपा-पात्र अवश्य बने रहे, लेकिन जनता की भावना से दूर रहे, उसके कृपा-पात्र नहीं बन सके। कदाचित् यही कारण था कि वह परिवार दम्भी था, अपने ही समाज से दूर था। उस परिवार ने जिस देश की कोख में जन्म लिया, उसी का शोषण करनेवाले अंग्रेज बहादुर को तो उनका सहयोग प्राप्त था; परन्तु अपने देश के प्रति उदार बनना मानो उस परिवार के जन्मगत संस्कारों से छू भी नहीं गया था। यही कारण था कि वह कुटुम्ब देशद्रोही और जातिद्रोही कहलाता। चूँकि उसकी पीठ पर शासक का हाथ था, इसलिए जनता के किसी व्यक्ति द्वारा उस परिवार के किसी सदस्य का अनिष्ट करना भी आसान नहीं था। वह परिवार वैभव और प्रभुता दोनों को पाकर भाग्यशाली था, सन्तुष्ट था।

किन्तु स्वयं पण्डित ज्ञाननाथ के मन में अभी एक काँटा था। वह काँटा कभी भी अवसर पाकर खटकता। उस ब्राह्मण को व्यथित करता। यद्यपि, उनके मन में यह बात भी थी कि इस प्रकार पुत्री का जीवन सुखी रहेगा। परन्तु उन देशद्रोही के परिवार में उनकी पुत्री जाये, निःसन्देह यह उनकी आत्मा को पसन्द नहीं था। किन्तु उस वृद्ध पिता का मस्तक अपनी पुत्री की इच्छा के समक्ष झुका था, जिसका उन्हें अब खेद भी नहीं था। उन्होंने सहज भाव से इस बात को स्वीकार किया कि पुत्री की इच्छा सर्वोपरि है। जीवन उसका ही बीतना है। वह जहाँ जाये, सुखी रहे, यही उनका एक लक्ष था। और पुत्री कमला ने जब स्वयं ही उस सम्बन्ध को पसन्द किया, उसने अपने माता-पिता को वह सम्बन्ध करने के लिए प्रेरित किया, तब कोई अन्य प्रश्न नहीं उठता था। ऐसा संगत भी नहीं था। कमला के पिता को इस बात का भी पता नहीं था कि रमाकान्त और कमला ने जीवन के एकान्त में, आसमान के तारों को साक्षी कर यह निश्चय कर लिया था कि वे दोनों एक हैं—दो जीवन और एक प्राण हैं। नगर की जिस संस्था में रमाकान्त प्रायः जाता, उसी में पिता के साथ कमला का भी जाना होता था। उसी संस्था के मंच पर अनेक बार रमाकान्त बोला था। कमला भी बोली थी। यों दोनों ने एक दूसर के विचारों को समझा था। जीवन को समझा था। यद्यपि, दोनों एक मोहल्ले के वासी नहीं थे, परन्तु जब अन्तर की प्रेरणा जागी, भावना प्रस्फुटित हुई, तो प्रायः उन दोनों का एक-दूसरे से मिलना और बोलना भी होने लगा। यों सम्बन्ध बनता गया और दृढ़ हो गया।

रमाकान्त शिक्षित युवक था। वह कालेज की डिग्री प्राप्त करके यूरोप जाने की बात सोचता था। उसने अनेक बार कमला को सम्बोधित करके कहा था, कि वह अपने घर के धन और वैभव से सन्तुष्ट नहीं है। उसके घर में धन जिस रास्ते से आया है, उससे वह शर्मिन्दा है। वह कहता था—"कमला देवी, मैं अपने पुरखों के संचित किये हुए धन को मिटा दूँगा। मैं अपने पैरों से चलूँगा। अपनी आँखों से संसार को देखूँगा। अपने हृदय की भावना इस जग के चरणों में चढ़ा दूँगा।"

ऐसे अवसर पर, कदाचित ही, कभी कमला ने हँसा हो, या मुस्कराया

हो। उसने नितान्त गम्भीर बनकर रमाकान्त की बात को सुना। उसने समझा कि रमाकान्त नये युग का प्रतीक है—उसकी भावना के अनुरूप!

और रमाकान्त कहता था—'कमला देवी, मेरे पुरखों ने जिस अँग्रेज को अपने घर में शरण दी, उस जालिम ने अवसर पाकर हजारों देशवासियों को मौत के घाट उतरवा दिया था। मेरे पुरखों ने उसकी प्राण-रक्षा करके जो इनाम प्राप्त किया, मैं आज भी कहता हूँ, वह देशबन्धुओं के खून से तर था। वह मुझे आज भी लाल दीखता है—लहू से रंगा हुआ। अच्छा होता कि देशवासी मेरे परिवार का नाश कर देते।'

एक समय, सन्ध्या के शान्त प्रहर में, बाग की एक बेंच पर बैठे हुए जब यह चर्चा चली थी, तो रमाकान्त की ओर देख, उसे रक्तवर्ण पाकर कमला ने कहा था–'रमा बाबू, इस देश में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। कहने को यह विशाल भारत देश अंग्रेजों ने पददलित किया, लूटा; परन्तु मेरा तो आज भी यह मत है कि देशवासियों ने स्वयं ही विशाल भारत की काया को गिद्ध के समान नोचा और खाया। दूसरों को भी खाने का अवसर दिया।'

इतना सुनते ही, रमाकान्त ने साँस भर कह दिया था—'इस घर को आग लग गयी घर के चिराग से!'

कमला ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'निःसन्देह! यह धू-धू करता हुआ लावा स्वयं हमारे हाथों प्रज्वलित हुआ है। भाई ने ही भाई का संहार किया है। माँ का खून पुत्र ने किया,—हाय!'

रमाकान्त बोला—'इतिहास में ऐसे कम उल्लेख नहीं हैं कि जब बाहर से इस देश पर प्रहार हुए, तो इस देश के व्यक्तियों ने ही हमलावरों को दिशा का संकेत दिया। विजय पाने का रास्ता बताया!'

तभी कमला ने नितान्त दयनीय और पीड़ित स्वर में कहा था—'हाय! हाय! शर्म आती है। कलेजा मुँह को आता है। हमारा इतिहास ही दूषित और कायर बन गया है। ऐसे क्या किसी विदेशी के समक्ष हमारा मस्तक गर्व से ऊपर उठ सकता है?'

रमाकान्त उस समय आसमान की ओर देख रहा था। दिन भर के थके और श्रमिक पँछी अपने घरों को लौट रहे थे। दूर सड़क पर मजदूर और

मजदूरनियाँ दिन की तपती हुई धूप में सड़क कूट कर भी, अब घरों को लौटते हुए गाते जा रहे थे। सन्ध्या बढ़ रही थी। अँधेरा आ रहा था। दिन का राजा अपने साम्राज्य की बाग-डोर रात की रानी को सौंप रहा था। दूर पर तारे भी दिखायी देने लगे थे। कमला ने जिस क्षोभ और पीड़ायुक्त वाणी में अपनी बात कही, उसका एक-एक शब्द रमाकांत के हृदय को छू रहा था, अतएव वह स्वयं व्यथित था। पीड़ित था। लगा कि उस बात पर बोलने के लिए उसके पास कुछ नहीं था। क्योंकि वह स्वयं अभियुक्त था। अपने पुरखों द्वारा उसका मुँह भी काला कर दिया गया था। उस समय वह कीमती सिल्क का कुरता पहिने हुए था। बारीक और बढ़िया धोती, पैरों में पम्प शू! करीने से सिरके बाल कढ़े हुए। उसमें खुशबूदार तेल। हाथ की कलाई पर जो घड़ी बँधी थी, वह भी कीमती थी। उसके हाथ की उँगली में अँगूठी थी और उसमें पुखराज लगा था; निःसन्देह वह भी सुंदर था। इस रूप में, सजा हुआ वह युवक, रमाकान्त किसी भी अपरिचित के लिए दर्शनीय था। उसका ऊँचा मस्तक, गोरा रंग, बड़ी आँखें, सभी कुछ चित्ता-कर्षक था। किन्तु इसके विपरीत पास बैठी हुई कमला रेशमी साड़ी नहीं धारण किये थी। उसके हाथ में घड़ी नहीं थी। वह केवल सूती धागे से बुनी हुई साड़ी पहिने थी। सादा ब्लाउज। पैरों में चप्पल! वह इसी रूप में दीख रही थी। जैसे देवी लग रही थी। रूप की रानी! कदाचित् कमला के उसी रूप को लक्ष कर, रमाकान्त व्यग्र था। वह अपने-आप पर लज्जित था। मानो उसे वह अपना रूप-श्रृंगार कमला से तुच्छ लगता था। आत्महीनता की भावना से उसका शरीर जल रहा था। उस रेशमी कुरते से आग निकल रही थी। वह श्वेत बढ़िया धोती उसका उपहास कर रही थी। हाथ में पड़ी हुई पुखराज की अंगूठी खिलखिल हँस रही थी और उसके परिवार की हीन तथा कायर मनोवृत्ति का बखान करने में लगी थी।

किन्तु उसी समय कमला ने फिर कहा—'रमाबाबू! उस आदमी की विवशता है। पैसा सभी के लिए आकर्षण का केन्द्र है। यही पाप कराता है। इसी से मनुष्य की प्रभुता है। इसी दर्पण में ही मनुष्य अपना रूप देखता है। पाप और पुण्य यही पैसा कराता है।'

रमाकान्त ने तेज स्वर में कहा—'पैसा पाप है, निंद्य है।'

कमला मुसकरा दी—'ना, रमाबाबू! पैसा पाप नहीं। पुण्य है। यह तो समाज की एक व्यवस्था है। एक समझौता।'

मानो रमाकान्त चीख पड़ा—'समझौता! नहीं, नहीं! यह तो स्वार्थियों का जाल है। साधारण समाज इसी में फँसता है। इसी पैसे रूपी जाल में फँसाकर इन्सान का दम घोंटा जाता है।'

इतना सुनकर, कमला हँस पड़ना चाहती थी। परन्तु वह हँसी नहीं, अपितु सदय भाव लेकर बोली—'रमाबाबू, मैं तो इतना ही जानती हूँ कि इस पैसे ने जग को हँसना दिया है, रोना दिया है। संघर्ष प्रिय मानव भी इसी पैसे ने बनाया है। यह सजा हुआ संसार और सजे हुए हम-तुम—आखिर इस पैसे की देन नहीं तो और क्या है! पैसा ही मनुष्य की बुद्धि का चमत्कार है। पैसा प्राप्त करने के लिए आदमी की बुद्धि चैतन्य बनती है। साहस बढ़ता है। हाँ, यह कहिये कि इस पैसे ने मनुष्य को जहाँ देवता बनाया, नर-राक्षस भी बना दिया। इन्सान चोर और डाकू भी बन गया। स्वार्थ बढ़ गया। सद्भावना और प्रेम घट गया। परन्तु इतना तो आप मानेंगे ही कि यह भी इस पैसे की प्रभुता है कि समस्त संसार का मानव एक कुटुम्ब का प्रतिनिधि बन गया है। सभी के स्वार्थ बँध गये हैं। यों, मनुष्य-समाज का निर्माण हुआ है। आदमी भावनावादी और आदर्शवादी भी बन सका है। देखते हैं आप, इन्सान गर्वीला और सजीला बन गया है। जैसे आप सच, आप!'

इतना सुनते ही, रमाकान्त ने कमला की ओर देखा। उसको मुसकराते देखा। आँखों से हँसते देखा।

किन्तु कमला ने उसे फिर टँकोरा—'क्यों, झूठ तो नहीं कहती मैं! पैसा सभी कुछ कराता है, करता है, यह स्वयं सिद्ध है।'

कमला सरीखे स्वर में ही रमाकान्त ने कहा—'मैं मानता हूँ कि पैसा बड़ा है। इसका विशिष्ट स्थान है। शायद मेरे पास पैसा न होता, मैं एक धनिक घर में जन्म न लेता, तो ऐसा न बन पाता। ऐसे सुन्दर रूप में न दीख सकता। मैं तब क्या तुम्हारे पास भी बैठ सकता था। सच तुम्हारा हृदय नहीं छू पाता! शायद नहीं! हाँ, कमला देवी, उस स्थिति में कदापि नहीं।'

बात सुनकर कमला ने रमाकान्त की ओर देखा। उसकी बात के अन्तराल में पहुँच जाना चाहा। जो कुछ रमाकान्त ने कहा, यद्यपि वह उसे रुचिकर नहीं लगा, परन्तु जैसे वह भी वास्तविकता का ही एक उल्लेख था। इसलिए कमला ने एकाएक कुछ नहीं कहा। उसने फिर अपना मुँह आसमान की ओर उठा दिया। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—'बात असंगत होते हुए भी मैं संगत मानती हूँ, रमाबाबू! शायद आप मुझे इतने अच्छे न लगते। इतने शिक्षित भी न दिखायी देते!' तदन्तर ही, उसने रमाकान्त की ओर देखा। उसकी आँखों में अपनी आँखें डालकर वह बोली—'समाज में जो मजदूर हैं, निर्धन हैं, उनमें जाने कितने ही सुन्दर और होनहार इस निर्धनता के आवरण में जीवन भर छिपे रहते हैं। उनपर क्या किसी की दृष्टि पड़ती है। वे उसी अन्धेरे में जन्म लेते हैं और उसी में पड़े रहकर एक दिन अनायास ही छिप जाते हैं।' वह कहने लगी—'रमाबाबू गरीब की जवानी और जाड़ों की चाँदनी रात भला कौन देखता है! पैसा प्रकाश है। अन्धेरे से मनुष्य को निकालता है और उजेले में ला खड़ा करता है। सँवारता है, बनाता है। पैसा ही पत्थर को चमकाता है।' इतना कहते हुए कमला क्षण भर मौन रह गयी। तदन्तर ही वह फिर बोली—'और रमाबाबू, एक बात जो मुझे कहनी है, वह भी कहे देती हूँ। यह विवाह, यह नर और नारी का सम्मिलन केवल पैसे रूपी दर्पण में ही अपना रूप नहीं देखता। यह तो संस्कारों का खेल है। मानव की भावना से इसका सीधा सम्बन्ध है। हो सकता है आप निर्धन होते, तो तब भी मैं आपकी ओर बढ़ती। और मेरी ही बात लें, मैं तो धनिक बाप की पुत्री नहीं। दहेज में आपको मिलने वाली रकम मेरे पिता के पास नहीं। इसे आप जानते हैं। फिर भी आप मेरी ओर झुके हैं। भला क्यों? नारी तो आपको और भी मिलती, धनिक भी मिलती। और अब मिली है, निर्धन! सुन्दर भी नहीं, शायद आपके जीवन से अधिक मेल भी नहीं!'

उसी समय मानो झटका सा खाकर रमाकान्त आसमान से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने एकाएक ही कमला का हाथ पकड़ लिया। उस मुलायम हाथ को अपने दोनों हाथों की गरम मुट्ठी में दाब कर वह सूखे होठों से हँसा—'तुम भी रहस्यमयी हो, कमला देवी! देखता हूँ तुम मुझसे अधिक

चतुर हो। मैं पुरुष बनकर जिस पौरुष को नहीं पाता, वह तुम अपने पास लिये हो।'

कमला ने हँस कर कहा—'अब बात बनाते हो!'

रमाकान्त भी हँस दिया—'न, कमला रानी! मैं तुम्हारा उपहास नहीं करता। इतना चतुर नहीं। सोचता हूँ, मैं भाग्यवान हूँ जो तुम्हारे समीप आ गया हूँ। विवाह पर दहेज में मुझे पैसा नहीं मिलेगा, यह मैंने अपने पिताजी से कह दिया है। मैंने उन्हें बता दिया है कि लड़की के पिता से पैसे की जगह में जो आशीष पाऊँगा, वह मेरे लिए अनुपम निधि होगी। मेरे जीवन में सहायक होगी। मैंने पिता जी से कहा है कि पैसा तो आता और जाता है, परन्तु पाया हुआ आशीप जीवन में सम्बल का काम करता है। जीवन में आये हुए झंझावातों में सहायक बनता है।'

उस समय कमला बात सुनने के साथ अपने श्वेत दाँतों से हँस रही थी और मधुर आँखों से मुसकरा दी थी।

: ४ :

जीवन के झंझावात में पड़कर जिस विषम तथा कठोर परिस्थिति का एक बड़े मानव समूह को सामना करना पड़ा, उसका रूप किसी प्रकार भी हल्का नहीं था। पण्डित ज्ञाननाथ स्वभाव से ही गम्भीर प्रकृति के मनुष्य थे, प्रायः कम बोलते थे, वे लोगों से भी कम मिलना पसन्द करते थे। शरणार्थी शिविर में आकर उनकी गम्भीरता जैसे पराकाष्ठा को पहुँच गयी थी। उनकी प्रफुल्ल और तेजोमयी आत्मा भी सिकुड़ गयी थी। शरणार्थी शिविर में रहते हुए उन्होंने कदाचित् एक दिन भी अपने सिर के बालों में तेल नहीं लगाया, प्रायः कपड़े भी साफ नहीं रहे। अपने पिता की उस अवस्था को सबसे प्रथम कमला ने अनुभव किया। उस चतुर युवती ने सहज में ही समझ लिया कि उसके पिता की मनोदशा ठीक नहीं। दुःख की बात तो यह हुई कि उस शिविर में जाते ही माँ अस्वस्थ हो गयी। चूँकि उस परिवार

की सन्तानों में कमला ही बड़ी आयु की थी, इसलिए सभी का ध्यान रखना उसी का काम था। सरला में अल्हड़पन था। बचपन से ही उसका घर के कामों में मन नहीं लगता था। किन्तु उस शिविर में तो कोई घरू काम भी नहीं था। अतएव, बहुधा सरला का एक ही काम होता कि वह शिविर में आये नवागन्तुकों में से जिसे भी अपना परिचित पाती, उसके पास पहुँचती और उस पर आई हुई मुसीबतों का लेखा-जोखा जान लेना चाहती। इसी प्रकार के व्यक्ति प्रायः पण्डित ज्ञाननाथ के पास आते। वे अपनी बात कहते और उनकी सुनते। उसी समुदाय में कुछ ऐसे भी लोग होते कि जिनसे पण्डितजी का देर से सम्पर्क था। जिनके पास पण्डितजी के लिए सहानुभूति थी और सहयोग का भाव था।

किन्तु उस शिविर के अन्तर्पट में समाविष्ट हुए, उस विचलित बने हुए नर समूह की करुण-गाथा पण्डित ज्ञाननाथ को सुन पड़ती, वह मानो एक ऐसी कहानी थी कि जो उनकी दृष्टि में नवीनतम न होकर भी, सर्वथा नवीन थी, असह्य भी बनी थी। ज्ञाननाथ पण्डित इस बात को समझते थे कि इस मनुष्य-समाज में जिन आदर्शों का तुमुल घोष देर से परिव्याप्त रहा वह कभी व्यावहारिक नहीं बना। मनुष्य के आस-पास घूमता हुआ स्वार्थ और दम्भ आदर्शों को फलीभूत नहीं कर सका। जातियों का ऊँच-नीच, निर्धन और धनिक की परम्परायें—ये सभी मानो उस घटित हुए नर हत्या काण्ड की रचयिता थीं, जातियों का वह युद्ध जो साम्प्रदायिकता के आधार पर लड़ा गया, निश्चय ही इन्सान के मन की दबी हुई ज्वाला का शोला मात्र था, जो समय पाते ही भड़क उठा था। मानो इन्सान ने अपने संस्कारों को उस आग में जला देना पसन्द किया था। लेकिन पण्डित ज्ञाननाथ के मन में बात उठती कि आखिर ऐसा क्यों? किसलिये? उत्तर उनके पास था। वे कहते, हमारे पुरखों का पाप आज बोल पड़ा है...प्रतिक्रियावादियों को अवसर मिल गया है...धर्म और जाति का नाम तो झूठा है, यह वह पाप है कि जो सदियों से मूक बना था! शक्ति के नीचे दबा था। धर्म और जाति के नाम पर अर्थ लोलुप समुदाय असहायों का शोषण कर रहा था...यही भाव पंडित जी के मानस में उठता और उन्हें झिंझोड़ता, वे कहते, एक दिन यह होना ही था! अवश्यम्भावी था! और यही वह स्थल था कि जिससे टकराते ही,

पण्डित ज्ञाननाथ का मानस अतिशय विचलित बन जाता। उनका वह कोमल मन काँप जाता। आँखों में अँधेरा छा जाता। होता यह कि ऐसी अवस्था में पहुँचते ही, उनका आकुल मन आँखों में उतर आता और रो पड़ता। वे निःशक्त बन जाते। बिस्तर पर पड़े-पड़े जब वे रो पड़ते तो वे उन बहती हुई आँखों पर चादर रख लेते। किसी भी व्याकुल तथा पीड़ित बच्चे के समान फफक पड़ते। निःसन्देह, वह अपना रोना किसी को दिखाना नहीं चाहते थे। अपनी आत्मिक दुर्बलता का प्रदर्शन करके स्वयं का उपहास कराना भी पसन्द नहीं करते थे। एक दिन जब वह अपनी उस अवस्था में पहुँचकर मुँह ढँके हुए रो रहे थे, तभी पुत्री कमला पास आई। उसने अपने पिता के मुँह से चादर हटा दी। जब पिता को रोते पाया, आँखों को लाल देखा, तो वह बलात् आकुल स्वर में बोली—'यह क्या है, पिताजी !'

किन्तु पण्डित ज्ञाननाथ ने आतुर बनकर कहा—'कुछ नहीं, कुछ नहीं, बेटी ! बस, किसी, एक बात का ध्यान आ गया था।'

उस समय कमला गम्भीर थी। कुछ दिनों में ही, वह दुर्बल तथा निस्तेज बन गयी थी। बाल रूखे-रूखे ! बनाव-शृंगार का नाम नहीं। पिता के समान उसका मानस भी शान्त नहीं था। उसके हृदय की टीस किसी भी वेदना से कम नहीं थी। अतएव, उसने जब पिता की अवस्था देखी, तो वह एकाएक नहीं बोल सकी। उसने अपनी धोती के आँचल से पिता की भरी हुई आँखें पोंछ दीं। उनकी छाती पर अपना हाथ रख दिया। तभी उसने कहा—'निरालम्ब बनकर भी हमें भगवान को याद रखना चाहिए—यह आपने ही तो मुझे बता दिया है, पिताजी मेरे पास इसी विश्वास का आधार है।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने पुत्री की उस स्नेहमयी तथा भावनामयी वाणी को सुनकर, जैसे सहारा पाया। उन्हें बल मिला। तभी उनकी आँखों में चमक आई। उस अवस्था में ही उन्होंने कहा—'बेटी, जो कष्ट हम पर आया है, मैं उसकी चिन्ता नहीं करता। देखता हूँ, ऐसा तो लाखों पर आया है। परन्तु एक बात प्रतिक्षण मेरे मन में खटकती है कि क्या ऐसा पतन भी किसी जाति का हो सकता है ! अब तक सुना था कि रोमवासियों का भी पतन हुआ। उनकी संस्कृति नष्ट हुई। ऐसे प्रलयंकर तूफान पहिले भी इस देश में आये, परन्तु आज तो अवस्था ही दूसरी है। यह निर्लज्जता का खुला प्रदर्शन

है। क्रूरता और बर्बरता सर्वोपरि बन गयी है। अब समझा मैं कि सदियों के सम्बन्ध झूठे थे। फितरती इन्सान का वह मिथ्याचरण था। इस शिविर में आकर मैंने क्या नहीं देखा, क्या नहीं सुना!'

कमला ने कहा—'पिताजी, आज तो यही अवस्था है! कल की राम जाने!'

'राम नहीं, मनुष्य जाने, बिटिया!' पण्डित ज्ञाननाथ ने तुरन्त ही कहा—'राम के नाम पर धोखा दिया जाता है। आदमी ठगा जाता है। भला उस राम को कौन मानता है? मनुष्य ने उस स्थिति से भी लाभ उठाया है। मन्दिर और मस्जिद की पूजा करने वालों का ही तो यह काम है। उन्होंने ही सर्वसाधारण को आग की भट्टी में झोंक दिया है।'

कमला ने कहा—'परन्तु अब क्या होगा, पिताजी!'

पण्डित ज्ञाननाथ उठ कर बैठ गये। वह बोले—'मनुष्य एक ऐसा प्राणी है कि जो तुरन्त ही आई हुई परिस्थिति से समझौता कर लेता है। अभाव तो किसी न किसी रूप में पूर्ण हो जाता है!'

कमला बोली—'लेकिन पिताजी, आज जिस कठोरता का इन्सान को सामना करना पड़ा है, एक बड़े नर-समूह का पतन हुआ है, क्या इससे भी समाज कोई सबक नहीं लेगा?'

इस बात को सुनकर, पण्डित ज्ञाननाथ ने दूर नीले आकाश की ओर देखा। तभी उनका छोटा बच्चा घिसटता हुआ पास आया। उन्होंने उसे गोद में उठा लिया। पण्डित जी ने उस बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'बेटी, मुझे नहीं दीखता कि हमारी जाति इतना बड़ा धक्का खाकर भी चेत जायगी। सात्विक बनेगी। लगता है, ऐसे भाव हमारे मानस से तिरोहित हो चुके हैं। मुझे यह भी लगता है कि मानवीयता का पाठ हमने कभी स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप, हमारा पतन पूर्णरूप से हुआ है। सद्भावना और प्रेम हमारी जाति ने नहीं पाया।'

बात सुनकर, कमला मौन रह गयी। वह नहीं बोल पायी। लगा कि उसका मन पिता की बात में उलझ गया। उसकी आँखों के सामने का पथ अदृश्य था। चारों ओर अन्धकार ही दीखता था। उसके पिता के पास जो थोड़ी सी राशि थी, वही उस परिवार का सहारा थी। परन्तु वह सहारा भी कब तक चलेगा? उस शरणार्थी-शिविर का बसेरा भी अस्थायी था। उस

परिवार को अपने पौरुष से काम लेना होगा। पुरातन से स्थापित स्थान छूट गया तो क्या, अब कोई दूसरा ढूँढना पड़ेगा इधर कई दिनों से कमला की माँ अस्वस्थ थी। वह बुखार से पीड़ित थी। लगता था कि मर जायेगी। वह नहीं रहेगी। वह स्नेहमयी मा—वह नारी जाने अपने हृदय पर कितना भारी बोझ लिये उस जीवन की डगर पर खड़ी थी। निःसन्देह वह बोझिल थी। अवश थी। असहनीय बनी थी। कमला की मा के हृदय में जो पीड़ा एक बार आकर समाविष्ट हुई, तो वह दिन-दिन उग्र होती गयी...उस नारी को विचलित बनाये रहती। यद्यपि, कमला अपनी मा को बहुत समझाती। वह बताती, यह विपत्ति एक अकेली हमीं पर नहीं आई है, एक बड़े समुदाय पर आई है। धनिक भिखारी बन गये हैं। महलों के वासी सड़क की पटरी पर बैठे हैं। किन्तु इतना सुनकर भी वह मा सन्तुष्ट नहीं थी। उसकी आत्मा रो रही थी। विशेष बात यह थी कि वह नारी अपने पति की मनोदशा को देख-सुनकर और अधिक परेशान थी। उसके मन में यह बात आ गयी कि उसके कोमल पति अब जीवित नहीं रहेंगे। अधिक देर तक नहीं टिक सकेंगे। और जब वह नहीं रहेंगे, मैं भी नहीं रहूँगी, फिर मेरे ये बच्चे—ये मेरी युवा पुत्रियाँ—भी न रह सकेंगी, उनकी सलोनी जिन्दगी भी बरबाद हो जायेगी। हाय! जाने इनकी क्या अवस्था होगी......ये किस रास्ते पर भटकती फिरेंगी......'

किन्तु अपनी मा की उस आशंका को सुन-समझकर भी, कमला उसे शांति देती, वह कहती, 'न, मा! विपत्ति में सभी कुछ क्षम्य है। सभी-कुछ किया जाता है! क्या जाने तुम्हारी ये पुत्रियाँ भी क्रूर और बधिक-समूह के हाथों में पड़ जातीं! सोच तो, कितनी मारी गयी हैं, कितनी दूसरे पथ पर फेंक दी गयी हैं!...हाँ, मा! विपत्ति आती है, तो अपने साथ सभी-कुछ लाती है। यह जिन्दगी किसी भी दुर्व्यवस्था को प्राप्त होती है।' वह बताती, 'उस विपत्ति का बोझ भला किस-किस पर नहीं पड़ा है। आज जाने कितनी बहिनें विधवा बन गयी हैं। कितनी कुमारियाँ धर्म-भ्रष्ट और जाति-भ्रष्ट हो चुकी हैं। तो क्या यह अपराध उनका है! न, मा! परिस्थिति का दोष है! विपत्ति का दोष है! तू शान्त रह! स्वस्थ रह! भगवान फिर हमारी मदद करेगा।'

लेकिन उस समय जब कमला पिता के पास बैठी हुई अपने सिर पर झूलती नंगी तलवार की ओर देख रही थी, उस विपत्ति के गर्भ में पहुँच गयी थी, तभी पण्डित ज्ञाननाथ ने कमला को लक्ष करके कहा—'बेटी, मुझे दिखता है, तुम पर एक और बड़ी विपत्ति आने वाली है। तुम्हारी माँ जाने वाली है। उसके हृदय पर सदमा है। डाक्टर ने यही कहा है। यह शिविर भी तुम्हारी माता के लिए श्राप बन गया है। नित्य हजारों आते हैं तो उनकी करुण गाथाओं को सुनकर तेरी माँ का भी कलेजा फटता है... काँपता है...'

साँस भर कर कमला ने कहा—'तो अब क्या करें। कहाँ जायें पिताजी।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'जाना तो पड़ेगा ही! आज नहीं तो कल जाना पड़ेगा। इस आई हुई परिस्थिति से भी समझौता करना पड़ेगा।'

कमला ने कहा—'दिल्ली चलें?

पण्डित ज्ञाननाथ ने सिर हिलाकर कहा—'हाँ वहीं जाना पड़ेगा।'

उसी समय सरला वहाँ आई। वह एक अन्य परिवार के पास गयी थी। देर से वहीं बैठी थी।

उसे देखते ही कमला ने कहा—'तू अब आई है! इतनी देर में! तुझे माँ के पास बैठना था।'

सरला ने कहा—'जीजी, बैठ गयी थी। बड़ी करुण गाथा सुन रही थी।'

किन्तु इस बात को सुनकर कमला झुँझला पड़ी—'तू दूसरों की करुण गाथा सुनती रह! अपनी गाथा से कान मूँदती रह! भला तू सुबह से माँ के पास गयी है? वह बुखार में तड़प रही है। देखती हूँ, तू जाने कैसी बनती जा रही है।'

सरला लज्जित हो गयी। जैसे अपना अपराध मान गयी। तभी अपनी बात कह कर कमला दूसरी ओर गयी और माँ के पास पहुँच गयी। माँ आँख बन्द किये थी। शायद सो रही थी। उसी समय सरला भी मा के पास पहुँची। वह वहाँ से जब लौटने लगी, तभी माँ ने आँखें खोलीं और क्षीण स्वर में आवाज दी—'अरी, सरला!'

सरला माँ का स्वर सुनकर लौट पड़ी। वह मा की ओर झुक गयी।

मा ने कहा—'कहाँ गयी थी ?'

'मैं एक परिचित परिवार के पास जा बैठी थी, मा ! उस परिवार की लड़की मेरे साथ पढ़ती थी। मा, वह लड़की विपक्षियों के हाथों पड़ गयी। जाने मार दी, या जाने......'

मा ने कहा—'मार न दी होगी, तो किसी गुण्डे ने कैद कर ली होगी।'

'मा, वह बड़ी सुशील और सुन्दर लड़की थी। इसी वर्ष उसके विवाह की बात पक्की हुई थी। वह एक बड़े घर की बहू बनने वाली थी !' सरला ने कहा—'अब तुम्हारी तबीयत का क्या हाल है, मा ! बुखार कुछ कम हुआ ? डाक्टर ने क्या कहा ?'

मा ने साँस भर कर कहा—'डाक्टर ने कहा है, मैं अच्छी हो जाऊँगी।' और वह तब अपना गरम हाथ सरला के ठण्डे हाथ पर रखकर बोली—'हाँ बेटी। मैं जरूर अच्छी हो जाऊँगी। मैं इस जीवन से छूट जाऊँगी। मैं उस बीहड़, पथ से हट जाऊँगी।'

सरला ने आतुर स्वर में कहा—'ऐसा मत कहो, माँ !'

किन्तु मा ने सरला के बोल पर ध्यान नहीं दिया। उसने अपने मन की बात को लेकर कहा—'बेटी, एक बात तुझसे भी कहे जाती हूँ, अपनी जीजी का कहना न टालना ! उसके कहे पर चलना ! और बता, रमाकान्त मिले ? तूने उनसे कहा कि मेरी मा बीमार है। तुम्हें बुलाती है।'

सरला ने कहा—माँ, मैं उस ओर कई बार हो आई हूँ, पर वह नहीं मिले। फिर जाऊँगी।'

'हाँ, जाना ! मुझे उनसे भी कुछ कहना है !'

उसी समय कमला ने कहा—'इस बात को छोड़ो, मा ! बोलो, थोड़ा दूध लोगी ?'

मा ने कहा—'न, बेटी ! मैं आज कुछ न लूँगी। आज एकादशी भी है। बुखार भी तेज है !'

कमला बोली—'तुम अस्वस्थ हो, मा ! कमजोर हो ! दूध ले लो ! डाक्टर ने कहा है। मैंने तुम्हारे लिये दूध रख लिया है।'

किन्तु मा ने कहा—'तुम्हारे पिताजी ने कुछ लिया ? उन्हें कुछ खाने-पीने को दिया ?'

'हाँ, मा! उन्होंने ले लिया। अब रोटी खायेंगे। स्नान करने जा रहे हैं।'

मा बोली—'बेटी, अपने पिता का ध्यान रख। बड़ा कमजोर दिल है उनका! आज जो कुछ हो रहा है, वह क्या उनके मन की आँखों से देखा जाता है। मैं जानती हूँ कि तेरे पिता का मानस तड़प रहा है।'

कमला बोली—'हाँ मा! मुझे पता है। उन्हें कभी रोना भी आता है। आज भी रोये! अभी तो देर से मुझसे बात करते रहे।'

मा ने कहा—'अरी बेटी! तेरे पिताजी को तो मैंने अच्छी अवस्था में भी रोता पाया है। दुखियों का दुःख उनसे कब देखा जाता है। समाज के क्षुद्र और हीन बना दिये गये मनुष्य की अवशता उन्हें सदा रुलाती रही है। ऐसा तो इन्होंने कई बार किया कि जब अपने पहनने के वस्त्र तक जाड़े में ठिठुरते हुए व्यक्ति को दे आये। एक बार एक दरिद्र स्त्री सड़क पर प्रसव-वेदना से कराह रही थी। शायद वह विधवा थी। समाज की दृष्टि में भ्रष्ट थी। तो उस नारी को घर ले आये। वह एक मास तक घर में रही। बच्चा हुआ। उस पर खर्च भी किया गया। जब तक वह पूर्ण स्वस्थ न बनी, उसे नहीं जाने दिया। बाद में उसे एक विधवा आश्रम में पहुँचा दिया था।'

कमला ने कहा—'मा, हमारे पिता देवता हैं।'

मा बोली—'देवता के हृदय में भी इतनी दया होगी, मैं नहीं जानती। परन्तु तुम्हारे पिताजी के पास तो किसी से घृणा करने की बात ही नहीं उठती। इसी से कहती हूँ, तुम उनका ध्यान रखो। मेरी क्या है, रही तो न रही तो! मैं चली जाऊँगी, तो तुम सबका बोझ ही हल्का हो जायगा।'

मा से इतना सुनकर कमला चिढ़ गयी—'तुम्हें ऐसी ही बात सूझती है, मा!'

मा ने अपने सूखे होठों पर जीभ फेरकर कहा—'बेटी, मैं सत्य कहती हूँ। अब यही होना है। मुझे मौत का मुँह दीख रहा है। और तुम्हारा भैया कहाँ है?'

कमला ने कहा—'सुरेश सो गया। उसे दूध पिला दिया था।'

'अच्छा, अच्छा! तुम भी अब खा-पी लो, बेटी! रोटी से निवृत्त हो जाओ। आज गर्मी भी बहुत है। जरा आराम कर लो।'

और उसी दिन जब संध्या समय सरला फिर रमाकान्त के डेरे पर गयी, तो लौट कर उसने अपने पिता, मा और बहिन को बताया, कि दो घण्टे हुए रमाकान्त बाबू का परिवार इस शिविर को छोड़कर चला गया।

: ५ :

परिवार सहित, उस शरणार्थी-शिविर में आये हुए, पण्डित ज्ञाननाथ को अभी कुछ ही दिन हुए थे कि उन्हें एक के बाद दूसरी कठिनाई और परेशानी का सामना करना पड़ गया। शिविर में आते ही पत्नी बीमार पड़ी और फिर उनके परिवार की एकमात्र रक्षा करने वाली कमला को जो मानसिक सन्ताप हुआ, उसे लक्ष करके भी उन्हें अतिशय वेदना का बोझ उठाना पड़ा। बात यह थी कि जब सरला ने रमाकान्त को परिवार सहित उस शिविर से चले जाने का समाचार लाकर दिया, तो उस समय कमला और उसके पिता रुग्ण पत्नी के पास बैठे हुए थे। आते ही सरला ने कहा, 'जीजाजी चले गये। उनके माता-पिता भी इस शिविर को छोड़ गये!'

सुनते ही, पण्डित ज्ञाननाथ ने आश्चर्य प्रगट किया—'क्या रमाबाबू चले गये?' वह बोले—'आश्चर्य है, वह एक दिन भी हमसे आकर नहीं मिले। न उनके पिता ही बोल पाये!'

सरला ने कहा—'पिताजी, जानते तो हैं आप, यह दुनिया है। विपत्ति में कौन किसका साथी बनता है! वह अपने पीछे जायदाद ही तो छोड़ आये,—मिट्टी-गारे की जायदाद—नगद रुपया तो सब ले आये होंगे! और सोचा होगा रमाबाबू ने, उनके माता-पिता ने भी कि ये लोग पहिले ही विपन्न थे, अब और मुसीबत में पड़ गये हैं, तो कहीं कुछ माँग न लें। याचना न करने लगें!'

बात सुनकर कमला वहाँ से उठ गयी। वह वहाँ से शिविर के उद्यान में चली गयी। बहुत से बच्चे वहाँ खेल रहे थे। युवा लड़कियां भी हँस बोल रही थीं। मानो सभी कुछ सम बनकर चल रहा था, उस शिविर में आकर

बसे परिवारों के हृदय में शोक था, तो उसके साथ, हर्ष भी चल रहा था। दुनिया का कोई काम नहीं रुक रहा था। जैसे उस समाज ने सिर पर आई उस विषम परिस्थिति से भी समझौता कर लिया था।

उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ ने पुत्री सरला को सम्बोधित करके कहा—'बेटी, तू भी अब बच्ची नहीं है। सभी कुछ समझती है। अपनी जीजी के सामने अब इस बात को न उठाना। दिखता है कि मेरा बुढ़ापा अब अच्छी प्रकार नहीं बीतेगा। तेरी मा का प्राण भी सुख का अनुभव नहीं करेगा।' वह साँस भर कर बोले—'तूने ठीक कहा बिटिया, रमाकान्त के पिता ने जरूर कुछ ऐसा ही सोच लिया होगा। वह हीन प्रकृति का व्यक्ति है न, तो उसने सहज में ही अनुभव किया होगा कि गरीब ज्ञाननाथ कहीं हमारे ऊपर न पड़ जाये!' इतना कहते ही, श्वेत संन्यासी के मुँह पर क्रोध झलक आया। खून उसकी आँखों में उतर आया। उसने गले के नीचे कुछ खटका और तभी अपने हाथ की दोनों मुट्ठियाँ बाँध कर बोला—'मैं उस निकृष्ट व्यक्ति के समस्त धन पर थूक सकता हूँ। उसने जीवन में धन पाया है, मैंने आत्म सम्मान पाया है, मैंने जीवन को आँखों से देखा है। अपने पैरों पर खड़ा किया है। वह मुझे क्या देता! चाहता, तो कुछ मुझसे ही पा लेता! वह मेरे पास आता, तो मैं कुछ-न-कुछ उसकी झोली में डाल देता! आज तक मैंने जन-समाज से यदि कुछ लिया है, तो दिया भी है। पर उस कम्बख्त का क्या...उसने लिया ही है, दिया कुछ नहीं! कसाई और क्षुद्र कहीं का!'

उस समय पत्नी मौन थी। उसने अपनी दोनों आँखें बन्द कर रखी थीं। जब पण्डित ज्ञाननाथ ने अपनी बात कही, तभी उनकी दृष्टि पत्नी के मुँह पर गयी। उसकी आँखों के बन्द पलकों के नीचे से जो बूँद बनकर खारा जल निकल आया, वह पलकों के पास आकर रुक गया था। उसी करुणापूर्ण दृश्य को देख, उन्होंने पत्नी के सिर पर हाथ रखकर काँपते हुए स्वर में कहा—'कमला की माँ!'

किन्तु इतना सुनते ही, कमला की माँ ने जैसे किनारा पा लिया। उसने तुरन्त पति का हाथ पकड़ कर, आँखों के पलकों को ऊपर उठा दिया। फूट कर रोते हुए उसने कहा—'कमला के पिता, तुम मेरी बच्ची को बचाओ! मेरी कमला......'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'अधीर मत बनो, कमला की माँ! यह विपत्ति का समय है। अपना उपहास न स्वयं करो, न दूसरों से कराओ! तुम्हें आई हुई परिस्थिति से समझौता करना पड़ेगा। इस विपत्ति का सम्मान करना ही होगा। देखती हो प्रत्येक इन्सान का मन-पंछी आँधी में फँस गया है। इस तूफान में कुछ दिखायी नहीं देता। सभी भटके हैं। रास्ता भूल गये हैं। आज इन्सान के संस्कार मिट चुके हैं। धैर्य धारण करो। भगवान् का नाम लो। उसी पर विश्वास करो।'

कमला की मा ने कहा—'प्रश्न मेरा नहीं, मेरी बच्ची का है। देखा नहीं, उसने रमाकान्त के जाने की बात सुनी, तो यहाँ से उठकर चली गयी। जरूर वह कहीं छुप कर रो रही होगी। हृदयहीन मनुष्य की कठोरता पर खीज रही होगी!'

'मैं जानता हूँ, कमला की माँ! कमला मेरी पुत्री, हाँ वही मेरा पुत्र भी है। अब उसी पर हमारा भार है। उसे अधीर क्षुब्ध मत बनने दो। हम सभी उसे सहारा दें। उसे उद्विग्न न होने दें।' फिर बोले—'यह स्वार्थ का संसार है। सांस्कृतिक सम्बन्धों का मोल भला कौन आँकता है! रमाकान्त भी कायर निकला, क्षुद्र...जैसा बाप, बेटा भी वैसा ही दिखायी दिया!'

सरला ने कहा—'पिताजी, इस प्रकार तो जीजी का मन शान्त नहीं रहेगा। यह काँटा जो रमाबाबू चुभा गये हैं, जीजी के अन्तर में पीड़ा पहुँचाता ही रहेगा।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने बात सुनी, तो मत नहीं दिया। उन्होंने अपना मुँह बाहर की ओर उठा दिया। तदन्तर उन्होंने यह स्थान भी छोड़ दिया। वह स्वयं उद्यान की तरफ चले गये। दूर से ही उन्होंने देखा कि कमला अकेली ही एक पेड़ के नीचे खड़ी है। वह दूर जंगल की ओर देख रही है। पण्डित ज्ञाननाथ सीधे वहीं पहुँचे। कमला के ठीक पीछे जाकर, वह काँपते हुए स्वर में बोले—'बेटी कमला!'

सुनकर, कमला ने तुरन्त ही अपना मुँह पोंछ लिया। पिता की ओर देखा।

ज्ञाननाथ ने कमला की आँखें देखीं, तो अपने सूखे होंठ खोले—'जानता हूँ बिटिया, जब नारी रोती है, तो अपने हृदय की गहरी वेदना आँखों के रास्ते बहा देना चाहती है। शायद वह वेदना उसके लिए असह्य हो जाती है। मैं अभी तेरी माताजी को भी रोती छोड़ आया हूँ। यहाँ आया, हूँ तो तुझे भी रोती पाता हूँ।' कहते हुए ज्ञाननाथ रुक गये। वह कमला के झुके हुए सिर पर हाथ रख कर बोले—'किन्तु बेटी, इस एकान्त में, शायद जीवन में पहली बार, मैं तुझसे इतना कहना चाहता हूँ कि तू अपनी धीरता को न खो देना। इस ज्ञाननाथ ने तुझे गम्भीरता भी दी है, उसे भी हल्की मत बना देना। रमाकान्त अब तेरा पति नहीं बनेगा। उसके वे पहिले विचार और संस्कार अब नहीं रहे। वे आंधी में उड़ गये। देखती तो हो कि इस झंझावात में अब सभी कुछ बदल गया है। पड़ोसी तो शत्रु बने ही, पर अपना भी 'अपना' नहीं रह गया। अब तो कोई और ही तेरा पति बन सकेगा।' इतना कहते हुए वह पेड़ का सहारा लेकर खड़े हो गये। पेड़ के ऊपर हरे-हरे पत्ते थे। दिन की धूप में लोग उसके नीचे आश्रय लेते थे। आराम से बैठ जाते और कुछ सो भी जाते थे। पेड़ की उस छाई हुई आभा को देख, पण्डित ज्ञान-नाथ को जैसे सहारा मिला। उन्होंने अपने-आप में कुछ बल भी अनुभव किया। मन की उसी अवस्था को लिये हुए वह बोले—'कमला बेटी, देखती हो यह पेड़ कितने उल्लासपूर्ण गर्व से अपनी छाती ताने खड़ा है। लेकिन फिर भी यह झुका है। इन्सान को छाया देता है। हजारों पक्षियों को आश्रय प्रदान करता है। तुम्हारा यह पिता भी यही कहने चला है कि तुम गुलाब की छोटी-सी टहनी मत बनना। तुम भी अपने इस नारी-जीवन को पाकर वृक्ष सरीखी विशाल छाया सिद्ध होना। तुम वासना पूरित सड़ांध में मत गिर जाना। पवित्र बनना। अक्षत बनना। पति पाने वाले जिस जीवन की तुम कल्पना करती हो, मैं मानता हूँ, वह भी तुम्हारी एक माँग है, स्वाभाविक है। प्रत्येक नर और नारी की यही आकांक्षा है। परन्तु इस आकांक्षा से ऊपर जो इस नर-नारी के समूह का पवित्र सौदा है, चाहो तो, तुम भी उसे करके देखना। कष्ट तो होगा। इच्छाओं को मारना होगा। परन्तु इस झंझावात के बाहर निकल कर जब तुम सपाट तथा चौरस पथ पर अग्रसर होगी, तो अपने समक्ष न रहते भी, अपने इस पिता को याद करोगी और कहोगी, पिता ने मुझसे

ठीक कहा। मुझे सच्चे पथ की ओर निर्देश किया। बिटिया, हमारा समाज भ्रष्ट हो गया है। चरित्र-भ्रष्ट समाज कभी उठ नहीं सकता। जाग नहीं सकता। उसका विवेक भी काम नहीं कर सकता। आज जो तुम सरेआम नर-हत्या देखती हो, यह भी चरित्र भ्रष्टता का नाम-रूप है। आदमी बुद्धिहीन बन कर जानवर की कोटि में पहुँच गया है। भगवान और भावना से मुँह मोड़ चुका है।'

इतनी देर में कमला की आँखें सूख गयी थीं। उसका मुँह ऊपर उठा था। उसके पिता सचमुच ही, उसे ऋषि-तुल्य लग रहे थे। भले ही उसके पिता में शारीरिक बल न रहा हो, परन्तु जिस आत्मबल की बात वह सुनती आई थी, वह उसे स्वयं अपने पिता में दिखायी दिया। अतएव, श्रद्धा से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा।

उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ ने फिर कहा—'बेटी, तुम्हारी माँ तुम्हारे लिए अधीर है। मुझे दिखता है कि वह अब नहीं रहेगी। परन्तु जाना तो सभी को है। शायद तुम्हारी माँ को मुझसे पहिले जाना हो। जैसी भगवान् की इच्छा! लेकिन तुम तो अभी नयी कली हो। अब महँकने चली हो! इसी लिए, मैं तुमसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि जिस वासना की आग में आज नर-नारी समाज जल रहा है, तुम भी उसमें न कूद जाना। तुममें जो अब भीनी-भीनी सुगन्ध आने लगी है, तो स्वयं उस गन्ध में न डूब जाना। यौवन तो आता है और जाता है। यह बड़ी तेज चाल से आता है, उसी प्रकार लौटता है। तभी तो इसका नाम आँधी रखा गया है। नर और नारी को बहुधा उड़ता पाया गया है। और जो उड़े हैं, उनको फिर क्या जीवन मिला है! ठीक से कोई ठिकाना उपलब्ध नहीं होता। इतना तो सत्य है कि विवाह इसी विषम परिस्थिति को देखकर एक 'समझौते' का रूप ग्रहण करता है। स्वाभाविक है कि हमारा स्पन्दशील प्राण कुछ कहना चाहता है। किसी की मधुर वाणी में डूब जाना चाहता है। परन्तु यह तो समय-समय का खेल है बिटिया! आज वह समय नहीं। आज तो पीड़ाओं का युग है। मानव-समाज को लक्ष कर महाकाल अपने तीखे और तेज दाँत किटकिटा रहा है। लगता है कि प्रकृति भी कोप से भरी है। हाँ, कमला बेटी! आज का मनुष्य सभी ओर से अस्वाभाविक बनकर प्रकृति से दूर हो चला है। प्रकृति के इस

विकट रूप में यह केवल अपने स्वार्थों का ही ताना-बाना पूरता है। जिसका फल है खून, हत्या! परस्पर रोष, ईर्षा! आज का मनुष्य सन्देहशील बनकर एक दूसरे से डर कर चौंकता है। एक दूसरे को साँप समझता है! क्यों? भला ऐसा किसलिये? इसीलिए न कि हमारा नैतिक धरातल अत्यन्त हीन और क्षीण बन गया है। हम काँप रहे हैं। पैर डगमगा रहे हैं। अपने जीवन की दुनिया को छोड़ उस सीमा को लाँघ कर अन्य कुछ भी देखने में अपने को असमर्थ पाते हैं। और इसका मूल कारण है हमारा आध्यात्मिक पतन! बौद्धिक शिक्षा का अभाव। यह परम्परा इस देश में देर से चली आई है। हमने देर से अपना चरित्र रंग दिया है। इन्सान निर्लज्ज बन गया है। एक ही चुल्लू में चरित्र पी लिया है। इसीलिए समाज में एकात्मीयता नहीं रही। व्यक्ति की जागरूकता मिट गयी। आज तो आदमी इतना नंगा और क्रूर बन गया है कि जन-सेवा के नाम पर, धर्म के नाम पर, जातीयता के नाम पर, हजारों व्यक्तियों का खून कर सकता है। गाजर-मूली के समान बच्चों को कटवा सकता है! नारियों का अपहरण और उनका सतीत्व नष्ट किया जाता है। उन्हें बाजार में बैठाया जाता है। भला क्यों! हाँ, इतना सब क्यों, कमला बेटी! इसीलिए न कि हमने सदियों से इन्सानियत की पूजा का झूठा दम्भ रचा! झूठे नारे लगा कर एक बड़े समाज को भ्रम में रखा। आदर्श और धर्म का झूठा नारा लगाया और तूने भी देख लिया अब कि वह भला-सा लगने वाला रमाकान्त, जिसने तुम्हें बड़े-बड़े आश्वासन दिये होंगे, ढेर सारे सुन्दर वाक्य सुनाये होंगे, आज अवसर पाते ही बागी बन गया। उसका मन विद्रोही हो उठा। चार दिन से शिविर में रहकर भी नहीं मिल सका। एक क्षण के लिए भी बात करने का अवसर नहीं पा सका। अपनी भावी पत्नी को वह यह भी नहीं बता सका कि अब उसे क्या करना है! भविष्य के लिये उसका क्या मत है! क्या विचार है!' कहते हुए पण्डित ज्ञाननाथ के माथे में फिर बल पड़ गये। नसें तन गयीं। उन्होंने घूर कर दूर अन्तरिक्ष की ओर देखा और कहा—'झूठा कहीं का! धूर्त्त और कमीना!' उन्होंने कमला को देखा। उसे भी घूर कर देखा। और फिर एकाएक ही, नीचे झुक, धरती पर बैठते हुए, उन्होंने आर्द्र होकर कहा—'बेटी, बस इतना ही कहता हूँ कि तू अपने को देखना। अपने आत्म-सम्मान को समझना। तू अन्धी न बनना।

वासना के कुण्ड में डूब न जाना ! मैंने अपनी समूची साधना और ज्ञान तुझे प्रदान किया है, उसे भ्रष्ट न कर देना।'

कमला स्वयं नीचे झुक गयी। वह पिता के चरणों के पास बैठकर बोली—'पिताजी, मैं तुम्हारे हृदय की पवित्र धड़कन सुन रही हूँ। आपकी भावना समझती हूँ। आपने आज जो कुछ कहा है, मेरे जीवन का यही आधार होगा। मेरा यही मंत्र होगा !'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'मेरा अपमान होता, तो उसे पी जाता। परन्तु मैंने तो आज देखा कि मेरी प्यारी बिटिया का तिरस्कार हुआ है। यह मेरे लिए असह्य है। तेरी माता के लिए भी यह कष्ट दारुण है। उसने सुना-तो जैसे जहर का घूँट पी लिया। मैं तेरी मा के मन को जानता हूँ, बिटिया ! वह दीन है तो क्या, वह पवित्र है। सम्मान के लिए मरना जानती है। और आज उसी के समक्ष रमाकान्त और उसका पिता तेरा अपमान कर गये। तेरी मा का भी अनादर कर गये !'

कमला ने कहा—'पिताजी, मैंने आज समझा कि आदमी पत्थर है, परिस्थिति का क्रीत दास है।'

ज्ञाननाथ ने कहा—'हां, आदमी अपाहिज है, पंगु है !'

कमला बोली—'पिताजी, यदि ऐसा है, तो यह देश मरेगा ! इसका समाज भी नष्ट हो जायगा।'

ज्ञाननाथ ने कहा—'सच्चा जीवन तो आज भी नहीं है ! लगता है, लुटेरों का देश है ! पाखण्ड और लूट का बाजार सर्वत्र दीख पड़ता है !'

कमला ने उठकर कहा—'मैं मा के पास जाऊँगी, पिताजी !'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'तुम जाओ। मैं यहाँ सन्ध्या करूँगा। एकान्त में बैठूँगा।'

चलते हुए रुक कर, कमला ने फिर कहा—'पिताजी आप भरोसा रखिये, मैं विचलित नहीं बनूँगी ! मैं अपने जीवन से लड़ूँगी।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने आलोड, और सदय भाव से कमला की ओर देखा—'मेरी अच्छी बच्ची !'

उस समय दीये जल चुके थे, कमला शिविर की ओर लौट गयी थी।

: ६ :

वह आनेवाली रात कमला के लिए सचमुच असह्य थी। मानों वेदनाओं से भरी हुई रात। उस शरणार्थी शिविर में लोगों के पास चारपाइयां नहीं थीं। नीचे पृथ्वी पर ही बिस्तर लगते थे। कमला के बिस्तर पर उसका छोटा भाई था, वह सो रहा था, निर्विघ्न, निर्द्वन्द्व। उस समय समस्त संसार सो रहा था। कोलाहल से पूर्ण वह शिविर भी शान्त था। दूर सड़क पर बत्तियां जल रही थीं। वे मानो सोते हुए संसार का पहरा दे रही थीं। उन बत्तियों की मूकवाणी उस शिविर की वेदना और व्याकुलता अपने पेट में लिये थी। इस प्रकार उस मौन तथा शान्त बने वातावरण में कदाचित एक कमला ही ऐसी दुर्भागिनी थी, जो अपनी भरी जवानी का बोझ छाती पर लिए, आधी से ऊपर गयी रात में भी जाग रही थी और करवटें बदल रही थी। यद्यपि, यह भी नितान्त सत्य और अमिट बात थी कि उस शिविर में ऐसी और भी दुर्भागी नारियाँ थीं कि जो उस रात में नहीं सो सकी होंगी। क्योंकि उन नारियों में कोई निरालम्ब होकर उस शिविर में आई थी और कोई असमय ही, वैधव्य का शाप पा गयी थी! किसी ने अपनी आँखों के सामने ही पति को घायल होते तथा मरते देखा और किसी ने प्राण-प्यारे पुत्र को। वह मा और पत्नी के सोहाग को छिनाकर वहां उस शिविर में आकर बैठी हुई नारी भला कैसे शांत रहती, कैसे आशा से सो पाती। अतएव, वह समस्त शिविर ही वेदना से पुरर था। उस शिविर के हर सांस में करुणा तथा पीड़ा का अवसाद भरा था। किन्तु कमला के मन की जो स्थिति थी, वह जैसे सर्वथा पृथक थी। उसने न अपना बच्चा खोया, न पति खोया। उसने अपना सम्मान खोया था। वह युवा कि जिसने अपने जीवन में केवल माता-पिता से सम्मान की सौगात पाई, उसी को अपने हाथों से छिनता पाकर, वह सचमुच ही तड़प गयी! वह विचलित बन गयी!

रात अन्धेरी थी, काली-काली! कमला बार-बार करवटें बदल रही थी। देर से उसका और रमाकान्त का जिस प्रकार सान्निध्य स्थापित हुआ था, और उस परस्पर के जीवन में उन दोनों में एक-दूसरे से जो-कुछ भी कहा-सुना था, वह सभी, मानो लिपि-बद्ध होकर एक इतिहास का रूप ग्रहण कर

चुका था। उस इतिहास की एक-इकाई में बँधी हुई वह कमला जैसे अपना अस्तित्व खो चुकी थी। इसलिये उसका दम घुट रहा था। वह इतिहास,—वह गया-गुजरा समय—मानो कालकूट बनकर अब खिलखिल हँस रहा था। वह अपने नोकीले और तेज दांत दिखा कर उस सुहावनी और मधुर कमला को बरबस भयभीत बना रहा था। वह चिल्ला कर सुना रहा था—तू मूर्ख! समझती नहीं, पुरुष ऐसा ही भयानक होता है। किसी नारी को ठगते समय पुरुष जितना मधुर भावना से भरा और सुहावना लगता है, तो बाद में वह उतना ही दुरूह बन जाता है! यह रमाकान्त—ही-हो-हो-ही! वह भी पुरुष है। वह भी नारी को पैसे के समान परखना जानता है। नारी को बाजार के सौदे के समान समझता है! और तू,—अरी, तू! सच, भोली कहीं की! निरी भावनामयी! अकेली नारी...निराश्रित...निरीह!

जब देर तक कमला बिस्तर पर पड़ी हुई करवटें बदलती रही, तो अन्त में वह उठकर बैठ गयी। उसकी दृष्टि दूर सड़क की बत्ती पर लगी थी। वह जलती हुई बत्ती जैसे उसके हृदय की वेदना का प्रतिरूप थी। उस अवस्था में वही उसका आधार थी। जब कमला उठकर बैठ गयी तो पीठ को दीवार के सहारे टिकाकर और सिर को भी उस दीवार का सहारा देकर उसके मन में बात उठी, तो ऐसा भी होता है प्रसव;—इतना नीच! राम-राम! तब तो इस पुरुष का कोई लक्ष नहीं! कोई विचार नहीं। इसकी कोई परम्परा नहीं। मन में इतनी-सी बात उठने के बाद ही, कमला ने उस विशाल शिविर पर विहंगम दृष्टि डाली, फिर जब उसने सड़क की बत्ती की ओर देखा, तो मानो उसने चीखते हुए स्वर में कहा—और यह विशाल समुदाय भी तो पुरुष की हृदयहीनता का परिचायक है। ये पीड़ित परिवार चिल्ला रहे हैं कि पुरुष की दूषित मनोवृत्ति के हम शिकार बने हैं। उसी के क्रूर आघात सहकर यहां आ पड़े हैं! और रमाकान्त भी पुरुष है। उसके पिता के पास पैसा है। उसके पिता का बहुत सा रुपया बैंक में जमा है।

उस प्रसंग में यह बात कह देना भी उचित होगा कि दिन में ही सरला ने कमला को बताया कि रमाकान्त के पिता परिवार को यहां शिविर में छोड़कर दिल्ली गये थे। वहां एक बड़ी बिल्डिंग का सौदा कर आये थे। शिविर में ठहर जाने का भी उनका एक अभिप्राय था। अब वे अपने को धनिक बताना

पसन्द नहीं करते थे। वह सरकार से सहायता के रूप में एक बड़ी रकम लेने की बात सोचते थे।

लेकिन उस रात में अपने मन में भरी वेदना के चीत्कार में, स्वयं कमला के सामने तो एक ही बात थी और वह यह कि सरला ने दिन में उसे यह भी बताया कि रमाकान्त और उसके परिवार के लोग इस बात को अपने पास लिये हैं कि पण्डित ज्ञाननाथ की दोनों पुत्रियां कई दिन तक मुस्लिम गुण्डों के हाथों में रहीं। वे भ्रष्ट हुईं। किसी प्रकार उन गुण्डों के हाथों से निकलीं तो इस शिविर में आकर प्रविष्ट हो गयीं। जिस समय यह बात सरला ने कही, तो उस बात के अन्त में ही उसने कहा कि रमाकान्त ने स्वयं यह बात दूसरों से कही है। उसने हम दोनों का उपहास किया है। और तभी सरला ने कहा, कमीना कहीं का! अब ऐसी झूठी बात का प्रचार करता है! हमारा उपहास करता है! जीजी, रमाकान्त चला गया, नहीं तो मैं उसका मुँह नोच लेती। मुँह पर तमाचा मार कर कह देती, बेशर्म, डूब मर चुल्लू भर पानी में! तूने दया और शर्म को भी चुल्लू बनाकर पी लिया!'

दिन में, जिस समय सरला ने यह बात कही, तो उसके मन का क्रोध न केवल उसकी वाणी में प्रस्फुटित हुआ, अपितु उसकी उन सुन्दर आंखों में भी उतर आया। वह पञ्जाबी बाला जैसे चण्डिका का रूप बन गयी। सरला वैसे भी स्वभाव की क्रोधी थी। किन्तु उस समय तो उसकी मनोदशा मुँह पर झलक आई थी। अपनी छोटी बहिन की बात सुनकर, कमला मौन थी। वह गम्भीर थी। फलस्वरूप, वह दिन की बात जब उस रात के प्रहर में उसके सामने आई, सरला की कठोर मूरत दिखायी दी तो कमला एकाएक बोली, निःसन्देह, ऐसे व्यक्ति का मुँह ही क्या नोंचा जाय, जीवन ही नोंच लिया जाय! ऐसे व्यक्ति के प्राणों के स्वांस जितनी जल्दी समाप्त हो जायें, अच्छा है! वे दूषित और सड़ांद भरे स्वांस! राम-राम! ऐसा दुर्भाग्य है इस जाति का! ऐसे अकर्मण्य व्यक्तियों का समूह है यह! इतना निर्लज्ज! इतना निर्बुद्धि!

तब एकाएक ही, कमला को याद आया कि एक बार पिता ने उससे कहा था, बेटी, इस विशाल हिन्दू जाति का उत्थान और पतन स्वयं इसके व्यक्तियों द्वारा हुआ है। यह देश अपने ही व्यक्तियों द्वारा ठगा गया है। इस हिन्दू

जाति का सांस्कृतिक रूप हिन्दुओं ने ही भ्रष्ट किया है। जिस समय कमला ने यह बात सुनी थी, तो कदाचित् उसने सुनकर भी अनसुनी कर दी थी। परन्तु उस शिविर में आकर, शरणार्थी बनकर, अपने पुरखों के घर से दूर होकर, पांच नदियों के प्रान्त में पैदा हुई वह बाला, वह तेजोमयी तरुणी, उस रात के प्रहर में जैसे अपने पिता के एक-एक शब्द को सत्य मान लेने के लिए झुक गयी। वह रमाकान्त जो उसके जीवन के सांसों में मिल चला था जब उसी को उसने इतना हल्का, अतिचारी और कुटिल पाया तो वह और किसी की क्या बात कहे! जिस व्यक्ति के ऊपर उसने कभी सन्देह नहीं किया, जिसे अपना पति स्वीकार किया, वही अपनी भावी पत्नी के लिए ऐसा बन गया! क्रूर हो गया। घातक बन गया। तो, किस मुँह से कहे कमला कि उसका समाज जीवित है। उसमें स्थायित्व है। उस समाज में बल है। उसका भौतिक धरातल भी ऊँचा है!

अपनी किताबों में कमला ने शिवाजी, प्रताप आदि नृपतियों की कहानियां पढ़ी थीं, उन कहानियों के ऊपर पण्डित ज्ञाननाथ की टीकायें भी सुनी थीं। क्योंकि वे न केवल कमला के पिता थे, वरन् उसके आध्यात्मिक गुरु भी थे। वे शुद्ध रूप में अपनी पुत्रियों को समाज, देश और जाति का इतिहास बताते, उसकी गौरव गाथा सुनाते। अतएव, पण्डित ज्ञाननाथ ने अनेक अवसरों पर टीका करते हुए कहा, ये चमकते हुए सितारे अपने धर्म गुरुओं द्वारा, अपने साथियों द्वारा और अपने जाति भाइयों द्वारा असमय ही अस्त कर दिये गये! राणा प्रताप के लिए उनका मत था कि यह चमकता हुआ तारा, जो भारतीय क्षितिज पर आकर चमका सचमुच ही बड़ा तेजोमय था। परन्तु दुर्भाग्य इस सितारे का कि अपने जाति-बन्धुओं द्वारा ही, मुसीबतों के झंझावात में पड़ गया। स्वयं भी नीति-निपुण नहीं था। वह वीर सैनिक, एक राजा की नीति का आश्रय नहीं ले सका। वह धर्म-अधर्म की बात को अधिक महत्व देता रहा दूरदर्शी अकबर इस बात को समझ चुका था। वह राजपूत राजाओं की धर्म-प्रियता को भी जानता था। कदाचित इसीलिए, उसने लोहे से लोहे को भिड़ाया। पण्डित ज्ञाननाथ का मत था कि यदि राणा प्रताप नीतिज्ञ होते तो एक अकबर क्या, हजार अकबर भी उसका बाल-बांका न कर सकते थे। वह बहादुर और वीर प्रताप जाति के लिये मरे। वे जाति के स्वत्व

और धर्म की रक्षा के लिये समर्पित हो गये। पण्डित ज्ञाननाथ ने अपनी पुत्रियों को बताया था कि उस प्रातःस्मरणीय वीर के साथ मेवाड़ की जनता का भी बलिदान हुआ। समूचा मेवाड़ उस आग की ज्वाला में झुलस गया। भाई ने भाई के गले पर आरा चलवा दिया।

देश की और जाति की वर्तमान असहाय अवस्था को लक्ष्य करके ही, जब कमला अपनी स्थिति के किनारे आ लगी, तो वह बोली, आज भी यही हुआ है। हिन्दू अपने पाप का शिकार बना है। आज भी अपनों के द्वारा हिन्दू ठगा गया है!

अपने मन की उस विषम स्थिति में डूबी हुई कमला जब देर तक दीवार का सहारा लिये हुये बिस्तर पर बैठी रही तो तभी एका एक पास के बिस्तर पर सोती हुई सरला जाग पड़ी। उसने जब आंख खोलकर कमला की ओर देखा तो वह छूटते ही बोली—"तुम जाग रही हो जीजी! कब से बैठी हो।" इतना कहकर सरला स्वयं उठकर बैठ गई। वह अपने बिस्तर को छोड़ कर कमला के निकट आ गई। कमला ने उस समय अपनी कमर दीवार से हटा ली थी। अपने दोनों घोटों पर हाथों की कोहनियां रख लीं थीं और उन पर मुँह टिका लिया था। जब सरला ने अपनी बात कही और स्वयं उठकर भी जीजी के पास आ गई, तो तभी, कमला ने अपना झुका हुआ मुँह ऊपर उठाया। उसने अपनी उदास आंखों से सरला की ओर देखा। सरला ने कहा—'जीजी! सुनती हूँ कि जीवन बहुत बड़ा है! वैसे यह कभी भी समाप्त हो सकता है। इसीलिये जब ऐसी बात है, जीवन ऐसा संदिग्ध है, तो हममें रोष क्यों? किसी के लिये दुराव क्यों?' इतना कहते हुये सरला ने सांस भरी। कमला के हाथों पर रखा हुआ अपना हाथ हटा लिया और तब दूर सड़क की ओर देखते हुये कहा—'मैं जानती हूँ जीजी! तुम्हारे मन में क्या है? पर आज तो सभी कुछ उलट-पुलट गया है। एक रमाकान्त क्या समूचा समाज ही बदल गया है! इसलिये पछतावा मत करो। अब तो हमें जिस रास्ते पर चलना है उसकी ओर देखो।'

सरला से इतनी बात सुनकर भी कमला मौन थी। वह जैसे तब भी अपने विचारों में उलझी हुई थी। सरला की बातों को वह नहीं सुन सकी। किंवा सुनकर भी उन्हें टाल रही थी। फलस्वरूप अपनी जीजी को मौन देख

कर सरला फिर बोली—'आओ, जीजी ! बाहर चलें। बाग में चलें। उस कुयें पर चल कर बैठें।

कमला ने कहा--'न, सरला ! मैं बैठी हूँ। नींद नहीं आई तो जाग रही हूँ। तू सोजा।'

किन्तु सरला जैसे इस बात को समझ चुकी थी कि उसकी जीजी का मन अशान्त है, बेचैन है। इसलिये अब वह भी न सो सकती थी और न कमला को अकेली छोड़ सकती थी। वह अभी किसी निश्चय पर पहुँच ही रही थी कि तभी उसने देखा कि बात कहने के साथ कमला का स्वर भारी हो आया है। गला अवरुद्ध बन गया है। उसकी आंखें जैसे कुएँ के उबलते हुए पानी की तरह छलछला आई हैं। उन आंखों की वेदना पलकों के किनारे पर खड़ी है और चीत्कार कर उठी है। इतना देखते ही, सरला ने फिर अपनी जीजी का हाथ पकड़ लिया। उसने अपने मुलायम गालों को भी जीजी की बाहों पर टिकादिया। उसने कहा—'मेरी अच्छी जीजी ! नहीं बताओगी कि तुम्हारे मन में क्या है ! मुझसे भी नहीं कहोगी !' उसने उसी प्रकार अपना मुँह रखे हुये मानों नितान्त करुण हुये स्वर में कहा—'जीजी। देखती हो मानव जल रहा है ! मानव सर्प के समान फूत्कार कर रहा है ! मानव ही मानव को डस रहा है ! इस इन्सान के पुराने सम्बन्धों की कड़ियां टूट रहीं हैं और नई कड़ियों को जोड़ने के लिए प्रयत्नशील हो रहा है। जीजी ! मनुष्य का यह भी कैसा व्यापार है ? एक घर को बिगाड़ रहा है दूसरा बना रहा है ! हमारा पंजाब हमारी पांच नदियों की धरती आज आग की सुलगती हुई चिता बन रही है। बताओ तो सही अब हम क्या करें ? क्या सोचें ? अजीब बात है कि...स्वार्थ पनप रहे हैं...सर्प के समान जीभें लपलपा रहे हैं...'

इतना सुनकर कमला ने सांस भरी। उसने अपनी भरी हुई आंखें पोंछ लीं। उस शिविर के विशाल आंगन में सोते हुए परिवारों पर दृष्टि डालकर वह बोली—'हां सरला, स्वार्थ जल रहे हैं और स्वार्थ पनप रहे हैं। उसने झटके के साथ, आतुर भाव में अपना मुँह सरला की तरफ करते हुए कहा—'यह संसार ही ऐसा है। मरने वाले मरते हैं और जीने वाले अपनी दुनियां की रचना करते जाते हैं। आज भी यही बात है।' वह झुँझलाकर बोली—'किन्तु इस सबका अर्थ क्या है ! मनुष्य की इस भूख का और व्यथा का समन्वय

क्या है ! बोल तो ? क्या यों ही यह मनुष्य मरेगा ? इस प्रकार ही ठगा जायेगा !' यह कहते हुए कमला ने जैसे ही ऊपर आसमान की ओर देखा तो कहा—'तब तो यह बहुत बुरा है ! जाने क्यों इस सृष्टि की रचना का व्यापार होता है ? इन्सान मरते हैं, मारे जाते हैं आखिर क्यों ? क्या धर्म की भूख मिटाने के लिये ? स्वार्थ का पेट भरने के लिये ? न सरला, यही सब तो मनुष्य की दुखित प्राणी का उदाहरण है ! मनुष्य ही पाप करता है और मनुष्य ही पाप मिटाता है । आजी इसी पाप का शिकार मुझको भी बनना पड़ रहा है ।' यह कहते हुये कमला ने फिर सीधी बात कही—'अगर मुझे पता होता कि रमाकान्त ऐसा स्वार्थी और दम्भी निकलेगा तो मैं आज से बहुत दिन पहले उसके मुँह पर थूक देती और इस प्रकार क्या मैं उसे अपना भावी पति घोषित कर पाती । ऐसा अविचारी मनुष्य जो एक बार नारी को प्यार करके घृणा भी करता है वह मनुष्य देवता के स्थान पर विषैला नाग सिद्ध होता है । राक्षस है ।'

अपनी जीजी से इतनी बात सुन कर सरला कुछ देर मौन रही तब वह दूसरी ओर देखती हुई बोली—'जीजी ! सर्वत्र ऐसा ही दीखता है, शाम को पिताजी कहते थे कि तुम्हारे मन पर दुःख आ पड़ा है । वैसे ही हमलोग शरणार्थी बन गये हैं । लेकिन इस नई बात ने तुम्हारे समान पिता जी और माता जी के हृदय को भी चुटीला कर दिया है ।'

कमला ने कहा—'मैं इस बात को अपने पास नहीं रखूँगी । मैं तुमसे भी कहूँगी कि अब इस रास्ते की ओर देखना हमारा काम नहीं है । हमारे सिरपर एक बड़ा उत्तरदायित्व है । हमारे माता पिता वृद्ध हैं । हमारा छोटा भाई है । इतने बड़े बोझ को उठाकर मेरे लिये जरा भी इस छोटी बात में उलझना शोभा की बात नहीं है !'

सरला ने कहा—'हां, जीजी ! बात तो यही है ? पर जब कोई बात सामने आती है तो क्या आसानी से भूली जाती है । मुझे रमाबाबू से ऐसी आशा नहीं थी । उनकी वह भोली-सी सूरत मुझे आज भी दिखाई देती है । उनकी वह सुन्दर वाणी आज भी मेरे कानों में गूँजती है । सच वह रमाकान्त बाबू ।......

एकाएक जैसे खिज कर कमला ने कहा—'अब तू ऐसे व्यक्ति का नाम

क्यों लेती है ! वह मेरे लिये मर गया । मैं समझ गई कि विषधर सांप मेरे जीवन से खेल गया ! अच्छा ही हुआ कि मेरा जीवन बच गया !'

सरला ने कहा—'जीजी, जीवन कहां बच गया ! कैसे बच गया ! तुम तो नारी हो न ! और नारी जब एक बार किसी पुरुष से सम्बन्ध बनाती है तो क्या उसे भूल जाना पसन्द करती है ? मैं देखती हूँ कि तुम भी रमाबाबू को एकाएक भूल नहीं जाओगी । प्रेम में नहीं तो प्रतिशोध की आग में जलोगी ।'

कैसी अजीब बात थी कि छोटी बहन जैसे बड़ी बहन की अगुआ बन रही थी । उसके भविष्य की ओर संकेत कर रही थी । सरला अपनी जीजी के सामने बहुत कम बोलती थी । वह जिस प्रकार का आदर करती तो उसी तरह अपनी जीजी का सम्मान करना पसन्द करती थी । लेकिन उस समय जब उसने अपनी जीजी को विषम परिस्थिति में पड़ी पाया तो बरबस ही, उसे गुरु के समान बोध-दान देने लगी । और यह भी एक अजीब बात थी कि कमला ने जब सरला से बात सुनी तो वह उसकी बात सुनकर चिढ़ी नहीं, मगरूर भी नहीं बनी; अपितु वह निरी झुकी हुई बालिका के समान उन बातों में उलझती गई । इसीलिये वह मौन थी और गम्भीर बनी थी । वह कुछ कहने जा रही थी कि तभी पास के बिस्तर पर पड़ी हुई मां को खांसी उठी, उसकी मां को देर से दमे की शिकायत थी । ठंडी हवा का झोंका खाकर मां को प्रायः खांसी उठती । कफ गले में अटकता तो उसका सांस रुकता । ऐसे समय वह अधिक बेचैन बनती । उस समय भी मा की यही हालत हुई । जब खांसी उसे उठी तो जाग गई । उसे बुखार था ही, इसलिये बुखार और खांसी की पीड़ा में वह बरबस पीड़ा से भर कर कराह उठी । वह अत्यन्त बेचैन बन गई । लेकिन जब उसने आंख खोलकर अपनी दोनों पुत्रियों को एक ही बिस्तर पर बैठी पाया तो अपनी पीड़ा और व्यथा को भूलकर उन पुत्रीयों की समस्या में उलझ गयी । उसे खांसी उठ रही थी कफ गले में अटक रहा था । सांस रुक-रुक कर आ रहा था । प्राण आंखों में उतर आया था । लेकिन इतना होने पर भी, उसने पुत्रियों को अपने पास आने का संकेत किया । कमला उठकर मां के पास गई, तभी मां ने उसके सिर पर हाथ रखा और कठिनाई से कहा—'मेरी बच्ची ! अब तू अकेली चलना । अपने बनाये हुये रास्ते पर

बढ़ना।' इतना कहते हुये उस मां के नेत्र भर आये। उसने पीली-पीली खखार का एक बड़ा गुच्छा-सा पास रखे हुये कुल्हड़ में थूका। कुछ शान्ति सी पाकर उसने कमला का सिर अपनी छाती से लगाते हुए कहा—'बेटी, जो कुछ हुआ उसे भूल जाना। मैं जा रही हूँ। अब जाना ही चाहती हूँ। इसलिए अपनी थाती तुझे सौंपे जाती हूँ। मैं तुझसे बस इतना ही कहे जाती हूँ, कि अपनी भलाई सोचना। भले रास्ते पर चलने की बात मन में रखना।'

उस समय संयोग की बात यह थी कि पण्डित ज्ञाननाथ भी जाग गये थे। वह देर से जाग रहे थे। जब पत्नी ने अपनी बात कही, तो उन्होंने वह सुन ली, वह बिस्तर पर उठ कर बैठ गये। वहीं से बोले—'मेरी कमला नासमझ नहीं है। यह अपनी प्रतिष्ठा समझती है।'

किन्तु उस समय अपनी बात कहने के उपरान्त ही कमला की मा को फिर खांसी उठी। वह तेज उठी। पेट की नसें दुःख गयीं। मा फिर पड़ गयी। दोनों पुत्रियों ने मा की उस अवस्था को देख, अपने-आप में पीड़ा अनुभव की।

कमला ने कहा—'मा।'

अधीर स्वर में मा ने कहा—'बेटी!'

'आज खांसी अधिक है, मा!' कमला ने कहा।

किन्तु मा से बोला नहीं गया! उसका स्वांस रुक गया। बलगम का वेग भी बढ़ गया था।

सरला ने कहा—'मा पानी दूँ?

सुनकर, मा ने हाथ से इन्कार कर दिया।

उस समय पण्डित ज्ञाननाथ भी उठ आये। वह पत्नी की दशा को देख कर सहसा बोले तो कुछ नहीं, परन्तु उस मौन भाव में ही वह चिन्तित अवश्य दिखायी दिये।

कमला ने कहा—'पिताजी, मा की अवस्था खराब है।'

पिता ने कहा—हा, बेटी! मुझे भी यही लगता है!'

कमला बोली—'आज कफ भी अधिक आ रहा है। खांसी का वेग भी बढ़ रहा है।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—आज तक सोचता था कि जो व्यक्ति मौत की

कल्पना करता है, वह नादान है, मूर्ख है ! परन्तु आज तो मैं स्वयं सोचता हूँ कि मौत की कल्पना करना अच्छा है । मर जाना इस जिन्दगी से बेहतर है।'

और पिता की उस बात में कितना सार था, भले ही पास बैठी हुई पुत्रियों ने उसे ठीक से अनुभव न किया हो, परन्तु कमला ने इतना जरूर सोचा, पीड़ाओं की दुनिया में रहकर आदमी मौत की ही कल्पना करता है, जीवन की नहीं ! आंख मूँद कर सो जाना पसन्द करता है, जागना नहीं ।

तभी पण्डित ज्ञाननाथ ने फिर कहा—'बेटी कमला, तुम्हारी मा के लिए अब मौत ही श्रेयस्कर है । वह आयेगी, तो इस पीड़ा को भी अपने साथ ले जायेगी ।'

सरला ने कहा—'लेकिन पिताजी, आप तो कर्मों की बात कहते हैं । कर्म भोग की बात; तब भला मनुष्य किस प्रकार अपने कर्म-जाल से निकल पाता है ? क्या प्राणी मर कर भी छूट सकता है !'

पण्डित ज्ञाननाथ उस समय विषय की अधिक गहराई में जाना पसन्द नहीं करते थे । क्योंकि समीप में पड़ी हुई पत्नी खांसी और कफ से परेशान थी । उनकी दृष्टि उसी पर टिकी थी । वह देख रहे थे कि उस पत्नी के प्राण जैसे आंखों में उतर आये हैं । वे प्राण मानो बार-बार उन आंखों से भी बाहर निकल आना चाहते थे । वे छटपटा रहे थे, तड़प रहे थे अतएव, पण्डित ज्ञाननाथ के मन में भी कोलाहल था । हृदय में चीत्कार भरा था । उनका चिर साथी जैसे अपना साथ छोड़ रहा था । उसका दम घुट रहा था । वह अपने लम्बे सफर पर जाने की तैयारी कर चुका था वर्षों का सम्बन्ध भूल कर उस नारी ने पति और पुत्रियों से जैसे मुँह मोड़ लेना पसन्द किया था !

उस अवस्था को लक्ष करके ही, कमला बोली—'मा !'

मा ने बरबस ही अपना हाथ उसके सिर रखा । कुछ कहना चाहा, पर कहा नहीं गया ।

कमला ने कहा—'भैया सो रहा है, जगा दूँ ।'

मा ने हाथ का इशारा कर उसे रोक दिया ।

ज्ञाननाथ बोले—'जब प्राणी स्वयं पीड़ायुक्त होता है, तो उसे कोई भी सम्बन्ध अच्छा नहीं लगता । पति अच्छा नहीं लगता, पुत्र भी पसन्द नहीं आता ।'

कमला बोली—'दिन निकले तो, मा को किसी और डाक्टर को दिखायें।'

ज्ञाननाथ ने कहा—'मौत की दवा नहीं है, कमला बेटी !'

कमला बोली—'प्रयत्न करना ही हमारा काम है।'

सरला ने कहा—'सुना है, यहां एक अच्छे डाक्टर हैं। उसकी प्रैक्टिस भी अच्छी है।'

ज्ञाननाथ कहना चाहते थे कि उसकी फीस भी अधिक है परन्तु इतनी बात उन्होंने नहीं कही। बात रोक ली।

तभी धीरे से मा ने कहा—'शायद बुलावा आ गया है। चलने का समय हो गया है। अपने भैया का ध्यान रखना, कमला बेटी !'

कमला ने अवरुद्ध स्वर में कहा—'मा !'

मा ने बोल सुना, परन्तु उत्तर नहीं दिया। उससे बोला नहीं गया।

उसी समय, एकाएक जैसे चौंककर पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'कमला तुम्हारी मा—'

कमला ने भी जैसे चौंककर कहा—पिताजी, हमारी मा !'

और सभी ने देखा कि तभी तक कमला की मा की गर्दन झुक गयी थी। जैसे सांसों की डोर टूट गयी थी। दोनों पुत्रियां रो पड़ीं।

पण्डित ज्ञाननाथ की पत्नी चली गयी थी।

: ७ :

विपत्ति सिर पर आई, वह अपना भार बढ़ाती जा रही थी। माता के परलोकस्थ होने पर परिवार की देख-रेख का भार पुत्री कमला के ऊपर आ गया। यद्यपि, घर का भार पहिले भी उस पर था, परन्तु उत्तरदायित्व उसका नहीं, मा का था। मा के जाने पर कमला के लिए यह भी चिन्ता की बात बनी कि पिता का स्वास्थ्य दिन-पर-दिन क्षीण हो रहा था। तीन दिन हो गये थे कि कमला की मा चली गयी। वह किसी और लोक में पहुँच गयी। वहां पर वह केवल अपनी स्मृतियां छोड़ गयीं—पुत्र और पुत्रियां। पण्डित ज्ञाननाथ

वैसे ही स्वभाव से गम्भीर थे, परन्तु पत्नी के जाने पर वे और अधिक गम्भीर रहने लगे थे। फलस्वरूप, उसी तीसरे दिन की बात है कि पण्डितजी कमला को बता कर शहर की ओर चले। उन दिनों शहर में झगड़ा था। मुसलमान अपने घर छोड़ रहे थे। वे तेजी से दूसरी दिशा की ओर जा रहे थे। उस नगर में पण्डित ज्ञाननाथ के अनेक मित्र थे। उस अवस्था में ही, जब पण्डित जी नगर की ओर चलने लगे, तो कमला ने कहा—'पिताजी, तुम...हैं'

ज्ञाननाथ ने पुत्री के मन का मर्म समझ लिया। तुरन्त कहा—'मौत तो मेरे समीप आ गयी है, बेटी! मैं नगर में एक उद्देश्य को लेकर जा रहा हूँ। जानती हो न तुम इस नगर में एक बड़ा आदमी रहता है। वह जाति का मुसलमान है। परन्तु वह तो देश भक्त है। जीवन भर देश के लिए अंग्रेजों से लड़ा है। रात ही मैंने सुना कि उसका प्राण भी मजहबी पागलों के पंजों में फँस गया है। और मैं कहता हूँ कि वह न मुसलमान है, न हिन्दू है। वह इन्सान है। इन्सानों में देवता है!'

अपने स्वरपर झटका-सा खाकर कमला ने कहा—'परन्तु आप क्या करेंगे, पिताजी! आंधी चल रही है। हवा तेज है। आपका जीवन तो तिनके के समान है।'

इतना सुना, तो पण्डित ज्ञाननाथ के मुँह पर विषादमयी छाया फैल गयी। आंखों में करुणा भी छलक आई। मानों पुत्री की बात उनके मानस को कील गयी। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी। पैर कांपने लगे। कदाचित् यही देखकर कमला कांप उठी। वह पिता के कुछ और समीप आ गयी। उसने उनके कन्धे पर हाथ रखा और निरे मृदुल हुए स्वर में कहा—'पिताजी, मेरी बात का आप कोई अन्य अर्थ न लगा लीजिये। मैं आपकी शक्ति की उपहास नहीं करती। आपकी क्षमता कम भी नहीं आंकती। परन्तु इतना अवश्य कहती हूँ कि जब जानवर लड़ते हैं, तो अन्धे बन जाते हैं। इसी प्रकार आज आदमी भी अन्धा बन गया है। यह तो जानवर की कोटि को भी लांघ गया है।' इतना कहते हुए, कमला ने अपने मुँह में आया हुआ थूक सटक लिया। उसने अपने पिता की ओर देखा। उस अवस्था में ही उसने फिर कहा—'पिताजी, मैंने भी रात सुना कि कल इस नगर में कुछ नारियों का अपमान किया गया......नारी-सुलभ सम्मान को, भ्रष्ट करने का

प्रयत्न किया गया...मनुष्य अपनी निर्लज्जता को लांघ गया...तेज हथियारों से सज्जित बन, बर्बर जाति का अभिनय करने पर सन्नद्ध हो गया...पिताजी, —उसी समय उसने फिर रोष पूर्ण भाव में कमला ने आतुर बन कर कहा—'बताइये, राम और कृष्ण का उपासक क्या आपका समाज रह गया है ! यही समाज और देश बुद्ध और महावीर को अपने पथ-प्रदर्शक मानता है ! राम-राम ! निरा क्रूर ! निरा मदान्ध !' वह बोली—'रात ही में कुछ आदमियों की उत्तेजनापूर्ण गर्वोक्ति सुन रही थी। एक महाशय कह रहे थे, हमारी बहिन-बेटियों के साथ भी यही हुआ। पिण्डी और पेशावर में हमारी औरतों का खो गया। उन्हें अपमानित किया गया।'

उस समय कमला के स्वर में तेजी थी। क्रोध था। उसने कहा—'सच पिताजी, जब इतनी बात सुनी, तो मेरे मन में तो आया कि उनके पास पहुँचूँ और उन्हीं के मुँह पर थूक कर कहूँ, तुमने अपनी बहू-बेटियों की जाती हुयी लाज की रक्षा नहीं की, तुम कायर हो ! यहां शरणार्थी-शिविर में मुँह छिपाकर आ पड़े हो। मुफ्त की रोटियां खा रहे हो। तुम निर्लज्ज हो। आश्चर्य कि तुम अब भी जीवित हो !'

पुत्री से इतनी बात सुनकर पण्डित ज्ञाननाथ को जैसे बल मिला। उन्होंने उसको लक्ष करके कहा—'बेटी, इतना ही होता, तो गनीमत थी। इन कमबख्तों ने तो जले पर नमक भी छिड़क दिया। अपने भाइयों को लूटा और मारने का प्रयत्न किया ! जो जल रहा था, आग में फुँका जा रहा था, उसे और अधिक आग की जलती हुल भट्टी में झोंक दिया !'

कमला ने अपना सिर झुका कर कहा—'मुझे इसका भी पता है, पिताजी, देखा-सुना है। लोग जिन हमलावरों की बात करते हैं, उनसे इतना त्रास नहीं मिला, जितना कि अपने भाइयों ने दिया। भाई ने भाई का गला तराश दिया ! अवसर पाते ही, पड़ोसी कसाई और डाकू बन गया।'

ज्ञाननाथ ने कहा—'तुम बैठो, मैं जाता हूँ। जल्दी लौट आता हूँ।'

उसी समय कमला जब अपने स्थान पर पहुँची, तो देखते ही सरला ने कहा—'जीजी, पिताजी जहां गये हैं, वहां नहीं जाना था।'

कमला ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'क्यों नहीं जाना था। न-न, पिताजी को जरूर जाना था। उन्हें क्या अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ना था !

इन्सान के प्रति उनके हृदय में जो श्रद्धा है, उनकी जीवन की जैसी साधना है, उसे कार्य रूप देने का यही तो समय है...हां, सरला, उन्हें जरूर जाना था !'

इतना सुनकर, सरला को जैसे झुँझलाहट आई। वह अपनी जीजी की बात नहीं समझ सकी। तुरन्त ही बोली—'तुमने भी पिताजी का आदर्श पा लिया है। और सुनती तो आई हो कि आदर्श कभी भी व्यावहारिक नहीं रहा।'

अपनी छोटी बहिन से इतनी बात पाकर, कमला तनिक देर के लिए मौन बन गयी। निश्चय ही उसे सरला की बात अधिक असंगत नहीं लगी। इतना भी ध्यान आया कि ऐसी ही मिली-जुली बात उसने भी कभी सरला से कही थी। किन्तु उस समय स्थिति और थी। वह इन्सानी-जगत की दयनीय स्थिति थी। इसलिए जब सरला ने अपनी बात कही, तो मौन रह कर भी, कमला उस बात से सहमत नहीं बनी। वह मन में कहती रही, सरला अभी बच्ची है। गलत समझती है। और जब आदर्श मनुष्य के जीवन में नहीं रहेगा, पानी की तरह उस पर से उतर जायगा; तो फिर इस इन्सान का महत्व ही क्या रहेगा ! इन्सान की और जानवर की एक ही तुलना रहेगी।

किन्तु उसी समय सरला ने फिर अपनी बात कही—'जीजी, इस इन्सानी-जीवन की जो वस्तुस्थिति है, वह तो बड़ी विषम है, कठोर है। उसका क्या कहीं ओर-छोर है !'

कमला ने तुरन्त ही कहा—'न, सरला ! सभी का ओर-छोर है ! जब इन्सान के जीवन का किनारा है, तो परिस्थिति का क्यों नहीं ! वह आज क्यों नहीं, कल क्यों नहीं !

आतुर हुए स्वर में सरला ने प्रश्न किया—'तो जीजी, क्या हमारा किनारा है,—कहीं अन्त है ?'

कमला ने अपने होठों पर धीमी मुसकराहट लाकर कहा—'अन्त सभी का है, सरला बहिन !'

किन्तु सरला ने अपना स्वर गिराकर कहा—'तो फिर भी इतना झगड़ा है ! आदमी इतना परेशान है !'

इस बार हँसना चाहकर भी कमला हँसी नहीं। वह बोली—'यह तो

इन्सानी जात का रहस्य है। हम निस्सार जीवन को भी सारमय मानते हैं, बनाते हैं। हमारी यह पुरानी परम्परा है। यही स्वभाव है।'

जल्दी से सरला ने कहा—'तो क्या यह सुखकर है!'

कमला ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'हां, क्यों नहीं! अगर इन्सान के मन में यह बात न होती, तो क्या तुम यह सजा हुआ संसार देख पातीं। इतना सजीला मनुष्य और सजी हुयी नारी के दर्शन कर पातीं।' वह बोली—'सरला बहिन, एक बार पिताजी ने मुझसे कहा था, इन्सान अपने जन्म के साथ एक वस्तु लेकर आता है, जिसका नाम है बुद्धि। उसी बुद्धि का चमत्कार रूप यह संसार है। मनुष्य बुद्धि का सहारा पाकर ही मौत से लड़ा है। इसने अपना पथ प्रशस्त किया है। युद्ध होते हैं और सुलह के द्वार भी खुले रहते हैं। आज तुम अपने समाज में जहां हत्या और मारकाट के दृश्य देखती हो, वहीं पर मातृ भावना का नारा भी बुलन्द हुआ है। भगवान के वाक्यों का सभी जगह बोलबाला है। आज इन्सान पागल बना है, तो क्या कल रहेगा। देखना, फिर भला और अच्छा बन जायेगा। जो व्यक्ति आज तुम्हारा खून लेना पसन्द करता है वह कल अपना भी भेंट कर सकेगा।'

उस समय सरला ने बात सुनकर भी अपना मत नहीं दिया। उसने देखा कि मा की मृत्यु के बाद उसकी जीजी के मुँह पर जो करुणा की छाया बैठ गयी थी, वह उस समय नहीं थी। वह जैसे उस दिन बिदा हो गयी। अब उस चेहरे पर उसे महानता-दिखायी दी। श्रद्धायोग्य शालीनता और गम्भी-रता देखने को मिली।

कमला बोली—'देख, इस नगर में भी जो व्यक्ति सदियों से मिलकर रहते थे, वे आज एक-दूसरे के शत्रु के बन गये हैं। पिताजी जिस व्यक्ति के पास गये हैं, वह मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं का हितेच्छु है। परन्तु आज तो लोगों के दिलों में पागलपन है, क्रोध है। प्रतिहिंसा की भावना है। वे उसे भी मार देना चाहते हैं। पिता जी उसी की रक्षा करने गये हैं। वे इस विपत्ति में भी अपना कर्तव्य निभाने की बात सोचते हैं।'

सरला ने कहा—'जीजी, तुमने अब तक मुँह भी नहीं धोया है। स्नान करलो। कपड़े बदल लो। देखती हो, इन तीन दिनों में तुम्हारा क्या हाल हो गया है?'

इतना सुनते ही, कमला बात के अन्तराल में खो गयी। उसकी आँखें भर आईं। उसके मानस में फिर मा की स्मृति उभर आई। यह देखते ही सरला एकाएक बोली—'जीजी ..'

जीजी ने कहा—'हां, बहिन! मा क्या गयी, हमारे सिरपर एक बोझ छोड़ गयी। देख तो, भैया कहाँ है। किधर खेल रहा है। मुझे उसके कपड़े बदलने हैं।' और तभी उसने कहा—'सरला, पिताजी में अब इतनी शक्ति नहीं है कि वे हमारा और भाई का बोझ उठा सकें। यह बोझ हम दोनों को ही उठाना है। मा के चले जाने पर पिताजी का जैसे सभी कुछ लुट गया है। उन्होंने अपने मन की पीड़ा को व्यक्त नहीं किया, शिव के समान उस जहर को चुपचाप पी लिया है।'

सरला ने साँस भर कर कहा—'जीजी, मैं भी यही मानती हूँ। मा के बाद पिताजी को अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता।'

कमला ने कहा—'हमारे पिता के पास पैसा नहीं जो हमें दें। उनके पास जो-कुछ था, वह हमें दे दिया और मैं सोचती हूँ, जो-कुछ पिताजी ने दिया, वह बहुत बड़ा धन है। कीमती है। यशस्वी है। अपने जीवन में पिताजी ने इस जगत का जिस सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया, जिन विचारों को अपने मानस में संचित किया, वे सभी तो हमें दिये। निश्चय ही, हमारे पिताजी उदार हैं। वे देवता हैं।'

सरला ने कहा—'रात पिताजी कहते थे, इस शिविर को शीघ्र ही छोड़ देना है।'

कमला ने कहा—'यही उन्होंने मुझसे कहा है। उन्हें यहाँ रहना क्या अच्छा लगता है! सरला, हमारे पिताजी के मन में अपार वेदना है। निर्धन बनकर भी उन्होंने निर्धनों के लिये अपने को लुटा दिया है। जनता जनार्दन की झोली में उनका देर से आत्म-समर्पण हो चुका है।'

अपने पिता की उस उस कथा-वार्ता में डूबकर ही, मानों आह्लादित बनकर, एकाएक सरला ने कहा—'आह, हमारे पिताजी!'

कमला ने कहा—'हमारे पिताजी, पूजनीय इन्सानों में देव हैं!'

सरला ने कहा—'पिताजी कहते थे कि हम इस नगर को भी छोड़ देंगे। जरूरत पड़ी तो इस समाज से भी दूर चले जायेंगे।'

कमला ने कहा—'हम वहीं रहेंगे, जहाँ रह सकेंगे। पिताजी जहाँ रहेंगे, वहीं आदर पायेंगे।' वह बोली—'यह इन्सानी पखेरू कभी एक डाल पर नहीं बैठता। यह भी सुख-सुविधा देखता है। इस देश के आदमी जीविका के हेतु चीन, तिब्बत और संसार के जाने कैसे-कैसे दूरस्थ और दुर्गम स्थानों पर पहुँच गये हैं। सदियों से वह वहीं जा बसे हैं। हम भी ऐसे ही पखेरू हैं। जहाँ सुविधा देखेंगे, वहीं उड़ कर पहुँच जायेंगे। वहीं पर अपना समाज बना लेंगे।'

सरला ने कहा—'रात पिताजी कहते थे, जिस प्रकार आज लोग इधर से उधर जा रहे हैं, भाग रहे हैं, अपने प्राण बचा रहे हैं, यह इन्सानी समूह सदा ही इसी प्रकार उखड़ता, भटकता और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता रहा है। इन्सान सदा से ही शरणार्थी बना चला आया है।'

कमला बोली—'यह तो ठीक है।'

उसी समय दो पड़ौसिनें वहाँ आईं। वे भी लाहौर से आई थीं। उनमें से एक का पति लाहौर में ही मार दिया गया था। छुरे से घायल होकर वह रिगसता हुआ अपने घर के द्वार तक आ लगा था, पत्नी के सामने ही, उसका प्राण तड़प-तड़प कर निकला था। उसकी वह पत्नी अभी युवा थी, निःसन्तान थी। दूसरी नारी के दो युवा लड़के थे। एक लड़का मर चुका था। जब वे दोनों स्त्रियाँ वहाँ आकर खड़ी हुईं, तो उनमें से प्रौढ़ा दीखती हुई नारी ने कमला को सम्बोधित करके कहा—'बीबी, कुछ हमारे लायक काम हो, तो बताना! सच, तुम्हारी मा बड़ी अच्छी थीं। भली थीं।

युवा नारी बोली—'वह अभी न जातीं, तो अच्छा था। इन बीबीजी के हाथ पीले हो जाते। कहीं मँगनी हो जाती!'

सुनते ही कमला ने कहा—'छिः—तुम भी क्या बात ले बैठी हो, बहिन! आज तो मुसीबत का समय है। तुम्हारे तो हाथ पीले थे, उन्हींपर क्रूर लोगों ने कालिख पोत दी, तो मेरा क्या अर्थ! बहिन, मैं तो जब भी तुमको देखती हूँ, तो छाती पर घूँसा-सा खा जाती हूँ। इसी से मैं कहती हूँ, यह सब मिथ्या है। मन का विकार है। नारी ने समझ लिया है कि नर ही उसका शृंगार है, उसका सहारा है। और जब वह आदमी छूटता है, तो उसका संसार ही सूना बन जाता है। न, न, मैं कहती हूँ, यह धारणा ही

मिथ्या है। यह तो इन्द्रियों का भोग है। तृष्णा है। वैसे अपना साथी खोकर तुम्हारे मन पर जो-कुछ बीतती है, उसकी कल्पना मैं भी करती हूँ। मैं तो सोचती हूँ, तुम्हारा जीवन ही चला गया। सूना हो गया!'

इतना सुनकर, उस नारी ने साँस भरी और छोड़ दी। वह दूर आसमान की ओर अपना मुँह उठाकर बोली—'बहिन, अजीब जिन्दगी है यह, जिसको हम जीवन का अभाव कहते हैं, उसे देखकर भी यह शरीर रखना पड़ता है। मैं स्वयं देखती हूँ, ऐसे क्या मरा जाता है!'

सरला ने कहा—'इनका बेटा मर गया, तुम्हारा पति; पर भला उनको खोकर क्या तुम्हारा प्राण चले जाना चाहता है। ना, तुम्हें तो रहना है।'

दूसरी नारी ने कहा—'सच, मरा नहीं जाता।'

कमला ने कहा—'अपना प्राण बड़ा प्यारा होता है।'

सरला ने कहा—जीजी, जीवन का मोह सभी को सताता है।'

प्रौढ़ नारी ने कहा—'इस दुनिया में यही देखा जाता है।' वह बोली—'इस शिविर में ऐसी भी औरतें और मर्द हैं कि जिनका सभी कुछ चला गया, फिर भी वे जिन्दा हैं। न उनके परिवार में कोई आदमी, न पास में पैसा! भला अब उनके जीवन में क्या रह गया है।'

कमला ने नितान्त गम्भीर भाव लेकर कहा—'यही दस्तूर है।' वह बोली—'एक जहरीला साँप कि जिसने आदमियों को डसना ही सीखा, जब स्वयं पानी की तेज धार में पड़ता है, तो अपनी मौत को आँखों के सामने देखकर भी, जीवन की टेर लगाता है। वह किनारे का सहारा चाहता है। और वे आदमी जो उस साँप से डरते थे, जब उसे स्वयं अशक्त पा सके, तो उससे खेलने लगे, उसका उपहास करने लगे, उसे मारने लगे। बड़े आदमी क्या, बच्चे तक उस पर ढेले पटखाने लगे।' उसने कहा—'यही आदमियों की अवस्था है। साँप बना हुआ आदमी आज अशक्त हो गया है। मौत के मुँह में पड़ गया है।'

युवा नारी ने कहा—'इस पर भी आदमी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। डसना नहीं भूलता!'

कमला ने कहा—'मत भूलो कि आदमी भी साँप है। डसना ही इसका स्वभाव है। निर्बल सदा ही ठगा गया है। आज भी क्या बलवान को मारा

गया है। पैसे वाले और समाज के सिर-मौर अपनी पहिली अवस्था में हैं। वे आनन्द के जीवन में हैं। वे तो निर्धनों को गाजर-मूली के समान जाति और धर्म के नाम पर लड़ाते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।'

इतनी बात को सुनकर, वे नारियाँ क्षण भर मौन रह गयीं। प्रौढ़ नारी ने कहा—'तुम्हारा भाई कहाँ है ?'

सरला ने कहा—'बाहर खेल रहा है।'

'और पिताजी ?'

'वे शहर गये हैं।' सरला ने कहा।

'तुम्हारे पिताजी भी आदर के पात्र हैं ! इस शिविर में ऐसा कौन है, जो उन्हें नहीं जानता।' प्रौढ़ नारी ने कहा—'तुम्हारा कोई काम हो, तो मुझे जरूर बताना। आई हुई मुसीबत को बाँट लें, यह हमारी बुद्धिमानी का काम होगा।'

कमला ने कहा—'तुम्हारी इतनी मेहरबानी को पाकर भी हमारा भला होगा।'

उसी समय बच्चा वहाँ आ गया। कमला से आकर चिपट गया। कमला ने उसे गोदी में उठा लिया।

प्रौढ़ नारी ने कहा—'हाय, इतनी छोटी उम्र में यह अपनी मा से छूट गया,—रे, परमात्मा !'

कमला ने कहा—'आज यही दीखता है !'

वहाँ से जाते हुए उस नारी ने कहा—'हाँ, बहिन ! आज यही दीखता है। इसी करुणा का बोलबाला है। इस पीड़ा को पाकर आदमी कसक उठा है...रो पड़ा है !'

: ८ :

पण्डित ज्ञाननाथ जब नगर से लौटे, तो वे अतिशय थके थे। मुँह पर पसीने की बूँदे थीं। दोपहर का सूर्य चढ़ गया था। भोजन बन गया। बच्चा

सोया हुआ था। कमला बैठी हुई अपने छोटे भैया का स्वेटर बुन रही थी और सरला समीप ही बैठी एक किताब पढ़ने में लगी थी। उस समय शरणार्थी शिविर में कहीं भोजन बन रहा था और खाया जा रहा था। पुत्रियों ने पिता को आया हुआ देखकर अपना ध्यान उनकी ओर लगाया। ज्ञाननाथ जी ने हाथ की घड़ी एक ओर रख दी और बैठ कर कुरता उतारा। उसी समय कमला ने कहा—'बहुत देर लगायी, पिता जी! क्या वे सज्जन मिले?'

पण्डित जी ने धोती के छोर से अपने माथे का पसीना पोंछ दिया और कमला की ओर देखकर कहा—'हाँ, वे मिले! आज ही इस नगर को छोड़ देंगे।'

'तो बचे कैसे? वे आग से कैसे निकले?' अपने स्वर पर उतावलापन लेकर सरला ने प्रश्न किया।

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'भई, यह कहानी तो बड़ी है। लम्बी भी है। वैसे, वे बच गये, यही भगवान ने अच्छा किया।' इतना कहते हुए ज्ञाननाथ जी ने सांस भरी और कमला की ओर देखते हुए कहा—'कल उन्हें लोगों ने पकड़ लिया था। वे वध किये जाने वाले ही थे कि उन वधिकों में से कुछ ने उन पर दया की और छोड़ दिये गये। किसी का कहना है कि फौज ने मदद की। जो हो, वे बच गये। यही भगवान ने कृपा की। इस विषय में मैंने उनसे प्रश्न नहीं किया। उचित भी नहीं था। परन्तु अचरज की बात तो यह कि जब मैं उनसे मिला, तो छाती से चिपट गये। कुशल-समाचार पूछा। जब चला, तो उन्होंने एक कागज का टुकड़ा मेरी जेब में डाला और कहा, यहाँ नहीं, रास्ते में देख लेना। और जब रास्ते में आया, तो कागज में लिपटा हुआ सौ रुपये का नोट और इतना लिखा मिला, आज इन्सान हैवान बन गया है। किश्ती भँवर में है। औसान न खोना। खुदा को भी न भूलना।'

साँस लेकर कमला ने कहा—'मेरे परमात्मा!'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'हाँ, बेटी! वह परमात्मा ही हमारा रक्षक है। प्रकृति की विराट ज्योति का आश्रय पाकर यह इन्सान सभी कुछ पा गया है। भला इस इन्सान ने क्या कुछ नहीं पाया। वैभव पाया, पराभव भी पाया।'

सरला ने कहा—'वे एक बार हमारे घर भी आये थे।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'बेटी, वे अनेक बार मेरे पास आये। कई वर्ष मैं और वे एक ही जेल में रहे। साथ-साथ रहे। बाद में मैं पीछे हट गया, वे रास्ते पर आगे बढ़ गये। बढ़ते ही गये।'

कमला ने कहा—'पिताजी, जनता की सेवा करनेवाला सदा दयामय और पुण्यमय ही बना रहता है। वह जातिवाद की पथरीली दीवारों को भी फाँद जाता है। उनमें क्या बन्द रहता है ?'

पण्डित ज्ञाननाथ बोले—'बेटी, जातिवाद की और धर्मवाद की दीवारें जन-सेवक के रास्ते में रुकावट नहीं डालतीं। उसे क्षुद्र और कायर भी नहीं बना सकतीं। ऐसी ऊँची भावनायें अपने-पराये के विचार भी मन में नहीं आने देतीं। यही बात मैंने इन मियांजी में पायी। मैं सदा ही इन्हें मियाँजी कहता आया हूँ। कुछ लोग 'बाबूजी' और 'बैरिस्टर साहब'। परन्तु मैं और वे तो 'मियांजी' तथा 'पण्डितजी' के रूप में चोली-दामन के साथी बने रहे हैं। मैंने कहा नहीं, उन्होंने प्रश्न नहीं किया कि मेरी आर्थिक स्थिति कैसी है। किन्तु उस व्यक्ति को यह मालूम था कि इस शरणार्थी शिविर में मेरी पत्नी का देहावसान हो गया। और पैसा भी मेरे पास नहीं होगा, यह उस बेचारे ने स्वयं समझ लिया। जाते ही कहा—भैया, माफी चाहता हूँ कि भाभी के मरने की खबर पाकर भी मैं तुम तक नहीं आ सका। मैं घिरा था। बस, कुछ मित्रों से मालूम हो गया था। तुम मुसीबत में हो, यह मैंने सहज में ही जान लिया था।'

कमला ने कहा—'तुम स्नान कर लो। भोजन देर से रखा है।'

'सबने खा लिया ? तुमने ?'

कमला ने कहा—'मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में थी। अब खा लूँगी। और सबको खिला दिया।'

पण्डित ज्ञाननाथ उठे और धोती-गमछा लेकर नल पर पहुँच गये। वहाँ कुछ और भी व्यक्ति खड़े थे। उनमें कुछ उनके भी परिचित थे। एक लाला ने उनकी ओर बढ़ कर कहा—'पण्डित जी, आज देर में स्नान कर रहे हो ! क्या शहर गये थे ? क्या हाल है ?'

पण्डितजी ने कहा—'भाई, हाल तो सभी तरफ खराब हैं। मुसलमान जा रहे हैं। लुट रहे हैं।'

लालाजी ने कहा—'पण्डितजी, यह जो लुटाई की परिपाटी चली है, अच्छी नहीं है। लोगों ने अपनों को भी लूटना शुरू कर दिया है।'

पण्डितजी ने कहा—'ऐसे समय सभी-कुछ होता है, लालाजी ! जो बदमाश और लुटेरे हैं, वे अपने-पराये में भेद नहीं मानते।'

लालाजी बोले—'रात ही इस शिविर में एक स्त्री आई है। गोद में उसका बच्चा है। पति उसका या तो मार दिया गया है या कहीं भाग गया है। उसने यहाँ आते ही सुनाया कि जिस कारवाँ के साथ वह आ रही थी, उसी के कुछ आदमियों ने उसे लूट लिया। वह रोयी, चिल्लायी, परन्तु किसी ने भी चूँ तक नहीं किया। लूटने वालों के हाथों में तलवारें और बन्दूकें थीं, उन्होंने अनेक परिवारों पर हाथ साफ किया। कहती थी बेचारी कि मेरा दस हजार रुपया नगद और जेवर भी जो मैं बड़े यत्न से छिपा कर लायी, वह छिन गया।'

इतनी बात सुनकर पण्डितजी ने साँस भरी और अपना मत नहीं दिया। नल खाली हो गया और वे उसके नीचे बैठ गये। जब वे स्नान करके लौटे, तो कमला उन्हें भोजन लाने के लिए उठी, सरला ने गिलास भरा पानी लाकर रखा। उसी को लक्ष कर उन्होंने प्रश्न किया—'कौनसी किताब पढ़ रही थी, बेटी ?'

सरला ने कहा—'पंजाब का इतिहास !'

'अपनी जन्मभूमि का इतिहास !' भोजन की थाली आ गयी और रोटी का टुकड़ा तोड़ते हुए पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'पंजाब का इतिहास इस देश का इतिहास है। पंजाब सदा ही प्रहरी रहा है।'

सरला ने कहा—'किन्तु पिताजी, पंजाब एक मत नहीं रहा।'

रोटी खाते हुए पण्डित ज्ञाननाथ ने—'यह समस्त देश ही एकमत नहीं रहा।'

'और पिताजी मुसलमानों ने पंजाब पर डेढ़ हजार वर्ष तक शासन किया ?' सरला ने प्रश्न किया।

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'हाँ, इतने ही समय तक !'

कमला ने कहा—'सरला, पिताजी को भोजन कर लेने दो ! आज सुबह से बोलते रहे हैं।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने सुना और मुसकरा कर हाथ में लिया रोटी का टुकड़ा मुँह में दे लिया।

भोजन के बाद पण्डितजी बिस्तर पर पड़ गये। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं, जैसे सोने लगे। परन्तु वे सोये नहीं। यह उनकी नित्य की आदत थी। जब वे दो-तीन करवटें बदल चुके, तो उस समय तक कमला भी भोजन करके वहाँ आ बैठी। सरला बरतन मांजने में जा लगी। उसे बरतन मांजती देखकर, ज्ञाननाथ जी ने कहा—'दिखता है, सरला ने भी अपना उत्तरदायित्व समझ लिया। काम करने लगी। तुम्हारा आदेश मानने लगी।'

कमला ने कहा—'पिताजी, सरला सभी कुछ करती है। बस, कभी जिद्द कर बैठती है। और छोटे बड़ों के सामने ऐसा करते ही हैं।'

पण्डितजी ने कहा—'लेकिन यह तो उपन्यास, कहानियाँ पढ़ा करती थी। आज पंजाब का इतिहास पढ़ने बैठ गयी।'

कमला ने कहा—'यह समय उपन्यास और कहानियां पढ़ने का नहीं है, पिताजी! सरला सभी कुछ समझती है।'

उसी समय सरला भी अपने काम से निपट कर वहाँ आ गयी। कमला बोली—'आज बाल ठीक कर ले। सिर में तेल लगा ले।'

'और जीजी तुम? देखती हो, कितने रूखे बन गये हैं, तुम्हारे बाल!'

कमला ने कहा—'मेरी क्या बात!'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'न, भला तेरी बात क्यों नहीं! तुम दोनों स्वस्थ रहो, साफ रहो। और तू नहीं रहेगी, तो और क्या साफ रहेंगे?'

कमला ने कहा—'पिताजी, तुम्हारे दोनों कुरते मैले हो गये हैं। बाजार से थोड़ा साबुन ले आते, तो साफ कर देती। भैया के कपड़े भी मैले हो गये हैं। और यह सरला तो देखो कैसी धोती पहिने फिर रही है।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'अब ले आऊँगा।'

सरला बोली—'पिताजी, तुम जीजी से कह दो, यह न ठीक से खाती है, न ठीक से रहती है। जब देखो तब सुस्त ही बनी रहती है।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'यह ऐसा ही समय है, बेटी! और अभी तुम्हारी मा को गये भी तो देर नहीं हुई। जो कुछ बिगड़ा है, जब वह बनेगा, तो सभी-कुछ ठीक हो जायगा। तब तुम्हारी जीजी भी हँसेगी, तुम भी हँसोगी।

कल या परसों ही हम यहाँ से चल देंगे। ऐसे वातावरण में अधिक देर तक नहीं रह सकेंगे।

सरला ने प्रश्न किया—'तो अब कहां चलोगे, पिताजी ?'

पिताजी ने कहा—'जहाँ भगवान ले जाये !'

सुनकर, सरला चिढ़ गयी—'तुम अब भी भगवान की टेर लगाते हो, पिताजी ! आँखों के सामने इतनी तो खून-खराबी हुई ! हजारों परिवार मिट गये ! लाखों बरबाद हो गये !'

पण्डित ज्ञाननाथ ने गम्भीर स्वर में कहा—'बेटी, इतना सब देखकर भी आदमी सहारा ढूँढता है। इस अन्धेरे में भी मनुष्य भगवान का प्रकाश ही पाता है। और भगवान के अर्थ क्या हैं, यह जानती हो ? मैं भगवान को कोई तस्वीर नहीं मानता। मैं भावना मानता हूँ। सत्य मानता हूँ। आत्मा की पवित्र पुकार मानता हूँ।'

सरला ने फिर अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'इन लुटेरों और खूनी भेड़ियों की दुनिया में इस भावना का क्या मोल है, यह तो आपने देख लिया पिता जी ! सुनता हूँ, जब सोमनाथ पर चढ़ाई हुई थी, तो मंदिर में साठ हजार पुजारी थे। उन सभी ने मुसलमानों की नङ्गी तलवारों के समक्ष अपना सिर झुका दिया था। आज भी मैं यही देखती हूँ कि भगवान और भावना के भक्तों का सिर काट डाला गया। उनके गरम खून का लोगों ने पान कर लिया। उनकी स्त्रियाँ लूट लीं, बच्चे मार दिये, धन छीन लिया ! बताइये, क्या अर्थ हुआ, इस भावना का ?'

सरला द्वारा उस कटु सत्य को उद्घोषित होते देख, कमला ने अनुभव किया कि इस बात से पिता जी पर जोर पड़ रहा है। अतएव, उसने सरला से कहा—'बस, यही बातें रह गयी हैं तेरे पास, कुछ और भी कर, सोच, किताब पढ़ !'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'न, बेटी ! कहने दो ! पिता से बहस करने दो। अपनी कहने दो, मेरी सुनने दो !' उन्होंने सरला की ओर देखकर कहा—'हाँ, बेटी ! तुमने जो कुछ कहा, वह तो ठीक है। आँखों के सामने दीखता है। आज कल तो प्रतिक्षण करुण चीत्कार कानों में गूँजता है। अल्लाहो अकबर, और हर-हर महादेव, का स्वर भी सुन पड़ता है।' वह

बोले—'परन्तु क्या इस पागलपन भरे उत्पात की कोई सीमा नहीं है ! और जब है, तो फिर क्या होगा ? आखिर भागनेवाला भी सदा नहीं भाग सकता। हत्या करनेवाला भी सदा खूनी नहीं बना रहना चाहता। डाकू भी एक समय चैन चाहता है। फिर बताओ, उसके सामने वह कौन-सा सहारा होगा कि जब वह शांति पायेगा। सुख की साँस लेगा और मैं कहता हूँ, वह सहारा है, भगवान, आत्मा की पुकार ! जनता-जनार्दन के क्रंदन के प्रति श्रद्धा ! बेटी, तुम जिस भावना और ममतामयी नगरी में बसी हो, उससे दूर नहीं जा सकतीं ! तुम्हें उससे सम्बन्ध रखना होगा। तुम्हें अपने आस्तित्व के साथ उसके आस्तित्व का भी महत्त्व जान लेना होगा। तभी तुम्हारा जीवन है। और जब मनुष्य इस सिद्धान्त को भूलता है, दृष्टि से दूर करता है, तभी वह उत्पाती और क्रूर बनता है। वह पागल कुत्ते के समान भागता है। जो भी सामने आता है, उसके मुहँ मारता है। क्योंकि उसके मानस में कीड़े जो पनप गये हैं, वे उसे परेशान करते हैं। यही अवस्था मनुष्य की है। जब मनुष्य किसी विशेष लक्ष की प्राप्ति के हेतु स्वार्थान्ध बन जाता है, तो वह पागल की सीमा से ऊपर नहीं रहता। किन्तु इस अवस्था का अन्त तो उसे जल्दी ही करना होता है। क्योंकि वह पाये हुए पदार्थ से सुख और शान्ति चाहता है। बस, यहीं से वह भी भगवान् का उपासक बन जाता है। क्योंकि सुख-शान्ति को पाने के अर्थ ही यह है कि हमारी आत्मा स्वस्थ हो, निर्विघ्न हो। और इसका सम्बन्ध है उस परिपाटी से, जो सहस्रों वर्षों से इस इन्सान ने प्रचारित की है। इन्सान के कानून बने। उसे बाँधा है। उसने देखा तो इस संसार में हिंसा और अहिंसा का सम्बन्ध भी दूर-दूर का नहीं है। बहिनों का गठ-जोड़ा है।'

सरला ने कहा—'पिताजी, वह राजा जो दूसरे देश को लूटकर ऐश्वर्य के भोग भोगता है, तो क्या इसी का नाम सुख-शान्ति है ?'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'हां, बेटी ! उसका नाम भी यही है। यह इसलिए कि वह व्यक्ति जो हजारों का बध करके ऐश्वर्य के भोग भोगना चाहता है, वह धन के द्वारा अपने मन की एक ही इच्छा पूरी नहीं करता, अनेक करता है। वह विपक्षियों को दबाने के लिए भगवान् की भावना का भी प्रचार करता है। यद्यपि, मैं इसे दम्भ मानता हूँ, परन्तु पीछे छूटे हुए

कल में उसने जो हिंसा की, उसका काँटा उसके मन में खटकता है। वह काँपता है। निर्दय बनकर भी वह दीन हो जाता है। मन्दिर और मस्जिद का आश्रय लेता है।'

सरला बोली—'और क्या यह सब भी झूठ नहीं!'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'निःसन्देह! परन्तु वह जिस मार्ग पर चलता है, आने वाली परिस्थितियाँ उसे इस बात का ज्ञान अवश्य कराती हैं, कि उसने शांति नहीं पायी, अशांति पायी। और यही आदमी के पाप की जागरूकता है।'

कमला ने कहा—'पिताजी, यह विषय तो बड़ा है। जटिल भी है। फिर किसी समय बताइयेगा। अब आप आराम करें।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'बेटी, आराम इस जीवन में कहाँ! लाओ, कुछ पैसे दो, मैं बाजार जाता हूँ, साबुन ले आऊँ। कुछ और ले आऊँ।'

कमला ने कहा—'मिले, तो भैया लिए भी कुछ लाना! बिस्कुट, खिलौना।'

'और तुम्हारे लिए,—इस सरला के लिए?'

'हम दोनों को कुछ नहीं चाहिए, पिताजी!' कमला ने एक रुपया आगे बढ़ाते हुए कहा।

पण्डित ज्ञाननाथ ने फिर कुरता पहिन लिया और जाने किस भाव में सामने के पथ की ओर देखा। दूर पर सड़क पर उस समय भी आदमी का कारवाँ जा रहा था, बढ़ा हुआ, शंकित और जीवन में पायी दुराशाओं से घिरा हुआ, वह नर-नारी के समाज का कारवाँ...

: ६ :

पिता को छोड़कर कमला और सरला दूसरे कामों में लग गयीं। उनकी यह धारणा थी कि पिताजी से अधिक चर्चा करना इसलिए भी संगत नहीं कि वे दुर्बल हैं और अपने घरू जीवन के प्रति चिन्तित हैं। किन्तु जब पण्डित

ज्ञाननाथ शिविर से निकल कर फिर नगर की ओर चले तो रास्ते में चलते हुए वे एकाएक रुक गये। वे एक पेड़ के सहारे टिक गये। दूर से ही उन्होंने देखा कि एक जाति के समूह ने दूसरी जाति के समूह पर हमला किया है। हमलावरों के हाथों में जो शस्त्र थे, वे सभी तेज धारवाले और खतरनाक थे। जिनका उपयोग बड़ी तीव्रता और हृदयहीनता के साथ किया जा रहा था। नर-नारियों के सिर कटे, हाथ-पैर कटे। मानव का करुण चीत्कार गूँज उठा। उस निर्दय दृश्य को देख, एक बार तो पण्डित ज्ञाननाथ के मन में आया कि दौड़ पड़ें और उस क्रूर-मानव-समूह के समीप पहुँच कर कहें, अरे, रहम करो! भगवान के नाम पर दया करो! इन्सानियत के मुँह पर कालिख न पोतो। किन्तु उसी समय उन्हें ज्ञात हुआ कि नहीं, नहीं, उनकी वाणी में अब इतना बल नहीं, ऐसा पौरुष नहीं। उनके पास इतना तेज नहीं। पण्डितजी ने अनुभव किया कि क्रोधान्ध समूह उनकी बात सुनकर नहीं रुकेगा। वह अपनी बात करेगा। प्रतिक्रियावादी मनुष्य क्या यों सरलता से मान जायेगा!

उस समय यह भी ज्ञाननाथजी के मन में आया कि जब पर्दे के पार दूसरी ओर मानव मारा जा रहा है, लूटा जा रहा है, तो यहाँ भी यही होगा। यहां आदर्श की दुहाई देना रुचिकर और संगतिकर नहीं रहेगा!

अवसर की बात थी कि उसी समय वहाँ पर फौज आ गयी। दंगाई भाग गये। घायल अस्पताल भेजे जाने लगे। जो व्यक्ति मर गये थे, उन्हें मेहतर उठाने लगे। जो शेष बचे थे, वे जान बचा कर अपने रास्तों पर चढ़ गये। इतनी देर में पण्डित ज्ञाननाथ खड़े-खड़े थक चले थे। वे वहीं पेड़ के नीचे बैठ गये। देखते-देखते कोलाहल से पूर्ण पथ सुनसान बन गया। निर्जन-पथ शान्तिदायक लगने लगा। उसी अवस्था को देखकर पण्डितजी ने मन में कहा, जब मनुष्य अच्छे नहीं, भावनामय नहीं, तो निर्जन ही बन जायेगा यह संसार! अभी इस पथ पर चीत्कार था, मानव का क्रूर क्रन्दन था। परन्तु अब शांति है, तो लगता है कि जैसे सचमुच इस निर्जनता में ही अनुभूति है, प्यार है और सुखानुभूति है। इतना विचार मन में आते ही, पण्डित ज्ञाननाथ जी का हृदय जैसे अनायास ही शोकार्त्त और कोलाहल से पूर्ण हो उठा। उन्हें लगा कि हां, मानव का पतन सन्निकट है। सहस्रों वर्षों से चली आई मानव की दया और ममता आज भी कोरा धोखा सिद्ध हुई है, आत्मप्रवञ्चना है!

उभरते खण्डहर

वह बोले, क्या आज तक मानव ने मानवीयता को व्यवहार रूप में स्वीकार किया है? न, मानव का स्वार्थ सदा ही सर्वोपरि रहा है। कुटिल मानव संहारक रहा है...दम्भी और क्रूर रहा है!

निःसन्देह, उस अवस्था में ही, पण्डित ज्ञाननाथ के मस्तिष्क की शिरायें दुःख गयीं। आँखें अन्धेरे में घूम गयीं। मुँह पर पसीना आ गया। हृदय धड़कने लगा। स्वयं भी उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे उस सामने दीखती हुयी विषम परिस्थिति के अनुरूप उनका जीवन भी विदीर्ण बना है। निस्तेज हो गया है। वह भी कायर हो चुके हैं। प्राण निकल जाने वाला है। और ऐसा क्यों है? किस कारण है? हाय! कितनी कठिनाई थी उस वृद्ध पण्डित की, कि अपनी अवस्था को भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उनके मन में यह नहीं आया कि भाई, तुम तो मनुष्य हो, एक और अकेले हो; तुम्हारा अर्थ क्या! अपितु हुआ यह कि अनायास पण्डितजी के हाथों की दोनों मुट्ठियाँ बँध गयीं, आँखें चढ़ गयीं। माथे में बल पड़ गये। बलात् वह अपने आप बोले—रे, ज्ञाननाथ! तू भी व्यर्थ रहा! इस पृथ्वी पर बोझ ही बना रहा! तू भी सभी के समान मौत से डरता रहा। बता तो, अब और कितना तू जीवित रहना चाहता है। रे, मूर्ख! जब तुझमें साहस नहीं, बल नहीं तो चला जा! कहीं भी जाकर छुप जा! हां, बता तो, तू क्यों नहीं आँखों के सामने मरते हुए और मारते हुए लोगों को रोकने के लिए आगे बढ़ा! आखिर तूने भी यही सोचा न, ये दो पथ भ्रष्ट जातियाँ हैं, तो इन्हें लड़ने दो मरने दो! सचमुच, तू भी प्रतिशोध से जल रहा है। भला क्यों? किसलिये? इसी कारण न, कि अपने घर से निकाल दिया गया। तेरे सुख और सुविधा पर तुषारपात हो गया......र, ज्ञाननाथ! वास्तविकता को देख! सत्य को समझ! तू इस बर्बरता और अमानुषिकता का समर्थन मत कर। कहते हो तुम, मैं मानवतावादी, मानवतावादी! नहीं! नहीं! तू कुछ नहीं है। तू भोगवादी है। स्वार्थी है। दम्भी है। तू पशु है। जड़तावादी है। ऐसा न होता, तो निःसन्देह, तू आगे बढ़ता। नङ्गी तलवारों के नीचे अपना सिर जाकर झुका देता। तू लोगों को जाकर सुनाता, तुम्हें आदमी का खून पीना है, तो पहिले मेरा पियो। मुझे मारो। मैं इन्सान हूँ। मैं जातिवाद के मुँह पर थूकता हूँ। मैं इन्सान की पूजा की पुकार लगाता हूँ......मैं ज्ञाननाथ......

निःसन्देह, उस समय, पेड़ के नीचे बैठे हुए, अपने मन की उस कातर अवस्था में ही, पण्डित ज्ञाननाथ अतिशय द्रवित और कोलाहलपूर्ण बन गये थे। उनकी आत्मा में जो वेदना एकाएक ही प्रस्फुटित हुई, तो उससे मन की दशा बरबस ही अव्यवस्थित हो गयी। उस स्थिति में ही उनकी आँखें भर आईं और वे क्षण भर में ही उन सूखे और दुर्बल गालों पर प्रवाहित हो गयीं। कमर के पीछे पेड़ था, वह सहारा बना था। लेकिन जब आँखें रोयीं, तो वह जैसे पुरातन से संचित अश्रु-कोष को बरबस ही बहा देने के लिए बाध्य बन गयीं। अभी तीन-चार दिन पूर्व जब उनकी पत्नी का देहावसान हुआ, तो तब आँखों से एक बूँद भी नहीं निकली। उस समय वे जरा भी विचलित नहीं हुए। लोगों ने जब उनसे समवेदना प्रगट की, तो तब भी, उन्होंने यही कहा, भाई, यही होना था। एक दिन अवश्य की ऐसा आता। पत्नी को जाना था।

किन्तु उस समय तो एक नहीं, अनगिनत मानव मर रहे थे। वह बरबस ही मारे जा रहे थे। मानव का तेज-पुञ्ज बड़ी निर्दयता के साथ पैरों तले रौंदा जा रहा था। मानव कराह रहा था, और उसकी जख्मों से पुर कराह पर पत्थर मारा जा रहा था। जैसे मानव की विवशता, मानव की दीनता तथा पीड़ा पर नमक छिड़का जा रहा था। उसे और अधिक तड़पने के लिए बाध्य किया जा रहा था।

पण्डित ज्ञाननाथ की वे रोती हुई आँखें उपर उठी थीं। वे हरे आसमान की विमल छाया देखकर भी तड़पने और कराहने के लिए जैसे बाध्य थीं। उस दशा में ही मानो पण्डित जी ने ऊपर के परमेश्वर से दुहाई की, तू भी नहीं देखता...तू भी इन दुःखियों की आर्त्तवाणी में खो जाना पसंद नहीं करता। कहने लगे, मैं नहीं जानता, मैं नहीं समझता कि भाग्य के किस जन्म का लेखा आज खोला गया है। किस जन्म के पापों का फल आज इस इन्सान को भोगना पड़ रहा है। वह बोले, जो मर रहे हैं, मारे जा रहे हैं, इनका तो कोई दोष नहीं। दोष इनके पुरखों का था—हमारे वंशजों ने इस पाप का बीज बोया था। और वही पेड़ आज काटा जा रहा है। इतनी देर बाद। उस पाप का भी भागीदार इन व्यक्तियों को और मासूम बच्चों को बनाया जा रहा है... हे राम!

सचमुच, पण्डितजी के मन की अवस्था उस समय तनिक भी स्वस्थ नहीं रही। उनकी आत्मा हृदय-पट पर उठ आये काले बादलों से घिर गयी। वे बादल बरसेंगे। वे मूसलाधार पानी बहा देंगे। चारों ओर जल-ही-जल कर देंगे। और पण्डित ज्ञाननाथ का जीवन उस समय तनिक भी रक्षित नहीं था। वह जीवन जिस दरिया के कूल पर खड़ा था, उस दरिया की एक ही लहर में सर्पिणी के समान फुफँकारती हुई उस तेज धारा में बह जायगा। उस जीवन के साथ उस किनारे का जाने कितना बालू भी चला जायगा। ज्ञाननाथ जायगा, तो अपने साथ जाने कितनों को ले जायगा—कितने जीवन-प्राण को! उसी समय सोचा पण्डित ज्ञाननाथ ने, हाय! हाय! क्या इसी का नाम है जीवन! इसी को कहते हैं संघर्ष! छिः! छिः! यह तो संघर्ष नहीं! इन्सान की प्रगति भी नहीं! यह तो डाका है, लूट है! इन्सान का खून है! पागलों का खेल है!

उसी समय, पण्डितजी के मन में बात आई कि इस देश में एक आया था अशोक, जो अपने जीवन में ही 'सम्राट्' बन गया। अपने जीवन के जिस अन्तिम युद्ध में उसने एक लक्ष सैनिकों का बध कराया, तो उस बलिदान को रक्त से प्लावित देख, लाशों के अम्बारों को लक्ष्य कर अशोक की आत्मा ने पुकार की थी, यह सब क्यों? किस लिए? इतने बड़े मानव-समूह का बध करके मैं किस उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता हूँ? और अपने ही अन्तर से उठे उन अनेक प्रश्नों का जब अशोक यथोचित् उत्तर नहीं दे सका, तो उसके विवेक ने जैसे बलात् हार मान ली थी। उसने स्वीकार किया, इसका सबका अर्थ ही एक है—अपना स्वार्थ! अपनी इच्छा की पूर्ति! और तदनन्तर ही अशोक की आत्मा को जैसे जीवन में प्रथम बार अवसर मिला था। उसने चीखकर कहा—ऐ अशोक! बता तू, तुझे क्या अधिकार है कि अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का बध करे। दूसरे की इच्छाओं का अन्त करे! रे, नराधम! और सचमुच अशोक ने अपने उस गुरुतर अपराध को स्वीकार कर लिया था। उसने एक बार ही मान लिया था कि मुझे किसी का बध करने का अधिकार नहीं। मुझे किसी की जमीन छीनने का हक नहीं। अपने मनःप्रदेश से उठी हुई इस बात को लेकर ही, पण्डित ज्ञाननाथ को जैसे कुछ देर के लिए तृप्ति हुई। शान्ति मिली। किन्तु वह तो क्षणिक शान्ति थी। उनकी

आँखें अब आसमान की ओर से हटकर पेड़ के पत्तों पर लगी थीं। उन हरे-हरे पत्तों को देखते हुए ही, उन्होंने फिर अपने-आप कहा, अजी, ज्ञाननाथ ! इस दुनिया में जीवित रहने के लिए इन्सान को किसी प्रकार की शान्ति नहीं, सुख नहीं। सम्राट अशोक ने धनुष-बाण क्या रखे, जैसे अपने जीवन का सोहाग ही ताक में उठाकर रख दिया, दरिया के किनारे की तरह साम्राज्य रिस-रिस कर ढहने लगा। पुत्र भी बागी हो चले। सेना के अधिकारी तक अवज्ञाकारी बनने लगे ! और यह हुआ क्यों ? इसीलिए न, कि राजा का डर किसी को नहीं रहा। राजा दयालु बन गया, तो जनता ने कुटिलता का रूप धारण कर लिया। उस अवस्था में सभी ने सिद्ध कर दिया कि युद्ध भी चाहिए ! हिंसा भी चाहिए।

किन्तु उसी समय, पण्डित ज्ञाननाथ ने खुले स्वर में कहा—नहीं, नहीं, हिंसा नहीं चाहिए ! इन्सान के पास जब विवेक है, नैतिकता को स्वीकार करने का आचरण है, तो फिर धर्म ही चाहिए ! दया चाहिए ! हिंसा, क्रूरता और बर्बरता से हमारा सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए ! अमानवीय कर्म करके इस मनुष्य को जीवित भी नहीं रहना चाहिए ! इसे मर जाना चाहिए !

यह कहते हुए पण्डित ज्ञाननाथ ने जैसे थक कर अपना सिर घोटों पर रख लिया। यह स्पष्ट था कि अब उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि किसी बात को अधिक देर तक पकड़े रहें। उस पर बल देते रहें। कदाचित यही अवस्था उस समय भी थी, उनका मस्तिष्क दुःखने लगा। चूँकि आँखों ने भी अधिक अश्रु धारा को प्रवाहित किया, तो उनका सिर दर्द से भर गया। आँखों में जलन होने लगी। शरीर निःशक्त हो गया। और अब उनके लिए यह भी कठिन था कि वह नगर में प्रवेश करें। कहीं कोई दुकान खुली हो, तो उसके पास जायें और कमला ने जो वस्तुएँ मँगाई हैं उन्हें लाने का प्रयत्न करें। अतएव, हुआ यह कि पण्डितजी ने बाजार जाने की बात छोड़ दी। वे अब शिविर में लौट जायेंगे। परन्तु शिविर में तो शांति नहीं थी। वहां तो कोलाहल था। दर्द भरी कहानियों को ही सर्वत्र और जन-जन के मुँह से सुना जाता था। कोई अपनी कहानी को अतिरंजित बनाकर कहता और कोई आँखों से आँसू बहाकर ! और सचाई यह थी कि पण्डित ज्ञाननाथ के मन की विरक्ति जैसे पहिले से अधिक तीव्र बन गयी थी। उनके मन में बार-बार उठता, जब

ऐसा है, इतना दुर्भाव और वैमनस्य इस मनुष्य समाज में समाविष्ट है, तो क्यों नहीं इस समूचे देश का नाश हो जाता ! यह क्यों मनुष्य जाति के इतिहास पर कलंक पोतता है । इन्सान का नाम गंदा करता है । सोचते ज्ञाननाथजी कि प्रलय आये । पृथ्वी फट जाये । यह विश्व पृथ्वी के गर्भ में समा जाये । यह इन्सान...यह इन्सानी जाति का उच्छिष्ट अंग...

और जब इतनी इच्छा लेकर भी उस वृद्ध ब्राह्मण को सन्तोष नहीं हुआ, तो स्वभावतः ही मन अशान्त होना था, उसे इन्सान के ऊपर खड़े हुए, सृष्टि-नियन्त्रक भगवान पर भी क्रोध आता था । निदान, मन की उस दुर्दान्त बनी हुई अवस्था में ही, पण्डित ज्ञाननाथ ने फिर रोषपूर्ण होकर और आँखों से नीर बहाकर हरे आसमान की ओर देखते हुए कहा—रे, परमात्मा ! तू ही बता, आखिर क्या है तेरी इस सृष्टि का उद्देश्य ! बस यही जन्म और मरण ! जीव जन्मे और अपनी इन्द्रियों की अभिलषित इच्छाओं की पूर्ति करता हुआ जीवन का अन्त करदे । और तुम सुनते हो भगवान, इन्द्रियों की इच्छा पूर्ति करना ही इन्सान का जहां स्वभाव है, गुण है, वहाँ यही स्वार्थ है । और इसी स्वार्थ की पूर्ति के हेतु मनुष्य जानवर बनता है ! निर्बल पर हमला करता है । व्यक्ति व्यक्ति पर । समाज, समाज पर । देश, देश पर ! यों इस विस्तृत विश्व में जहां लाखों-करोड़ों जन्म नित्य होते हैं, वहां मृतकों के लेखे भी इससे क्या कम बैठते हैं । बताओ, भगवान ! तुम्हारा यह व्यापार क्यों है ! इसका क्या उद्देश्य है ! ये हृदय स्पर्शी संघर्ष आखिर इन्सान को क्या देते हैं ? वह क्या लेते हैं ? कब स्वार्थ फलता है, वह पूर्ण बनता है, तो इन्सान दुआ तो लेता नहीं, बद्दुआ लेता है । और इसीलिए हाहाकार है । निर्ममता है । विषैलापन है । भाई ही भाई से डरता है । मा बेटे से डरती है । बाप पुत्र से ! तो यह होता क्यों है, भगवान ! बताओ, तुम्हारा इसमें क्या रंजन है । तुम्हें क्या सुख मिला है !

उस अवस्था में ही अनजाने पण्डित ज्ञाननाथ की आँखें लग गयीं । घोटों पर सिर रखे हुए ही वे सो गये । वे सोते रहे । काफी देर बाद जब वह एकाएक चौंक कर जागे, तो विस्फारित होकर देखने लगे, सामने उनकी पुत्री कमला है और साथ में उसका भाई रमेश !

कमला ने कहा—'मैं तुम्हें खोजने निकली हूँ पिताजी ! और तुम यहां ! इस निर्जन स्थान में !'

पण्डित ज्ञाननाथ ने मुँह से कुछ नहीं कहा। वे उठे और पुत्री के आगे-आगे शिविर की ओर चल दिये।

: १० :

उस अवस्था में पण्डित ज्ञाननाथ इतना नहीं देख पाये थे कि उनकी पुत्री के साथ और कौन है। लेकिन जब वह उस स्थान से चले तो तुरन्त ही उनकी दृष्टि पास खड़े एक युवक पर पड़ी। उसे देखते ही, उन्होंने एकाएक कहा—'अरे, अशफाक तुम !'

सुनते ही अशफाक मुसकरा दिया—'मैं सलाम करता हूँ, पण्डित जी !'

पण्डित जी ने अशफाक का हाथ पकड़ लिया। फिर छाती से लगाकर कहा—'आज मिले हो—खूब !'

कमला ने कहा—'पिता जी, अशफाक भाई आपसे मिलने के लिए शिविर में पहुँचे थे। मैं चिन्तित थी, वहाँ पर हरेक व्यक्ति से सुन रही थी, कि आज नगर में बड़ा उत्पात हुआ है। सैकड़ों व्यक्तियों को मारा गया है।'

अशफाक ने कहा—'यहाँ से कुछ दूर पर ही खून बहाया गया था। मैं उस समय भी वहीं पर था।'

पण्डित जी ने कहा—'मैं तब पेड़ के नीचे ही खड़ा था। वह दयनीय दृश्य अपनी आँखों से देख रहा था।'

कमला ने अशफाक से कहा—'मुझे पिता जी की चिन्ता थी। बड़ी देर से प्रतीक्षा में थी।'

अशफाक ने हँसकर कहा—'तुम्हारे पिता जी की चिन्ता लाहौर में हो सकती थी, यहाँ नहीं। यहाँ दूसरे पक्ष का इन्सान लड़ नहीं सकता, किसी को मार भी नहीं सकता। उस जहरीले साँप का जहर रावी के इस पार अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता।'

उस समय पण्डित ज्ञाननाथ मौन थे। सामने शिविर आ गया था। उसी ओर देखते हुए वह अपने विचारों में लीन थे।

कमला बोली—'पिताजी, देखते हैं आप, अशफाक भाई को क्या कोई कह सकता है कि किस पक्ष के हैं। पूरे हिंदू बने हैं। खद्दर का पाजामा और खद्दर का कुरता इन पर शोभता है। ये लाहौर में हमारे घर पर भी हो आये हैं। कहते हैं कि वह जल गया। जिस रात में हम वहाँ से चले, उस रात ही ये हमारे घर पहुँचे थे। ये हमें बचा लेना चाहते थे।'

पण्डित जी ने कहा—'ऐसे भूचाल में बचाने वाले भी उड़ जाते हैं। पागल आदमी उसपर भी हाथ छोड़ते हैं।'

शिविर आ गया। अपने स्थान पर जाकर बैठते हुए पण्डितजी ने अशफाक से प्रश्न किया—'तुम्हारी अम्मी कहाँ हैं? लाहौर में?

अशफाक ने बताया—'अम्मां अभी लाहौर में हैं। बड़े भाई के पास हैं!

'और तुम यहाँ क्यों आये? कैसे आये?'

'इसका जवाब तो बहुत सीधा है पण्डितजी! मेरे लिए लाहौर में स्थान नहीं रहा है। आज जो कुछ हो रहा है, उसे देखकर क्या मौन रहा जा सकता है!'

पण्डितजी ने अशफाक से बात सुनी, तो चाहा कि उसे फिर छाती से लगा लें। वह सुन्दर जवान, वह सुसंस्कृत व्यक्ति इधर कई वर्षों से उनकी निगाह के सामने रहा है। तभी उन्होंने कहा—'भाई, तुम्हें अपने परिवार की बात भी सुननी चाहिए। अभी तुम्हारा निकाह बाकी है। पाकिस्तान में रहकर तुम्हारी जिन्दगी भी ऊँची उठ सकती है। वहाँ गुञ्जायश है!'

इतना सुना, तो अशफाक का चेहरा उदास बन गया। वह उसी गिरे हुए स्वर में बोला—'आप भी ऐसा कहेंगे, मैं नहीं जानता। मैं तो आपकी तलाश करता हुआ यहाँ तक चला आया। अब आ गया हूँ, तो लौटूँगा नहीं। आगे बढ़ूँगा। देश में आज-जैसी आग सुलग उठी है, मैं इसी में अपने-आपको भी झोंक दूँगा।'

उसी समय कमला दो प्यालों में चाय लायी। बच्चा भी खेलता हुआ वहाँ आ गया। सरला भी आ बैठी।

पण्डितजी ने अपना प्याला सामने रखते हुए कमला को लक्ष किया—

'कैसी विवशता की बात है कि आज हम इस शिविर में रहकर इस अशफाक के लिये यह घोषित नहीं कर सकते कि यह किस जाति में जन्मा है ! मानों यहां उसका नाम लेना भी अपराध है !'

अशफाक ने कहा—'पण्डितजी रावी के पार भी यही बात है। वहाँ हिंदू अपने को हिन्दू नहीं बता सकता। वह अपनी कौम को छिपाता है।'

पण्डितजी ने सांस भर कर कहा—'मजबूरी की बात है !'

सरला ने अशफाक की ओर देखा—'चाय ठण्डी हो रही है, अशफाक भाई ! पियो।'

अशफाक तनिक मुसकरा दिया—'दीखता है, तुम पर इन झगड़ों का ज्यादा असर पड़ा है। बुजुर्गी आ गयी है। चंचलता चली गयी है।'

कमला ने कहा—'समय सब कुछ करा देता है, अशफाक भाई ! हमारी माँ क्या गयीं, हम दोनों बहिनों को बुजुर्गी दे गयी हैं।'

अशफाक ने चाय में घूँट भरा और पण्डितजी की ओर देखकर कहा—'मैं आज रात की गाड़ी से दिल्ली जा रहा हूँ। मैं वहीं पर रहने का विचार करता हूँ।'

चकित भाव में कमला ने कहा—'अपनी अम्मी से दूर ! घर से दूर ! अपने स्वजनों से दूर !'

इतनी बात सुनकर अशफाक गम्भीर बन गया। वह बोला—'बहिन, इस आँधी ने जाने कितनों को दूर कर दिया है। पाकिस्तान बनने का अर्थ ही यह है कि इस देश के हिन्दू और मुसलमान का भाग्य फूट गया। वह जिन्दा रहकर भी मुरदा बना दिया गया।'

पण्डितजी ने चाय पी ली और अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'तुम ठीक कहते हो, भैया !'

'आपका क्या विचार है ?' अशफाक ने प्रश्न किया—'क्या आप यहीं पर रहेंगे ?'

पण्डितजी बोले—'मैं यहाँ नहीं रहूँगा। एक दो दिन में ही दिल्ली की ओर चल दूँगा। लाहौर से कुछ और आदमी आने वाले हैं। वे सभी परिवार दिल्ली जायेंगे।'

अशफाक ने कहा—'तो आप दिल्ली में मिलेंगे। मैं आपको तलाश कर लूँगा। इतना समझता हूँ कि आपको आसानी से पा लूँगा।'

कमला ने कहा—'अशफाक भाई, अब हमारा क्या ठौर-ठिकाना है! यहाँ या वहाँ जहाँ भी स्थान मिला, वहीं पड़ जाना है।'

अशफाक ने कहा—'वहाँ मेरे मामू का मकान है। सुनता हूँ कि उन्होंने पाकिस्तान में रहने का इरादा किया है।'

पण्डितजी ने कहा—'निश्चय ही, वे पाकिस्तान जायेंगे। तुम्हारी जाति में जो पैसे वाले हैं वे अब रावी के इस पार नहीं रहेंगे! वे अपनी सुरक्षा पाकिस्तान में ही पायेंगे।'

अशफाक कड़वे भाव में मुसकरा दिया—'पण्डितजी, पाकिस्तान में किसी की सुरक्षा नहीं। आप इस देश में जातिवाद के साथ प्रान्तवाद के विष को भी अनुभव कीजिये। उसकी कठोरता को भी देखिये।'

पण्डितजी ने कहा—'इस समस्या का बोलबाला तो इस ओर भी होगा। यहाँ भी लोग उस विषय से अछूते नहीं रहेंगे।'

अशफाक ने कहा—'अंग्रेजों ने हमें सभी तरह से निकम्मा बना दिया। अब हम दो जाति वाले बनकर नहीं निभते, तो भला दो प्रान्तवाले बनकर कैसे निभ सकेंगे!'

पण्डितजी ने कहा—'यही इस देश का दुर्भाग्य है। अंग्रेजों ने हमारा सभी कुछ छीन लिया। आज वह यहाँ से चले गये हैं, तो उनके द्वारा छोड़े गये विषाक्त कीड़ों का शिकार यहाँ के समाज को बनना पड़ गया।'

अशफाक बोला—'इन दो जातियों का यह पाप जिन्दगी भर याद रहेगा। यह देश देर तक रोयेगा।'

पण्डितजी ने कहा—'निःसन्देह! भाई, यह युद्ध देखने में जाति युद्ध और धर्म युद्ध लगता है, परन्तु सचाई तो यह है कि यह युद्ध पैसे वाले और बे पैसे वाले में लड़ा गया है, हिन्दुओं की धन-प्रियता का पाप आज बोला है। वह सड़ा हुआ फोड़ा मानव शरीर से फूट निकला है। उसी का विषाक्त स्रोत देश के शरीर में पीड़ा पैदा कर रहा है। चारों ओर घिनौनापन फैल गया है समूचा देश त्रस्त हो उठा है।'

उस समय अशफाक गम्भीर था, मानो वह पण्डितजी की बात की गहराई में स्वयं भी डूब गया था ।

इसी समय पण्डितजी ने फिर कहा—'और भाई, यह केवल हिन्दुओं की ही अहमन्यता का परिणाम नहीं, मुसलमान जागीरदारों, नवाबों की प्रभु-भक्ति और प्रभुता पाने की हविस का भी परिणाम है । अंग्रेजों ने अपनी साम्राज्यवादी नीति को एक बार फिर आजमाने का अवसर पा लिया । उन्होंने अपने पुराने हथियार से ही हिन्दुस्तान के शरीर को घायल किया । उन्हें ऐसा करना ही उचित लगा । दो भाइयों को जुदा करना था । उन्हें सदा के लिए लड़ते रहने के लिए प्रस्तुत करना अंग्रेजों के हित में था ।'

अशफाक ने कहा—'पण्डितजी, किसी और बात को न देखकर, मैं इतना ही देखता हूँ कि इस देश के वासियों ने अच्छा नहीं किया । देश की तरक्की को रोक दिया, दुराव और बैर सदा के लिये बो दिया गया । एकता का नाम मिट गया ।'

पण्डितजी तनिक हँस दिये—'भाई इस देश की एकता को अंग्रेजों ने कभी भी नहीं पनपने दिया । उन्हें ऐसा ही करना था । इसी में उनका लाभ था ।'

कमला ने कहा—'पिताजी, हिन्दुओं ने भी इसी नीति का अनुसरण किया । आप की साम्प्रदायिक संस्थाओं ने क्या कम दुष्परिणामों को जन्म दिया । अनेक वर्गों ने घृणा और द्वेष को प्रोत्साहन दिया । ऐसी संस्थाओं के अधिकारी भी अंग्रेजों के दलाल थे,—जैसे उनके तरकश के तीर; उन्होंने सदा ही इस देश की छाती में छुरा घोंप देने का प्रयत्न किया ।'

कमला से इतनी बात सुनकर, अशफाक मौन रह गया । वह उसी ओर देखने लगा ।

पण्डितजी ने कहा—'बेशक ! हमारी सामाजिक संस्थाओं ने न अपनी जाति का भला किया, न देश का ! सभी ओर से जातिवाद का झण्डा खड़ा किया गया । परन्तु जाति ने उससे लाभ नहीं उठाया । ऐसे आन्दोलन सदा ही इसकी गलत दिशा पर चले गये । उन्होंने एक शुभ्र और तरल पदार्थ में विष उड़ेल दिया । देश में जहरीला वातावरण पैदा कर दिया ।'

अशफाक ने कहा—'पण्डितजी, मैंने आपकी धार्मिक संस्थाओं का अध्ययन नहीं किया। लेकिन इतना सुना है कि कुछ व्यक्ति महान बन कर आये। ऋषि दयानन्द के मुसलमान भी भक्त थे। मैं मानता हूँ कि आर्य समाज के पास विचार ऊँचे थे। परन्तु उस संस्था के खेवैया भी इस भँवर जाल से दूर नहीं रह सके।'

कमला ने कहा—'यह भी हिन्दू जाति का दुर्भाग्य है कि आर्य समाज जैसा मिशन सफल नहीं हुआ।'

सरला ने कहा—'जीजी, मिशन सफल हुआ या नहीं, उसके नेताओं ने जाति और धर्म के उपदेश देकर लाखों रुपया तो कमा लिया।'

अशफाक हँस दिया—'अब सरला बहिन का असली रूप प्रगट हुआ। वह बोला—'ऐसा सभी कौमों में होता है। अपनी कौम को धोखा देना सभी वर्ग के उपदेशकों को आता है। मुसलमानों में ऐसे लोग बहुत हैं। आज भी धर्म और जाति के नाम पर लाखों मुसलमानों को मर-मिटने के लिए बाध्य किया गया। बताओ, यह कितना महँगा सौदा रहा! क्या अच्छा रहा?'

पण्डितजी ने कहा—'सर्वत्र यही दीखता है। स्वार्थ बोलता है।'

कमला ने अशफाक की ओर देखकर प्रश्न किया—'तो दिल्ली जाने का इरादा है? वहाँ क्या करना है?'

अशफाक ने कहा—'अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। सभी की तरह मेरा भविष्य भी अन्धेरे में पड़ा है।'

पण्डितजी ने कहा—'किसी के भविष्य का भी पता नहीं। आज के बाद कल क्या होगा, इसे कौन जानता है!'

सरला ने कहा—'बड़े उस्ताद हैं अशफाक भाई। सोचा होगा, बड़े-बड़े मुसलमान तो पाकिस्तान चले जा रहे हैं, तो वहाँ पर रह गये छुटभैयों के नेता बनकर मौज उड़ायेंगे। वहाँ पर खाली पड़ी गद्दियों में से किसी एक को हथिया लेंगे।'

अशफाक हँस दिया। सभी हँस दिये।

कमला ने कहा—'सच, बात यही है। सरला समझती है।'

पण्डितजी ने कहा—'अशफाक ऐसा नहीं है।'

सरला ने कहा—'क्यों, इसमें बुरी बात क्या है, पिताजी! सभी अपनी

जगह ढूँढते हैं। अगर ये भी अपनी जगह बना लें, किसी गद्दी पर जा बैठें, तो बुरा क्या है। तरक्की करना ही आदमी का स्वभाव है।'

अशफाक ने कहा—'सरला बहिन, लेकिन मेरे सामने एक और भी बात है। भारत में किसी भी मुसलमान का रहना क्या अच्छा है? उस जाति ने पाकिस्तान बनाया, देश का बँटवारा किया, खून बहाया, तो भला उन्हें अब भारत की भूमि पर रहने का क्या अधिकार है? मैं कहता हूँ अब उनको इस धरती से पलायन करना ही हितकर है।'

पण्डितजी ने कहा—'भैया, यह जो-कुछ हुआ, अस्वाभाविक हुआ। देश के साथ अनैतिक कर्म हुआ। इस आँधी ने—एक वर्ग की माँग ने—देश को अराजकता के मुँह में डाल दिया है। वैसे मैं यह सदा मानूँगा कि मुसलमान को यहीं रहना चाहिये। पाकिस्तान नहीं जाना चाहिये।'

कमला ने कहा—'पिताजी, आप यह कहना चाहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान पाकिस्तान को मिटा देंगे एक हो जायेंगे। मैं कहती हूँ, जो अलग हो गया, वह फिर नहीं मिल सकता।'

पण्डितजी ने कहा—'परिस्थितियाँ भी बदलती हैं। बिगड़ी बात भी बनती है। पहिले भी हिन्दू और मुसलमान जुदा थे। तुम जिस जगह से आई हो, एक दिन वहाँ मुसलमान ही रहते थे हिन्दू तो रावी के पार बाद में गये थे। पैसे वाले हिन्दू वहाँ जाकर जमे थे। वही तो मुसलमानों को गुलाम बना सके थे,—पैसे का दास करने में समर्थ बने थे!'

उसी समय अशफाक ने उठकर कहा—'अब इजाजत दीजिये। दिल्ली में मिलूँगा। आपको कहीं भी खोज लूँगा।'

पण्डितजी ने कहा—'हाँ, भाई! इस समय सभी उखड़ गये हैं। जीवन के क्रम बदल गये हैं।'

अशफाक ने कमला को नमस्ते किया और कहा—'मैं जरूर मिलूँगा।' वह विदा हो गया।

उस समय लगा कि जैसे उस परिवार का एक आत्मीय उन सदस्यों से दूर होकर चला गया।

: ११ :

अशफाक के जाते ही, पण्डित ज्ञाननाथ ने अपनी दोनों पुत्रियों को सुनाया—'यह अशफाक जिस खानदान में पैदा हुआ, एक दिन वह बड़ा खानदान था। इसके बुजुर्ग जागीरदार थे। मुसलमान बादशाहों के यहाँ सिपहसालार भी रह चुके थे।'

कमला ने कहा—'अशफाक में अब भी वही खून है। वही जोश है।'

ज्ञाननाथजी बोले—'हमारे देश में आज भी जो सच्चे और साफ मुसलमान हैं, वे भारत की इज्जत करते हैं। भारत की जमीन के लिए अपना खून भी देना पसन्द करते हैं। इस देश के लिये मुसलमानों द्वारा किये गये त्याग क्या सहज में भुलाये जा सकते हैं।'

सरला ने कहा—'पिताजी, भारत देश के लिए मुसलमानों का भी बलिदान अपूर्व रहा। काकोरी षड्यन्त्र का शहीद अशफाक फाँसी पर चढ़ गया। मेरा मत है कि मुसलमानों को अंग्रेजों ने बदनाम किया। अब यों देश को शह देने के लिये उन्हें शतरंज का मोहरा बना लिया।'

उत्साह भाव में पण्डितजी बोले—'हाँ, हाँ, बेटी! यही बात है। इस देश के लिए मुसलमानों ने बहुत बड़ा त्याग किया! देश को सरसब्ज बनाने में इस बड़ी जाति का भी योग रहा। खून से खून मिला, गोश्त से गोश्त मिला, इस जाति से हीन भारत क्या जीवित रह सकेगा!'

लेकिन उसी समय सरला के मन में एक बात आई। वह बोल उठी—'परन्तु यह भी इस देश का एक बड़ा दुर्भाग्य रहा कि ऐसी सम्पन्न और भली जाति सदियों से एक साथ रह कर भी, भाई-बहिन का सम्बन्ध बना कर भी, यों दूर हो चली। पृथक देश की कल्पना करने लगी। लगता है कि एक दिन जो अरब सैनिक यहाँ आये, तो वे मक्के-मदीने के साथ अपने देश की श्यामल भूमि का स्वप्न नहीं भूल सके। लगता है कि यहाँ रहकर भी कुछ लोग इस देश को अपना नहीं समझ सके।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने इतनी बात सुनी, तो जैसे उनका माथा ठनक गया। उन्होंने एकाएक मुँह से शब्द नहीं निकाला।

किन्तु कमला ने कहा—'सरला, मक्के-मदीने की बात और है। वह विश्व

भर के मुसलमानों का तीर्थ स्थान है। जापान और चीन में रहने वाले बौद्ध मतावलम्बियों का तीर्थ भारत है, क्योंकि भगवान बुद्ध का जन्म स्थान यहीं है। और मुसलमान भारत का है। वह इसी देश को अपना समझता है।'

बड़ी पुत्री से इतनी बात सुनकर पण्डित ज्ञाननाथ को सन्तोष हुआ। परन्तु उन्होंने देखा कि अपने विषय की सिधाई को लक्ष्य करती हुई सरला जैसे बुद्ध के उदाहरण से सन्तुष्ट नहीं हुई। वह अपनी बात को छोड़ने पर भी उद्यत नहीं दिखाई दी। कदाचित इसी अभिप्राय से उसने अपनी जीजी की बात को सुना और मुसकरा कर टाल दिया। यही देखकर पण्डित ज्ञाननाथ बोले—'बेटी यह तो मानना ही पड़ेगा कि मुसलमानों ने इस देश के लिए त्याग किया। इकबाल सरीखे कवियों ने तुम्हारे समक्ष ही अपनी कविता द्वारा भारतका यशोगान किया। मुसलमान सूफियों ने भारत की आत्मा में नया बल और तेज प्रदान किया।'

तुरन्त ही, सरला ने कहा—'पिताजी, आज डाक्टर इकबाल साहब नहीं हैं, इसलिए अधिक कहना बेकार है। परन्तु मुझे याद है कि इस पाकिस्तान को बनाने की स्कीम में उनका भी हाथ था। निःसन्देह, उन्होंने भारत को अच्छे विचार दिये। लेकिन वह भी पहिले मुसलमान थे, पीछे भारतीय। प्रत्येक मुसलमान के सामने यही बात है। अभी यहाँ आने वाला अशफाक भी इस भावना से खाली नहीं है।'

अपनी पुत्री से इतना प्रबल विरोध पाकर पण्डित ज्ञाननाथ तनिक मुसकराये। उनकी सरला भी अपने कुछ विचार रखती है, यह सुनकर वह गर्वित भी हुए। इसी भाव से वे दोनों पुत्रियों की ओर देखकर आँखों से हँसे। तदनन्तर बोले—'यह अधिकांश सच है।'

सरला ने अपने स्वर पर जोर देकर अप्रतिभ हुए भाव में कहा—'पिताजी, यदि यह सच है, तो यह भी सत्य है कि पाकिस्तान पृथक् देश नहीं रह सकता। वह भारत का अंग है। अंग-भंग होकर यह देश क्या जीवित रहेगा?' इतना कहते हुए सरला का मुँह लाल बन गया। स्पष्टतः उसके मुँह पर खून झलक आया। आँखों में रोष दिखायी दिया! उसी अवस्था में उसने फिर कहा—'आज इस देश की दोनों जातियाँ परेशान हैं। अँधेरे में पड़ी हैं। सिसक रही हैं। दोनों के बने-बनाये परिवार नष्ट हो गये हैं। लोगों

की सदियों की परम्परायें बिगाड़ चुकी हैं। यह क्यों? किस लिए? आप कहेंगे कि यह सब अंग्रेजों ने कराया। हिन्दुओं की पुरानी स्वार्थ-परता के कारण हुआ। परन्तु पिताजी, ये तो दलीलें हैं। और दलील का काम ही यह है कि वह कहीं भी घटित हो जाय। लेकिन सचाई इसके विपरीत है। इस देश में पृथक्करण की भावना देर से थी। अंग्रेजों ने अपना शासन करने के हेतु वह दबा दी थी, अवसर पाकर उन्हीं के द्वारा उखाड़ दी गयी। मुट्ठी भर अंग्रेजों ने इस देश पर शासन किया। यहाँ की कमियों का उन्होंने पूर्णरूप से लाभ उठाया। यहाँ के राजाओं को शराब के प्याले पिलाये, सुन्दर स्त्रियाँ भेंट कीं, देश की सत्ता और इज्जत से उन्होंने खुल कर फाग खेली। पिताजी, अंग्रेज यहीं तक सीमित रहते, तब भी गनीमत थी। उन्होंने तो अपने धर्म गुरुओं द्वारा यहाँ के भोले और सीधे लोगों को धर्म-भ्रष्ट भी किया। एक बड़ी संख्या में भारतवासियों को ईसाई बना दिया। उन्होंने हिन्दू जाति के एक बड़े दरिया को काट दिया। उसे छोटा कर दिया। इस पर भी तुर्रा यह कि कहते हैं, हमने इस देश को सभ्य बना दिया। मैं कहती हूँ अंग्रेज जाति ने इस देश की आत्मा को कुचल दिया। आज अवस्था यह है कि भाई को भाई से जुदा कर दिया। उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए देश की कमर में छुरा घोंप दिया।'

सरला की बात सुनते हुए ही पण्डित ज्ञाननाथ ने अपना सिर दीवार पर टिका दिया था। वे बड़े तन्मय भाव से बात में लगे थे। सामने बरामदे में उनका लड़का खेल रहा था, सरला की बात के बीच में ही वह बच्चा एक बार उनके पास आया और लौट गया। किन्तु जब सरला ने बात समाप्त कर दी, वह मौन बन गयी, तो उसके मुँह पर जिस वेदना तथा रोष की छाया आ गयी, उसी को लक्ष्य कर पण्डित ज्ञाननाथ प्रभावित हुए। वे मौन भाव में पुत्री के प्रति स्नेहसिक्त बन गये।

उसी समय सरला ने कहा—'पिता जी, मैंने जो कुछ कहा है, यह सब आप से ही किसी समय सुना था।'

तुरन्त ही ज्ञाननाथ जी ने कहा—'हाँ, हाँ, बेटी! मैंने ही कहा होगा। तुमने किताबों में भी पढ़ा होगा। स्कूल की किताबों में तो यह सब होता नहीं, परन्तु दूसरी किताबों में जरूर छपा मिला होगा।' वह बोले—'लेकिन

एक बात मैं आज भी कहता हूँ, अपने देश में तुम जिस विशाल मनुष्य जाति को देखती हो, आम की कलम के अनुसार, वह मनुष्य जाति भी विभिन्न प्रकार का कलमों (नस्ल) से निर्मित हुई। ईसाई और मुसलमानों ने इस देश में जिन हिन्दुओं को जाति से च्युत किया, वे छोटी जाति के व्यक्ति थे—रद्दी किस्म की नस्ल से उपार्जित हुए थे ! इसलिए उन जातियों की जो विशेषता थी, वह भी उनमें नहीं दिखायी दी। दूसरी जातियों में जाने वाले हिन्दू छोटी जातियों से सम्बन्धित थे, वह निर्धन भी थे। हिन्दू साहूकारों द्वारा सताये हुए थे। जमींदारों ने उनके खून चूस लिये थे। इसलिए वे प्रतिक्रियावादी बने थे। दूसरी जाति में जाकर वे प्रतिरोष से भरे थे। उनकी सन्तानों के खून में भी वही प्रतिकार और रोष जन्मा। फल यह हुआ कि हिन्दू 'काफिर' बन गया उसी वर्ग द्वारा हिन्दू जाति का कत्ल हुआ। सदियों से दबे हुए रोष ने यों प्रतिक्रियावादी रूप धारण किया।'

कमला ने कहा—'पिता जी, यदि बाहर से आये हुए लोग हिन्दू जाति को जाति-भ्रष्ट करने का प्रयत्न न करते तो निश्चय ही आज वे अपनी जाति का धरातल अधिक ऊँचा पाते। वे इस देश के लिए अच्छे साथी सिद्ध होते। अपना भी उपकार करते। हिन्दुओं का भी लाभ करते।'

ज्ञाननाथजी ने मुसकरा कर कहा—'सचाई यह है, हिन्दू स्वेच्छा से दूसरी जाति में गये। सताये हुए लोग ही भय के कारण दूसरे पथ के पथिक बने।'

कमला ने कहा—'बात जो भी हो, इस सभ्यता के युग में यह असंगत बात हुई। यह तो जंगलियों की परिपाटी है। एक जाति की हत्या जैसे डाका।

ज्ञाननाथ जी हँस दिये—'संसार में सर्वत्र यही होता है। योरोप की मिशनरियों ने भी यही किया। यह भी राजनीति का एक खेल है। अपनी जाति को बढ़ाने के लिए किसने क्या नहीं किया है ?'

'राम-राम ! मुझे शर्म आती है, पिताजी !' कमला बोली—'भला इस अमानुषिकता की भी कोई हद है कि अंग्रेज इस देश में आये, अपना राज्य स्थापित किया, तो धन-बल और राज-बल के द्वारा यहाँ के लोगों को अपना धर्मावलम्बी बताने लगे। बताइये, उन्होंने अपना क्या लाभ सिद्ध किया ?

वह अपनी संख्या बढ़ा सके, इस जनतन्त्र के युग में वोट अधिक पा सके, बस, यही न ? तो क्या इससे उन्होंने कोई मानवीय सेवा की ? अपना स्वार्थ सिद्ध किया। मुसलमानों ने भी यही किया। संसार के एक बड़े भाग को मुसलमान बना लिया। अपना साम्राज्य विस्तृत कर लिया। पर इससे क्या तो उन्होंने संसार का कल्याण किया और क्या अपने धर्म गुरु मुहम्मद साहब की आत्मा को सन्तोष प्रदान किया ! पिताजी, यह तो ठीक वैसी ही बात है कि जैसे एक पिता अधिक-से-अधिक सन्तान पैदा करके और धन उपार्जित करके यशस्वी बनना चाहता हो। पर क्या वह धन और सन्तानें उसे यशस्वी बनाती हैं ? मैं तो देखती हूँ अनेक सन्तानें अपने मा-बापों का नाम भी डुबो देती हैं। बहुत सी अपने हाथों से बाप का ही अंत कर देती हैं। बादशाह औरंगजेब ने यही तो किया। भाइयों का वध किया। पिता को कारावास में डाल दिया !' वह बोली—'पिताजी, सचाई यह है कि लोगों ने संसार की इस विशाल मनुष्य जाति ने अपना अस्तित्व ही लोप कर दिया है। सभी की नस्ल बिगड़ चुकी है। जिस खून की बात प्रायः कही जाती है, वह पवित्र खून क्या जातियों में रह गया है। सभी का खून झूठा बन गया है। मनुष्य ने बुद्धि से काम लिया है न, तो पेड़-पौधों के समान इस मनुष्य जाति की संख्या बढ़ाने के हेतु इसकी असलियत को भी बिगाड़ दिया है। जो असली मुसलमान हैं, जिनमें ईरानी और तुर्क खून है, वे अब भी भारत के लिए वफादार बन सकते हैं। वे बने हैं। किन्तु जो झूठे हैं, हिन्दू और मुसलमान से मिश्रित हुए हैं, वे न अपनी जाति के लिए हितकर हैं, न देश के लिए। वे स्वार्थी हैं। अपनी जाति के लिए भी कलंक हैं।'

पण्डित ज्ञाननाथ उस समय गम्भीर थे। लड़का खेलता हुआ उनके पास आ गया था। वह कभी उनकी गोद में आकर बैठता, कभी कमला की गोद में। दोनों बहिनें अपने भैया से हँसने लगी थीं। वह मातृहीन बालक मा की याद से व्याकुल न बने, इसलिये, दोनों लड़कियाँ इसके लिये सतर्क रहतीं। उसी समय सरला ने साग की टोकरी उठा ली और उस आई हुई सन्ध्या में भोजन बनाने के हेतु सब्जी छीलने लगी थी। वह भी कमला की बात सुन रही थी। उसके चेहरे से ज्ञात होता था कि अपनी जीजी की बात उसके विचारों के अनुकूल थी, इसलिए वह बार-बार सिर हिलाकर बातों का समर्थन करती जाती थी।

उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ ने स्वयं भी समर्थन किया और कहा—'तुम ठीक कहती हो, बेटी ! इतना तो हुआ। यह अच्छा भी नहीं हुआ।' वह बोले—'किन्तु बिटिया, यदि ऐसा न होता, तो अनेक जातियों के साम्राज्य आज से बहुत पहिले नष्ट हो जाते। तब किसी जाति का अभ्युदय न दीख पड़ता। और तुमने जिस जनतन्त्र की बात कही उसके लिए इसी नीति की आवश्यकता थी। भले ही, उस समय इसकी कल्पना भी न की गयी होगी, परन्तु अपनी जाति का विस्तार करने की बात के अन्तर्गत यह बात भी समाविष्ट थी। मेरा तो यह भी मत है कि जिस धर्म की बात प्रायः कही जाती है, सहस्रों वर्षों से दुहराई गयी है, उसका भी इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं कि मनुष्य जिस वस्तु से डरता है, प्यार करता है, स्वार्थ के हेतु उसी की उपासना करता है। देखती हो न तुम, यह मनुष्य आदिम काल से किसी-न-किसी की उपासना करता आया है।'

सरला ने प्रश्न किया—'पिता जी, मूर्ति-पूजा काल कब से आरम्भ हुआ ?'

ज्ञाननाथ जी बोले—'शायद महाभारतकाल के बाद से।' उन्होंने कहा—'इस मनुष्य ने मनुष्य को ही भगवान बना कर पूजा। जब वह मनुष्य नहीं रहा, तो उसकी आकृति को कागज पर या पत्थर पर उतार कर पूजा। मनुष्य को जब इससे भी सन्तुष्टि न हुई, तो उसने पेड़ों को, जल सरोवरों को, आग को, जानवरों को, यहाँ तक कि सृष्टि की अधिकांश वस्तुओं को अपने पूजने योग्य मान लिया। जिन भूत-प्रेतों की बात कही जाती है, उन्हें भी पूजनीय ठहरा दिया गया।'

कमला ने माथे में बल डाल कर कहा—'यह तो मूर्खता है। अन्ध-श्रद्धा भी !'

पण्डित जी ने कहा—'बेटी, इस अन्ध श्रद्धा का विकास भी अनायास नहीं हुआ। स्वभाव से आदमी जहाँ क्रूर है, जानवर प्रकृति है, वहाँ मधुर भी है। भावनामय है। जिन वस्तुओं को इसने उपादेय समझा, उन सभी को पूजनीय मान लिया। मनुष्य की बुद्धि का विकास यहीं से हुआ।'

कमला ने कहा—'जिसका अर्थ यह हुआ कि आदमी पथ-भ्रष्ट हो गया। आदमी पूजने चला था कि पत्थर पूजने लगा। महर्षि दयानन्द ने यही तो कहा था।'

पण्डित जी ने गम्भीर स्वर में कहा—'उस ऋषि का कथन यदि सुना जाता, तो यह हिन्दू जाति उठ जाती, देश उठ जाता।'

सरला ने उस प्रकरण को छोड़ना चाहा। उसने कमला से कहा—'जीजी, अंगीठी सुलगाऊँ?'

कमला ने कहा—'हाँ, सुलगा ले। पहिले पिता जी को चाय बना दे। आटा गूँथ कर रख दे। दिन की कोई रोटी बची हो, तो देख ले।'

सरला उठ चली। वह कुछ फासले पर रखी अँगीठी के पास पहुँच गयी।

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'आज सरला ने जो कुछ कहा, मुझे प्रिय लगा। यह इतनी समझदार बन गयी है, मुझे पता नहीं था।'

कमला ने कहा—'सरला की ग्रहणीय शक्ति अधिक है। क्रोध तो है, पर शील भी है। आज कल सरला पढ़ती भी अधिक है।'

'बड़ी अच्छी बात है। आज की बात सुनकर मुझे सुख मिला है।' ज्ञाननाथ जी बोले—'तुम दोनों बहिनें समर्थ बनो, यही मेरी जिन्दगी का सुख है।'

कमला ने कहा—'सरला को अभी पढ़ना है। इसे पढ़ाना है। इसकी भी यही इच्छा है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'बेटी, सन्तान को पढ़ाना भी आज कल आसान नहीं रहा। व्यय साध्य बन गया है। मेरे सामने तो पेट का ही प्रश्न खड़ा है।'

कमला बोली—'इस शिविर को छोड़कर मैं सभी भार अपने ऊपर ले लूँगी, पिताजी! बहिन और भाई को पढ़ाऊँगी। आप स्वस्थ तथा प्रसन्न रहें, इस बात की भी चेष्टा करूँगी।'

बात सुनकर ज्ञाननाथजी ने साँस भरी और कहा—'बेटी, यह तो ठीक है कि तुम्हारी मा के चले जाने से सभी भार तुम पर आ पड़ा है। परन्तु मेरे समक्ष एक यह भी बात है कि अपने स्वार्थ के लिए तुम्हारे जीवन से खेलना न मेरे लिए शोभा की बात है, न उचित है। पिता बनकर भी मुझे इसका अधिकार नहीं है।'

अपने भाई के सिर को सहलाते हुए और उसे अपनी छाती से लगाते हुए कमला बोली—'पिताजी परिस्थिति के अनुरूप आदमी बदलता है। आपका अधिकार सुरक्षित है। मैं आपकी हूँ, मा चली गयी है, तो मैं एक बार ही, इस गृहस्थी का बोझ अपने सिर उठा चुकी हूँ।'

उसी समय सरला ने आकर कहा—'जीजी, साग छौंकने के लिए घी नहीं है। तेल में छौंक दूँ ?'

जीजी ने कहा—'हाँ, तेल में छौंक लो।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'मेरी इच्छा है, हम दिल्ली की ओर बढ़ चलें। जब आँधी ने यहाँ उड़ा कर फेंक दिया है, सभी प्रकार की व्यवस्थायें नष्ट कर दी हैं, तो अपना दूसरा पथ बनायें। जीवन तो चलाना है न, तो क्यों न पैरों को आगे बढ़ायें।'

कमला ने कहा—'हाँ पिताजी, मुझे तो यह स्वयं ही आप से कहना था। यहाँ से उठ चलें। इस अवस्था से निकल लें।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'जो पहिले चलेगा, आगे बढ़ेगा, वह अपनी स्थिति को सुधार भी सकेगा।'

कमला ने इस बात को महत्व नहीं दिया। उसने कहा—'पिताजी, जो भाग्य में होगा, वह जरूर मिलेगा।'

धीर भाव में ज्ञाननाथ जी बोले—'भाग्य तो बनाया जाता है, बेटी! यह बना-बनाया नहीं आता।'

कमला ने खिन्न भाव से कहा—'आज तो सभी का भाग्य बिगड़ गया है, पिताजी! सभी भटके हुए हैं। सभी अनाथ हैं। शरणार्थी हैं।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कड़ुवे भाव में जैसे हँस दिया—'मनुष्य सदा से ही परमुखापेक्षी है। शरणार्थी है। वह दूसरे की मदद चाहता है। किसी वस्तु को वह क्या अकेला ही उपार्जित कर सकता है! कब किसके साथ क्या घटित हो, इसे कौन जानता है। आज सामूहिक रूप से विस्तृत समाज एक स्थान से उखड़ा, पददलित हुआ, तो सभी ने समझ लिया, देख लिया। यदि तुम्हारे साथ धोखा न होता, तो क्या तुम्हें कोई अनुभव होता। जिस तरह से आदमी अपने शरीर को छोड़ते समय कष्ट का अनुभव करता है, परिजनों को छोड़ते उसका प्राण रोता है, उसी तरह आज जिन लोगों ने अपने मकान छोड़े, मित्र छोड़े, स्वजन छोड़े, रुपया और जायदाद छोड़ी, जिन्दगी का संचित सामान छोड़ा—उन सभी को छोड़ते हुए भला कौन नहीं रोया! इस जीवन-जगत् का यही खेल है, इन्सान के साथ यही षड्यन्त्र होता है!'

कमला वहाँ से उठी और साँस भरती हुई बोली—'जो कुछ हुआ, अच्छा नहीं हुआ, पिताजी ! वीभत्स कर्म हुआ, नितान्त क्रूर !'

: १२ :

उस रात में वह दो बजे का समय होगा। नगर की कोतवाली का घण्टा एक बजा चुका था। कभी-कभी नगर में कहीं दूर से 'अल्लाहो अकबर' और 'हर-हर महादेव' का नारा सुनाई दे जाता था। वैसे नगर के समान उस शिविर में भी सन्नाटा था। शिविर सो रहा था। किन्तु पण्डित ज्ञाननाथ की आँखों में नींद नहीं थी। जब वह रात्रि में बिस्तर पर पड़े थे, तो तभी सरला ने उसके पास बैठकर रमाकान्त और उसके परिवार की बात कही। उसने अपने पिता को यह भी बताया कि आजकल जीजी अधिक गम्भीर रहती है। शायद रमाकान्त की बात भी सोचती है। जीजी को परिवार के भविष्य की भी चिन्ता सताती है।

पण्डितजी ने पुत्री से अपनी बड़ी पुत्री के मन की व्यथा जान कर उस समय मुँह से तो कुछ नहीं कहा, परन्तु उनके मन की जो दबी हुई वेदना थी, वह तनिक से किरोदने पर आग के समान भड़क उठी। उनकी आत्मा में जलन पैदा हो गयी। बात कह कर सरला अपने बिस्तर पर जा पड़ी। कुछ देर में वह सो भी गयी। किन्तु उस समय से आँख बन्द किये हुए पण्डितजी के मन में विचार-मन्थन आरम्भ हुआ, तो वह द्रौपदी के चीर के समान बढ़ता गया। चिन्तन लम्बा होता गया। इस बीच में कमला भी सो गयी। बच्चा भी सो गया। किन्तु जब एक बज गया और ज्ञाननाथजी की आँखों में एक बार भी नींद का झोका नहीं आया, तो अनेक बार करवटें बदलने के बाद अन्त में बिस्तर पर उठ कर बैठ गये। बाहर सड़क पर कुत्ते भौंक रहे थे। कभी-कभी पुलिस और फौज के सिपाहियों द्वारा चलाई गयी बन्दूक के स्वर भी सुनाई दे रहे थे। इस प्रकार वह सब अजीब प्रकार का भयावह दृश्य उपस्थित था। कातर और दु:खी इन्सान मानो भीत हुआ कहीं छुपना चाहता था। और मौत उसकी खोज में थी। वह भयावनी कालकूट मूरत

दाँत किटकिटाती हुई उस इन्सान को पकड़ कर कच-कच और कट-कट चबा जाने के लिए चंचल और उतावली थी। वह उसे अपनी ओर खेंच लेना चाहती थी। हाय! कैसी करुणा थी उस इन्सानी जगत में! कितनी वेदना! कितनी अपने तईं भर्त्सना! लेकिन फिर भी इन्सान पागल था। वह कर्कश और कालकूट बना हुआ एक दूसरे पर झपट रहा था। इन्सान ही इन्सान को मारने के लिए खोज रहा था। मानो इन्सान के गोश्त, मज्जा से ही इन्सान का कलेवर होता दीखता था। उस इन्सान को इसी में सन्तोष था। उसको ऐसे ही पदार्थ प्राप्ति पर गर्व था। अतएव, इन्सान चिन्तित था और व्यग्र बना था।

बिस्तर से उठकर पण्डित ज्ञाननाथ बाहर निकले। वे उस शिविर के कुएँ पर जा बैठे। कुआँ बड़ा था, पुराना था। उस शिविर का निर्माण होते समय उस कुएँ को भी साफ किया गया था। पण्डितजी को इस बात का पता था कि वह कुआँ किसी मुसलमान साधु ने लोगों से चन्दा एकत्र करके बनवाया था। वह साधु अब नहीं रहा। उसे मरे भी एक बड़ा समय हो गया। उस समय आसमान में चाँद निकला हुआ था। वह चाँद हँस रहा था। आसमान भी जगमग कर रहा था। किन्तु हाय! कैसी विवशता की बात थी, नीचे का जगत,—पृथ्वी का इन्सान रो रहा था। वह सिसक रहा था। पृथ्वी के बच्चे भयभीत थे। उनके प्राणों पर छुरे, बन्दूक और भालों के निशाने साधे जा रहे थे और यह सब क्यों? केवल इसलिए कि मनुष्य विभक्त है,—जातियों में बँटा है! पर हैं तो सब एक ही पृथ्वी के पुत्र, एक ही खेत के दानों से अपना पेट भरने वाले। जो एक ही कारीगर के हाथों से बुने हुए चर्खों से अपना शरीर ढँकते हैं। और जिन धर्मों के लोग पृथक कहलाते हैं, उन सभी का उद्देश्य भी एक है,—जगत की भलाई,—पृथ्वी-पुत्रों की रक्षा! परन्तु हाय! मजहबी शराब ने उन्हें इतना मदहोश किया, ऐसा बेकार किया कि पड़ौसी ने पड़ौसी का गला घोंट दिया...उसके प्राणों को छीन लिया!

कुएँ की मेंड पर बैठे हुए पण्डित ज्ञाननाथ के मन में जिस विचार-सागर ने उद्वेलन आरम्भ किया, सचमुच ही वह अतिशय कठोर था। वह एकाएक ही उन्हें इस प्रकार झकझोर उठा कि लगा ज्ञाननाथ नाम का प्राण मर जायगा वह उस शरीर को छोड़ किसी पंछी के समान कहीं भी उड़ जायगा। बस, शरीर रह जायगा,—निष्प्राण!

एकाएक ही, ज्ञाननाथ जी के मन ने पुकारा—'और तुम्हारे बच्चे ! ये तुम्हारे प्राण !'

उस मौन भाव की अवस्था में ही, ज्ञाननाथ जी ने अनुभव किया कि हाँ, सच, वे मर गये हैं। उनका शरीर जला दिया गया है। अथवा किसी के द्वारा नाली के गटर में फेंक दिया गया है। वह शरीर सड़ रहा है। बड़े-बड़े कीड़ों का भोजन बन रहा है। राहगीर उस सड़ाँद भरे शरीर पर आँख डालते थे और माथे में बल डाल कर, नाक पर कपड़ा रखे, तेजी से आगे निकल जाते हैं..... ज्ञाननाथ......पण्डित जी के मन में एकाएक कँपकँपी पैदा हुई। हृदय में धड़कन समाविष्ट हो गयी। उस अवस्था में ही, उन्हें वह रात याद हो आई कि जब मोहल्ले में हमला होने की अवस्था में, परिवार सहित छुप कर बाहर निकले और कई घण्टे तक निकट के खण्डहर में छुपे रहे। पण्डित जी को उस समय वह बात भी याद हो आई कि नगर के एक बड़े मुसलमान गुण्डे ने उन्हें आकर खबर दी कि आज रात को इस मोहल्ले पर हमला होगा। आप की लड़कियों को लूट लिया जायगा। आप को मार दिया जायगा। आप भाग जायें। आज रात के आठ बजे से पूर्व ही कहीं छुप जायें। और ज्ञाननाथ जी को यह भी याद आया कि उस गुण्डे ने जब वह बात कही, तो वह हँसा नहीं था। वह गम्भीर था। यद्यपि, उस समय भी वह शराब के नशे में था। किन्तु जैसे उस गुण्डे के रूप में ही कोई फरिश्ता ज्ञाननाथ जी के समक्ष आ खड़ा हुआ था। जब उसने अपनी बात कह कर, पण्डित जी को मौन तथा चिन्तित पाया, तो उसने अपनी फेंट में लगे छुरे की नक्काशीदार मूँठ पर हाथ रखते हुए फिर कहा, 'ऐ पण्डित जी, यकीन रखो, मैं तुम्हारी इज्जत करता हूँ, जानता हूँ कि तुम इस इन्सानी दुनिया में रह कर चोर नहीं बने, डाकू नहीं बन सके। तुमने हिन्दुओं के साथ मुसलमानों को भी प्यार किया है। तुमने इन्सानों को प्यार किया है।' इतना कहते हुए उसने अपनी जेब से नोटों का एक बण्डल निकाला और वह बिना कहे पण्डित जी की जेब में डाल कर बोला—'मैं समझता हूँ, तुम्हारे पास कुछ नहीं होगा। कहाँ से आया होगा ! यह यकीन दिलाता हूँ, जब तक आप घर से न निकल आयेंगे, मैं हमलावरों को इस मोहल्ले में न आने दूँगा। और अब मोहल्ले में रखा ही क्या है। दस, बीस घर हैं। जो पैसे वाले थे,

वे तो चले गये। अपने जाति भाइयों को मरने के लिए छोड़ गये...ही... ही...ओ...ओ...'

वह करीम नाम का गुण्डा चला गया। देखते-देखते वह ज्ञाननाथ जी की दृष्टि से ओझल हो गया। उसी समय पण्डित जी घर में गये। वे मौन और गम्भीर बने हुए थे। पत्नी और बच्चों ने उन्हें घेर लिया। कमला ने पहिले ही मा को बता दिया कि शहर का मशहूर गुण्डा पिताजी के पास आया है। बात कर रहा है। उसकी फेंट में छुरा भी लगा हुआ है। किन्तु पति को देखते ही, पत्नी ने शंकित तथा भीत स्वर में कहा—'क्या बात...कोई नई बात ?' पण्डितजी ने बताया कि आज इस मोहल्ले पर हमला होगा। हमारे घर पर भी—'

और तभी पत्नी ने छूटते ही कहा—'मेरी तैयारी है। यहाँ से चलो। भागो।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने उदास स्वर में कहा—'कहाँ ? किधर ?'

पत्नी ने जैसे पीड़ित बन कर कहा—'कहीं भी ! किसी ओर ! मैं अपने बच्चों को बचाना चाहती हूँ, अपनी लड़कियों को !'

किन्तु ज्ञाननाथ जी ने फिर कहा—'कमला की माँ, तुम्हारी लड़कियों सरीखी हजारों बच्चियों को गुण्डों ने पा लिया है। उन्हें भ्रष्ट करना चाहा है। उनका अन्त किया है।'

पत्नी ने फिर चीखकर कहा—'तो तुम भी यही चाहते हो, हे राम !'

ज्ञाननाथजी ने इस बात का उत्तर नहीं दिया। पत्नी के चीत्कार में, उसकी वेदना में उन्होंने अपने-आपको डूबता हुआ पाया।

और जब रात आई, सात से ऊपर का समय हुआ, तो तभी ज्ञाननाथजी ने पास के मोहल्ले में चीत्कार सुना। उसको सुनते ही उनका आदर्श जैसे पानी के समान बह गया। उनके पास कुछ नहीं रहा। वे केवल पति रहे, अपने बच्चों के पिता। उन्होंने तुरन्त ही, सामान उठवा लिया और अवसर पाते ही मकान छोड़ दिया। उसी समय दौड़ता हुआ करीम फिर वहाँ आया। उसने तेज स्वर में कहा, 'पीछे के खण्डहर में छुप जाओ। आगे मत जाओ। फिर मौका पाकर पीछे से ही जंगल में निकल जाओ।'

और उसके बाद क्या कुछ हुआ, कितना भयंकर चीत्कार और नर-संहार

उस मोहल्ले में हुआ, वह कुछ पण्डितजी ने आँखों से देखा, कुछ कानों से सुना। जब दंगाई वहाँ से चल दिये, तो पण्डितजी ने वह खण्डहर छोड़ने का साहस किया।

कुएँ के ऊपर बैठे हुए पण्डितजी का ध्यान टूटा। वे फिर अपने वर्तमान पर आये। वह एकाएक बोले—'अब क्या! आगे क्या! इतना कहना था कि पण्डितजी को अपनी पुत्री कमला के भविष्य का ध्यान आया। रमाकान्त की कृतघ्नता का प्रश्न भी उनके मन में आँधी के समान फैल गया। इसका परिणाम यह हुआ कि पण्डितजी अपने मानस के उस अन्तर्द्वन्द्व में विजयी तो क्या होते, वे पराजित हो गये। उसके सामने झुक गये। उनके मानस की पीड़ा इतनी वेगवती हुई कि आँखें चढ़ गयीं। गले की नसें फूल गयीं। उस अवस्था में ही उन्होंने अत्यन्त निर्दय और तीव्र रोप से भरे हुए स्वर में कहा—'मैं उस रमाकान्त का गला घोंट दूँगा। मैं उसे मार दूँगा। उसने मेरी बच्ची के मन को कष्ट दिया है, तो मैं उसे शान्त नहीं रहने दूँगा।'

इतना कहते हुए ही, पण्डित ज्ञाननाथ को ध्यान आया कि इस कमला के लालन-पालन में उनकी पत्नी ने क्या कुछ नहीं किया। जाने कितने कष्ट उठाये। कितनी रातों के तारे अपनी आँखों के खड़े हुए पलकों पर उठाये रखे।

उन्होंने होठों से फुसफुसा कर कहा—'और आज मेरी वही बच्ची परेशान है। अपने जीवन के भविष्य की तलाश में है।' वह खुले स्वर में बोले—'मैं अपनी बेटी को सहारा दूँगा। मैं अन्धकार में नहीं भटकने दूँगा। मैं एक रमाकान्त के बच्चे को बता दूँगा कि नारी का अपमान करना, नारी के जीवन से खेलना कितना घातक है। कितना जघन्य पाप...'

उसी समय पास आकर कमला ने कहा—'आप यहाँ हैं, पिताजी! इतनी रात में यहाँ! अकेले!'

पण्डितजी ने पुत्री की ओर देखा। कुछ कहना चाहा।

किन्तु कमला ने फिर आगे कहा—'पिताजी, अधिक विचार-मन्थन में डूबना भी क्या अच्छा है! मस्तिष्क और हृदय को परेशान करना है।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'हाँ, यह क्या अच्छा है, बेटी! अपने-आपको भ्रम में ही डालना है। धोखा भी देना है।'

कमला बोली—'जब हम भगवान पर भरोसा रखते हैं तो क्यों न उसी पर अपने को डाल दें। उसी का द्वार खट-खटायें।'

ज्ञाननाथ जी भगवान की बात सुनकर कड़ुवे भाव में मुस्करा दिये—'भगवान के द्वार पर ही आज यह बड़ा नर-संहार हो रहा है, बेटी! वह सब कुछ देख रहा है। मैं कहता हूँ भगवान का सृजन ही उन मनुष्यों ने किया है। अपने स्वार्थ के लिए किया है। यह ऐसा झूठा प्रलाप है, जो कभी न कम हुआ है, न रुका है। दुनिया के समान इस भगवान का नाम भी सदा बढ़ता गया है।'

कमला ने कहा—'पिताजी, इस रात में आपका जागना और यहाँ आना ही इस बात का सूचक है कि आपके मन में कोई बड़ी वेदना है। उसी ने परेशान किया है। अन्यथा, भगवान के ऊपर आपको तो सबसे अधिक भरोसा है। इस इन्सान में जब भावना है, तो भगवान भी है। आपने भावना का नाम ही तो भगवान बताया है।' वह बोली—'पिताजी, इन्सान के मन की वह पवित्र भावना आज रुक गयी है। दब गयी है। मजहब परस्ती के नशे ने वह सिकोड़ दी है। इन्सान की स्वाभाविकता नष्ट हो गयी है।'

उसी समय पण्डितजी को करीम गुण्डे का ध्यान हो आया। उनके प्रति उसमें किस भावना का जन्म हुआ, वह क्यों उनकी मदद करने के लिए प्रस्तुत हुआ—इस प्रश्न को लिये जब उनके मन में फिर चेतना आई, तो उन्होंने जैसे अपने से दूर हुए विवेक को फिर अपने पास आता हुआ पाया। कदाचित् उसी ने उन्हें सम्बोधित किया और कहा, जीव का शरीरधारी बनने का अर्थ ही यह है, कि भावना का जन्म हुआ। संसार के सभी बच्चे अपने प्रिय और सलोने होते हैं, किन्तु जब वही बड़े होते हैं, तो संसार के छल उन्हें सँवार देते हैं, एक विषैली हवा में बहा देते हैं।

कमला बोली—'पिताजी, आपकी धीरता ही हमें बल देगी। हमें आपसे ही साहस की स्फूर्ति मिलेगी।'

उसी समय नगर में कहीं शोर उठा। बन्दूक की गोलियों का भी दना-दन नाद सुना गया। इतना सुनते ही, कमला ने फिर कहा—'पिता जी, यह भी अजीब बात है! आपने तो बहुत बार हमें बताया है कि आदमी जानवर है। परन्तु हमने जो अभी जीवन में प्रथम बार देखा है कि सच, आदमी जानवर है! विषैला है! कठोर है!'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'साँप का काटा हुआ बच जाता है, परन्तु इस विषधर आदमी का काटा भला कोई बचता है! इसका प्रहार भी अनेक प्रकार से होता है। अनेक रास्तों से!'

कमला बोली—'इस समय हमारे शिविर में कई हजार आदमी होंगे। परन्तु मुझे दीखता है कि इस मुसीबत में भी किसी को किसी के प्रति सहानुभूति नहीं है। प्रेम नहीं है।'

ज्ञाननाथजी बोले—'सहानुभूति और प्रेम तो इस देश से तिरोहित हो गये हैं। हम सभी लुटेरे बन गये हैं। एक-दूसरे के लिए असह्य हो गये हैं।'

'और फिर भी कहते हैं लोग हमारी एक जाति है, एक देश है!' कमला ने चिढ़ कर कहा—'सभी झूठ कहते हैं। बकवास करते हैं।'

इस बात को सुनकर ज्ञाननाथजी मौन थे। गम्भीर थे।

कमला ने कहा—'आप उठिये आराम कीजिये!'

'हाँ बेटी! अब आराम ही करूँगा। किसी दिन मृत्यु की गोद में भी समाविष्ट हो जाऊँगा।' ज्ञाननाथजी ने उदास स्वर में कहा।

कमला ने कहा—'आप इतने उत्साहहीन मत बनिये, पिताजी! देखते हैं, हमारा बोझ आपके ही कन्धों पर है।'

ज्ञाननाथजी ने आतुर हुए स्वर में कहा—'नहीं, नहीं, मेरा बोझ तुम पर है! मुझमें क्या अब बल है! कुछ नहीं।'

कमला ने पिताजी का हाथ पकड़ लिया—'नहीं, पिताजी! आपमें बहुत बल है। आपकी आत्मा में बल है। आपकी वाणी में बल है। कौन नहीं जानता कि आपके विचारों में बल है।'

ज्ञाननाथजी ने अपना मत नहीं दिया। पुत्री के साथ चलने के लिए कुआँ छोड़ दिया।

: १२ :

विपत्ति जब आती है, तो कह कर नहीं आती। अकेली भी नहीं। वह आँधी के समान आती है। अपने साथ शिकार को भी उड़ा ले जाती है।

रात में ही पण्डित ज्ञाननाथ ने यह निश्चय कर लिया था कि प्रातः ही शिविर छोड़ देंगे। कमला का भी यही विचार था। परन्तु जब प्रातः हुआ तो लड़का सुरेश बुखार से कराह उठा। प्रोग्राम स्थगित हो गया। सन्ध्या तक उस सुरेश को चेचक निकल आई। यह देखकर कमला और ज्ञाननाथ जी का माथा ठनक गया। शिविर के अधिकारियों ने उन्हें पृथक् स्थान में रहने के लिए बाध्य किया। किन्तु विपत्ति की सीमा वहीं पर समाप्त होती, तो भी सन्तोष की बात थी। दिन पर दिन लड़के की अवस्था विषम बनती गयी, वही उस परिवार की शोभा था। जब सुरेश मृत्यु के मुँह में पहुँच गया, तो अनायास बाबू ज्ञाननाथ को लगा कि उनका जीवन उड़ जायेगा, नहीं रहेगा। चेचक का रूप इतना विकराल था कि बच्चा बोल नहीं सकता था। उसके शरीर का कोई भी भाग उसकी क्रूर दृष्टि से नहीं बचा था।

उन दिनों घर का काम सरला के ऊपर था। कमला का काम बीमार भैया के पास बैठना था। वहाँ से नहीं हिलती थी। समय-समय पर पण्डित ज्ञाननाथ जी का भी इस काम में योग मिल जाता। परन्तु कमला की चेष्टा थी कि पिता को कष्ट न दिया जाय। उन्हें अलग रखा जाय। और दिखायी भी यह देता कि पण्डित जी अपने समय का अधिकांश भाग उन दिनों शिविर के एकान्त स्थान में बैठ कर बिताते। शिविर के संचालकों ने उन्हें एक छोटा-सा टैण्ट दे दिया था, क्योंकि उन्हें समस्त शिविर में चेचक के फैलने का भय था। जिस परिवार के पास समस्त शिविर के नर-नारी आते-जाते, देश की दुर्व्यवस्था पर बातें करते, उसी शिविर का जन-समाज उस परिवार के मासूम बच्चे को चेचक का रोगी पाकर इतना दूर रहा, उस रोग से इतना भयभीत हुआ कि प्रायः सभी का पण्डित ज्ञाननाथ जी से बोलना और आना-जाना रुक गया। पण्डित जी, कमला और सरला ने यह देखा तो समझा कि हाँ, चेचक छूत का रोग है! सभी को लगने का भय है। जब पुत्रियों द्वारा इस प्रकार की बात उठती, तो पण्डित जी द्वारा प्रायः यही कह कर पुत्रियों को सन्तोष दिया जाता। किन्तु इतना भर कहने से उन युवा पुत्रियों को सन्तोष तो होता नहीं था, अपितु, उनमें उस समाज के प्रति, उसकी मनोवृत्ति के प्रति अधिक रोष और वैषम्य ही जागरित होता। निदान, जब यही कथा-वार्ता एक दिन फिर चली, तो विद्रोही भाव में सरला ने तुरन्त ही कहा—'आप हमको समझाने

की व्यर्थ चेष्टा कर रहे हैं, पिताजी ! यह नर-नारियों का समाज न सामूहिक है, न एक है। सभी के जुदा-जुदा स्वार्थ हैं। अपने-अपने रास्ते। किसी को भी किसी से सहानुभूति नहीं है। आप कुछ देते हैं तो सभी को अच्छे लगते हैं, परन्तु जब कुछ माँगने की स्थिति में आते हैं, तो लोगों की आँखों से उतर जाते हैं। इस मनुष्य ने आज तक न भगवान को स्वीकार किया, न भावना को अंगीकार किया।'

सरला की इतनी बात सुनकर पण्डित ज्ञाननाथ चकित नहीं हुए। वे पहिले से अधिक गम्भीर बन गये। उनकी बिटिया ने जो बात कही, वह उनके मन में भी थी। परन्तु उस दुर्गन्धि को फैलाना उनके स्वभाव के विपरीत बात थी। हीनता का प्रचार करना उनका काम नहीं था।

सरला ने फिर कहा—'यहाँ सब स्वार्थ के धन्धे हैं, स्वार्थ के संबंध हैं।'

यह बात पण्डितजी को जैसे अरुचिकर लगी। उन्होंने कहा—'न, बेटी ! इन संबंधों की जड़ में भावना का बीज है। पिछले संस्कारों की बात है। क्या तुम इसे आध्यात्मिक संबंध नहीं मानती !'

सरला जैसे कड़ुवे भाव में मुसकरा दी—'मैं इतनी समझदार नहीं हूँ पिताजी ! आध्यात्मिकता को मैं कहाँ समझती हूँ। मैं तो दुनियादारी की आँख से इस जीवन को देखती हूँ।'

उसी समय कमला ने कहा—'पिताजी, सुरेश भैया तुम्हारी तरफ देखता है।'

उस ओर देखकर, ज्ञाननाथजी ने कहा—'बेटा, सुरेश !'

कठिनाई भरे स्वर में सुरेश ने कहा—'माँ !'

कमला बोली—'भैया, पानी दूँ।'

सुनकर, सुरेश ने मुँह खोल दिया। कमला ने चम्मच से उसके मुँह में पानी डाल दिया।

सुरेश ने कहा—'जीजी, मुझे माँ बुलाती है। पुकारती है।'

कमला का स्वर भर गया। ममता उसकी आँखों में आ गई।

बच्चे के मुँह से निकली बात ज्ञाननाथजी ने भी सुन ली, उन्होंने अपनी दृष्टि दरवाजे के बाहर पसार दी। उस एक क्षण में उनकी आँखें भी भर आयीं। पुत्रियाँ देख न लें, अतएव, आँखें चुपचाप धोती के छोर से

पोंछ लीं। किन्तु सरला ने पिता की उस अवस्था को देख लिया। सब कुछ देख लिया। वह कुछ कहती, कदाचित पिताजी से बाहर जाने के लिए कहती कि उस सुरेश ने फिर कमला को सम्बोधित किया। उसने फिर कठिनाई से कहा—'जीजी, मा कहती है, सुरेश मेरे पास आजा!'

इतना सुनकर ही कमला फुदक पड़ी। उसका साहस टूट गया। धोती के अंचल में उसने मुँह छुपा लिया। उसने सुरेश को सुनाकर कहा—'भैया, मा नहीं है।'

उसी समय सुरेश ने फिर कहा—'पानी।'

सुनते ही, कमला फिर और झुक गयी।

ज्ञाननाथजी वहाँ से उठ लिये। वह दोनों पुत्रियों को सुना कर कहते गये—'बेटी, चिराग बुझना चाहता है। तेल समाप्त हो गया है।'

किन्तु उसी समय जब कमला ने सरला को रोती हुई पाया, तो उसने कहा—'सरला, न रो।'

सरला ने तड़ाक कर कहा—'यह सब क्या हो रहा है, जीजी।'

जीजी ने कहा—'भगवान की इच्छा का पेट भर रहा है।'

किन्तु सरला को इस बात से सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा—'पिताजी अपनी मा के बिछुड़ने का दुःख अभी सहन भी नहीं कर पाये कि एक यह दुःख...इतनी अपार पीड़ा...जीजी!' इतना कहते हुए सरला ने अपना मुँह कमला के कन्धे पर पटक दिया।

कमला ने सरला के सिर पर हाथ रखा। उसके सिर के बालों को सहलाया। उस अवस्था में ही, उसने अपनी उद्वेगपूर्ण आँखों को बरबस पोंछते हुए कहा—'सरला बहिन, आज हम पर ही मुसीबत नहीं है, बहुतों पर है। यह तो इन्सान की आदत की बात है कि अपनी मुसीबत को ही बड़ी मानता है। अपने पैरों में लगे काँटे को भाला समझ लेता है। और दूसरे के पैर में लगे भाले को तुच्छ मानता है।'

उसी प्रकार जीजी के कन्धे पर सिर किये हुए सरला बोली—'जीजी, यहाँ सभी अकेले हैं, सभी दूर-दूर हैं।'

कमला ने कहा—'मैं सोचती थी, मा गयी, तो इस भैया को देखकर हमारा और पिताजी का समय कट जायगा। पिताजी की प्रतिभा का प्रतिनिधित्व

यह भैया करेगा, इसीसे हमारे खानदान का नाम चलेगा। पर अब......
अब......हे राम!'

सरला ने कहा—'जीजी, यदि विपरीत बात हुई, तो पिता जी का जीवन अधिक न चल सकेगा। मुझे दिखता है, हम दो दुर्भागी बहिनों को अकेली रहना पड़ेगा।'

कमला ने साँस भरी—'वही होगा, जो विधि का लिखा होगा। हमारे वश में कुछ नहीं। हमें तो आँख मूँद कर रास्ता काटना पड़ेगा।'

उसी समय एकाएक सरला ने चीखकर कहा—'जीजी!'

जीजी ने देखा कि सुरेश की साँस तेज हो चली है। उसकी छाती की धड़कन भी तीव्र हो गयी है। कमला उस ओर झुक गयी। सरला पिताजी को बुलाने बाहर गयी। जब वह उन्हें लेकर आयी, तो सुरेश के प्राण निकल रहे थे। वे उसकी आँखों के द्वार पर आकर जैसे छटपटा उठे थे। देखते ही पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'हरे राम...हे राम!'

कमला ने कहा—'पिताजी, मेरा भैया!'

पिताजी अवरुद्ध थे। उनके स्वर के द्वार जैसे बन्द हो रहे थे। प्राणों का उद्वेग आँखों में उतर आया था और वे खड़े-खड़े काँप उठे थे।

उसी समय सुरेश का प्राण-पखेरू अपने पंख पसारकर उड़ गया था।

परन्तु विधना का यह भी कैसा निर्दय व्यापार था कि जब पण्डित ज्ञाननाथ बड़े पुत्र का जल-प्रवाह करके लौटे, तो उसके दो घण्टे बाद कमला को बुखार चढ़ चुका था। समस्त शिविर उस करुण-दृश्य को देखकर कातर था। मानो समूचे मानव समूह का दण्ड पण्डित ज्ञाननाथ को भोगना पड़ गया था। वह प्राणों से प्यारा बच्चा, जैसे किसी बगीचे का एक सुन्दर फूल सदृश था कि जो बरबस ही, असमय तोड़ दिया गया था। मानो मृत्यु ने निर्मम बनकर ही उसका अन्त किया था।

चार दिनों से कमला न सो सकी थी, न ठीक से आहार कर सकी थी, थकान से बुखार चढ़ा था, तो सन्ध्या आते-आते उतर गया। अपने छोटे भैया की तीमारदारी का बोझ कमला के सिर पर था। मा गयी, तो बाद में उसका वह सलोना भाई भी चला गया। जैसे उस परिवार का जीवन ही बदल गया। सभी-कुछ निःसार हो गया। इस वेदना का क्षोभ भी उसके मन पर था।

सन्ध्या का पहर था। पण्डित ज्ञाननाथ ने हवन किया। पुत्रियाँ पास बैठी थीं। जब वह हवन करते समय वेद के मन्त्र बोलने लगे तो निश्चय हीं, उनका स्वर स्थिर नहीं था। उनके प्राणों में उद्वेग था। दोनों पुत्रियों के केश खुले हुए थे। पण्डित ज्ञाननाथ के सिर के बाल श्वेत थे। उन दिनों में वे बढ़ भी गये थे। वे ऋषि तुल्य लगते थे। उनके पास बैठी हुई पुत्रियाँ तेजोमय बनी हुई सचमुच ही ऋषि-कन्या लगती थीं। उस हवन के समय कुछ और व्यक्ति भी आ बैठे थे, जब हवना समाप्त हुआ, तो कमला के आदेश पर सरला भोजन बनाने में लगी। जो आगन्तुक वहाँ आये हुए थे, ज्ञाननाथ जी उनसे बात करने लगे।

एक व्यक्ति ने कहा—'पण्डित जी, आखिर क्या अर्थ है, इस जीवन का? यह व्यापार क्या अच्छा है! आप के साथ जो कुछ हुआ, अच्छा नहीं हुआ।'

पण्डितजी उस समय अधिक थके थे। खिन्न भी थे। लेकिन जब बात सुनी, तो वे जैसे अनजाने ही मुस्करा दिये—'भाई, व्यापार अच्छा है या बुरा, करना सभी को पड़ता है। यही संसार का स्वभाव है। मेरे साथ जो कुछ हुआ, यह भी हमारे कर्मों का फल ही सिद्ध हुआ।'

एक अन्य व्यक्ति ने कहा—'भगवान भी न्याय नहीं करता।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'भगवान कुछ नहीं करता। अन्याय करने को तो उसके समक्ष कदाचित प्रश्न ही नहीं खड़ा होता।'

पण्डित जी सरीखे आयु के एक और व्यक्ति वहाँ बैठे थे। वे लाहौर में कई लाख रुपयों के व्यक्ति कहे जाते थे। भरापूरा परिवार था। अब वह थे और उनकी पत्नी थी। पैसे से खाली, सभी कुछ लुटा कर आये थे। बात सुनकर बोले—'यह सत्य है, भाई! न्याय-अन्याय, नफा-टोटा हमें अपने अपने कर्मों के अनुसार ही मिलता है। कभी हमें अपने पड़ोसियों के पाप का भी साझीदार बनना पड़ता है। जो पाप एक जाति या देश करता है, उसको वहाँ का समस्त, जन-समुदाय भोगता है। भगवान का नाम तो व्यर्थ में ही घसीटा जाता है।'

पुरुषों में होती हुई उन बातों के समय ही, कुछ स्त्रियाँ उन दोनों बहिनों के पास आईं। सरला काम में लगी थी। कमला बैठी थी। उन नारियों में से एक वृद्धा ने कमला के सिर पर हाथ रखा—'बेटी, यह विपत्ति

का समय है, धीरता से काम लेना। अपने पिताजी को भी अधिक दुःखी न करना। भगवान ने तुम्हारा भाई छीन लिया, तुम समझो, यहीं तक तुम्हारा और उसका सम्बन्ध रहना था। इतना ही संयोग था।'

कमला ने कहा—'अम्माजी, मेरा भैया क्या गया, हमारी जिन्दगी का क्रम ही बदल गया। पिताजी का भी जीवन बदल गया।'

एक प्रौढ़ नारी बोली—'वह बच्चा ही पण्डित जी का सहारा था, भगवान ने वह भी ले लिया। उसको यही मन्जूर था।'

एक अन्य नारी ने कहा—'आज जाने कितने परिवारों का भाग्य लुट गया। इन मा जी को देखो, सात जवान बेटों में से एक भी नहीं बचा। लाखों रुपया था, वह भी चला गया।'

उस नारी के पास बैठी हुई युवा औरत बोली—'पैसों का क्या है, आता और जाता है। आदमी जितना खोता है, अवसर पाकर उससे भी अधिक उपार्जित कर सकता है।'

कमला उस समय दोनों छोटों को बाहों में समेटे बैठी थी। सामने ही कुछ दूरी पर आदमी बैठे थे। उनके बीच उसके पिता थे। उसके मन में बात आई कि आज दिन में जाने कितनी बार पिताजी की आँखों में आँसू आये। वे सूखे और फिर हरे हुए।

तभी पहिली वृद्ध नारी बोली—'जो कुछ बच गया है, तुम्हारे पास रह गया है, उसी को सँजों कर भगवान का आभार मानो बेटी!'

उसी समय कमला ने सुना, उसके पिताजी के पास बैठे हुए व्यक्तियों में से एक कह रहा था—'पण्डित जी, भगवान से दुआ कीजिये कि आपकी पुत्रियाँ ही पुत्र का लाभ दें। ये योग्य बनें।'

दूसरे व्यक्ति ने कहा—'पुत्रियों का क्या है, आज हैं, कल दूसरे घर! पुत्री तो दूसरे की अमानत है।'

पहिले व्यक्ति ने कहा—'अब हम पीछे की ओर देखकर आगे का रास्ता नहीं बना सकते। वह युग बदल गया कि जब पुत्री भार समझी जाती थी। पैदा होते ही मार भी दी जाती थी। आज पुत्रियाँ भी पुत्रों का काम देती हैं। उन्हें योग्य बनाना ही पिता का धर्म है।'

इस बात का एक अन्य तीसरे व्यक्ति ने समर्थन किया—'हाँ, हाँ, यह ठीक है ! हमें अब आगे की ओर देखना पड़ेगा। जो कुछ हुआ, बीत गया, उसे भूल जाना होगा। व्यक्ति आते हैं और चले जाते हैं। सभी अपना इतिहास बना जाते हैं। उस इतिहास को पढ़कर हमें अब आँख मूँद कर उसका दास नहीं बनना पड़ेगा। उसका अपने जीवन से समन्वय करना पड़ेगा। उस बीते इतिहास से कुछ लेना पड़ेगा, कुछ छोड़ना पड़ेगा।'

पण्डितजी ने कहा—'इतिहास सभी का बनता है। जानवरों का भी बनता है। पेड़-पौधों का भी बनता है। लघुता को प्रभुता का चोला प्रदान करना आने वाली पीढ़ी का काम होता है। हम जिस वस्तु का निर्माण करते हैं उसके गुण-दोषों का निरूपण करना दूसरे का काम होता है। यही बीते हुए इतिहास और आने वाले मनुष्य की परम्परा है।'

पहिले व्यक्ति ने कहा—'आपकी पुत्रियाँ योग्य हैं, पण्डित जी!'

पण्डितजी ने विनीत बनकर कहा—'यह सब आप लोगों का आशीष है।'

'आपकी पुत्री कमला देवी की प्रशंसा इस शिविर में प्रायः होती है।' वे सज्जन बोले—'वह प्रायः सभी के पास जाती है। उनके कुशल-समाचार पूछती है।'

पण्डित जी बोले—'उसकी मा चली गयी है, तो वह अपना उत्तरदायित्व समझती है।'

उसी सज्जन ने कहा—'कमला देवी दुखियों के दुःख में हाथ बँटाती है। उसमें नारी की ममता है।'

तब पण्डित जी ने मत नहीं दिया। व्यक्ति उठ चले। नारियाँ भी चली गयीं। तभी कमला ने आकर कहा—'आप भोजन कर लीजिये पिताजी।'

पिताजी ने पुत्री की ओर देखा और अपनी उदास आँखों को, झटका-सा खाकर, उसकी उद्वेग पूर्ण आँखों पर झुका दिया...

: १४ :

जिस शरणार्थी शिविर में पण्डित ज्ञाननाथ अपनी पत्नी और लड़के को खो चुके, उसमें रहना अब उन्हें शुभ नहीं लगा। अगले दिन के प्रातः ही उन्होंने शिविर छोड़ दिया। उन्होंने अमृतसर से दिल्ली की ओर कूच किया। यद्यपि, उस सफर में उन्हें उत्साह नहीं, था, परन्तु जो कुछ खो चुके, उसके बाद भी जो कुछ उनके पास शेष था,—वे दो पुत्रियाँ—तो उस बाकी रह रह गयी निधि को संजोये हुए ही, उन्होंने फिर समर-क्षेत्र में उतरना पसन्द किया। जब यह दिल्ली की ओर चले, तो रास्ते में ही उन्होंने मौत सरीखा चीत्कार सुना। मानो सभी ओर लोग अशान्त थे, खिन्न बने थे। लगता था कि जैसे इन्सान का सुख उठ गया। उसके जीवन में चैन नाम का पदार्थ नहीं रहा। मानव की सभी परम्पराएँ नष्ट हो गयीं, वह केवल भूत बनकर धरती पर चीखने और दूसरों को डराने भर के लिये रह गया था। फलस्वरूप उस करुण और वीभत्स वातावरण में जैसे पण्डित जी का मन बार-बार रोना चाहता। किसी जहरीले धुएँ में उनका प्राण घुटता। उन्हें लगता कि सचमुच मानवत्व समाप्त हो गया। हिंसा और रोष ही मानव के पास रह गया है।

पुत्रियों सहित पण्डित ज्ञाननाथ दिल्ली पहुँचे। वह स्टेशन के प्लेटफार्म पर उतर लिये। उसी ट्रेन से उतरे हुए परिवारों में से कइयों ने जब स्वस्थता की सांस ली, तो एक परिवार को लक्ष्य कर पण्डित जी ने कमला से कहा, 'उधर देखो बिटिया उन नारियों की ओर।' कमला ने देखा कि कुछ युवा लड़कियाँ जब गाड़ी से प्लेटफार्म पर उतरीं, तो उन्होंने सर्व प्रथम जो कार्य सम्पादित किया, वह यह था कि अपने बक्स खोल कर लिपस्टिक पाउडर मुँह पर लगाये। लाली होंठों पर लगायी। ज्ञाननाथ जी ने कहा—'बेटी, पञ्जाब के पतन का एक यह भी कारण है। पञ्जाब ने अपने पौरुष से यदि पैसा अधिक उपार्जित किया, तो सौन्दर्य-प्रसाधनों का भी ढेर लगा लिया। इच्छाएँ बढ़ा लीं। चरित्र को महत्व देना छोड़ दिया। और जानती हो बेटी, चरित्रहीन व्यक्ति, अथवा समाज या देश क्या देर तक जीवित रह सकता है! नहीं, वह असमय ही मर जाता है। अपने पाप का बोझ दूसरों के ऊपर भी डाल देता है।'

उसी समय पास खड़ी सरला ने दूसरी ओर लक्ष किया और खुले शब्दों में कहा—'अरे अशफाक भाई !'

अशफाक पास आ गया। उसने सभी को सलाम किया। वह बोला—'मैं' यहाँ पर अशफाक नहीं, अशरफीलाल हूँ। तीन दिन से तुम लोगों के लिए स्टेशन पर आ रहा हूँ। और तभी उसने अपने आस-पास देखकर कहा—'और सुरेश ?'

सरला ने कहा—'उसे भगवान ने ले लिया। कल ही वह हम लोगों को छोड़ गया।'

'या खुदा !' एकाएक अशफाक ने खिन्न स्वर में कहा—'तो पण्डितजी को यह सदमा भी उठाना पड़ा।'

पण्डितजी ने कहा—'भैया भगवान को यही मन्जूर था।'

अशफाक ने कहा—'मेरे एक दोस्त हैं, वे हिन्दू हैं, बड़े भले हैं। उनके मकान में एक कमरा मैंने ले लिया है। मामू के यहाँ भी आप रह सकते थे, लेकिन इस फिजा में मैंने यह पसन्द नहीं किया।'

उत्साह भाव में पण्डितजी ने कहा—'तो चलो भाई ! स्थान पर चलें, सामान रखें। साँस लें।'

सभी ने सामान उठा लिया। बाहर ताँगा ले लिया। अशफाक उन सभी को एक मोहल्ले में ले गया। रास्ते में ही अशफाक ने बताया कि यहाँ पर जल्दी ही पगड़ी का रिवाज चल पड़ेगा। पंजाब से आये पैसे वाले हिन्दुओं ने दो-दो लाख तक रुपया पगड़ी में दिया है। पैसे वालों ने बड़ी-बड़ी जायदादों पर कब्जा कर लिया है।'

उसी समय पण्डितजी ने कहा—'जो पाप का घड़ा पंजाब में फूटा, उसका प्रभाव क्या यहाँ नहीं पड़ेगा ? पैसे का राज्य यहाँ पर भी सिरमौर बनेगा।'

मकान आ गया। अशफाक सभी को अन्दर ले गया। जो कमरा बन्द था, वह खोल दिया गया। कमरा साफ था, हवादार था। अशफाक ने बताया, 'वह सामने बारजा है, वहाँ पर खाना बनाने का काम चल सकेगा।'

कमला ने कहा—'भैया, अब एक काम करो। हमारे पास अँगीठी है, बर्तन भी हैं, तुम बाजार से थोड़े कोयले ला दो, तो मैं पिताजी के लिये चाय बना दूँ। सूरज चढ़ आया है और उन्होंने अभी कुछ भी नहीं लिया है।'

कहते हुए उसने अपने बकस से बटुआ निकाला और एक दस रुपये का नोट अशफाक की ओर बढ़ाया।'

अशफाक ने कहा—'इसे रहने दो। अभी रखो। मैं कोयले लाता हूँ।' कहते हुए वह लौटा। कोई दस मिनट में ही वह कोयले की बोरी मजदूर के सिर पर रखा लाया। जब वह आकर बैठा, तो बोला—'गनीमत है कि आज यहाँ का बाजार खुला है। अपने प्यारे नेता की वाणी ने आग पर पानी डाला है। उस वृद्ध और पवित्र सन्यासी का उपवास भी लोगों की तेज साँसों को थप-थपाने में समर्थ बना है।

गम्भीर भाव में पण्डित जी ने कहा—'पंजाब की तरह यदि यहाँ भी आग फैली, तो देश नष्ट हो जायगा। धू-धू करके जल जायगा यह देश!'

अशफाक ने कहा—'बैरिस्टर साहब तो आप की कई दिनों से इन्तजार में हैं। उन्होंने ही मेरी ड्यूटी आपके लिए स्टेशन पर लगायी है। उन्होंने कहा था, आपके साथ में दो सयानी लड़कियाँ हैं, बच्चा है और आप वृद्ध हैं। जब मैंने मामू के मकान में आपको ठहराने की बात कही, तो उन्होंने इसे भी पसन्द नहीं किया। उन्होंने सत्य कहा, जातियों का गुण्डापन आज सीमा को पहुँच गया है।'

पण्डित जी बोले—'मैं आज ही उनसे मिलूँगा।'

अशफाक ने कहा—'वे आज यहाँ नहीं हैं, बाहर हैं। उनके सिर पर बहुत काम हैं। झगड़े के लिए गुंडों ने जो शस्त्र बनाये हैं वे हथियार या तो पुलिस को मिल जायें या बेकार हो जायें। यहाँ आकर भी क्या उनको चैन मिला है। उन्होंने बहुत से इन्सानों को बचाया है!'

सरला ने अंगीठी सुलगाई और चाय का पानी रख दिया।

कमला ने फिर नोट बढ़ाकर कहा—'भाई, कोयलों के पैसे लो!'

अशफाक बोला—'पहिले चाय पी लूँ।'

कमला मुसकरायी—'हाँ, चाय पी लो।'

चाय तैयार हुई। दो प्यालों में चाय की गयी। पण्डित जी और अश-फाक के समक्ष रख दी गयी। कमला और सरला ने भी पीना आरम्भ कर दिया। जब अशफाक चाय पी चुका, तो वह उठा और बोला—'इस मोहल्ले

के पास ही बाजार है। सामान मिलता है। मुझे इजाजत दीजिये। आ सका, तो शाम को आऊँगा। नहीं तो कल! कोयलों के पैसे नहीं लूँगा। जब आऊँगा तो चाय पी लूँगा।'

पण्डित जी ने कहा—'नहीं भाई, पैसे लो।'

अशफाक बोला—'इन पैसों से बड़ी वस्तु मैं आप से लेता रहा हूँ, पण्डित जी! अब आराम कीजिये। स्नान कीजिये।'

सरला ने कहा—'तुम हिन्दी बहुत अच्छी बोल लेते हो, अशफाक भाई।'

सुनकर, अशफाक हँस दिया—'बहिन, मैं हिन्दी पढ़ता हूँ।' और उसने गम्भीर बनकर कहा—'मैं रामायण और गीता को भी पढ़ सकता हूँ। श्लोकों के अर्थ तो नहीं जानता, परन्तु भावार्थ देखकर अपना काम निकाल लेता हूँ।

कमरा साफ था, तो इसलिए कमला ने पिता जी का बिस्तर खोल दिया। वह पड़ गये। उसने सरला से कहा—'तू नल पर जाकर स्नान कर ले। कपड़े बदल ले। पिता जी बाजार जायेंगे, तो दो धोतियाँ ले आयेंगे।'

पण्डित जी ने कहा—'आज ला दूँगा।'

उसी समय अशफाक बिदा लेकर चला गया।

जब सरला स्नान करने गयी, तो कमला ने पिता से कहा—'नया शहर है। नये आदमी हैं। नया घर।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने पुत्री की ओर देखकर कहा—'और यह क्यों भूलती हो कि जीवन भी नया चला है। पिछला सभी कुछ बदल गया है।'

कमला पुटलियों को खोलने और वस्तुओं को कमरे की अलमारियों में रखने लगी। तभी उसने पिता की बात सुनकर कहा—'पिता जी, इतनी कसर है कि स्वयं मरा नहीं जाता। अब यह जीवन आँखों से देखा भी नहीं जाता।'

पिता बोले—'बेटी, जब महाभारत का युद्ध हुआ था और पाण्डवों ने युद्ध भूमि में कटे पड़े अपने स्वजनों-परिजनों को देखा, तो उन्हें भी पाया हुआ राज्य और वैभव तुच्छ दिखायी दिया। किन्तु मरे वे भी नहीं। उन्होंने राज्य किया। सुख प्राप्त किया।'

कमला ने कहा—'पिता जी, ऐसा सुख भी क्या सुख! इन्सान की लाशों के ढेर पर बैठा हुआ मनुष्य भले ही बाँसुरी बजाये, पर क्या वह शोभा पाता है। आँखों देखे दृश्य को और जो कुछ दिखायी पड़ रहा है, उस सभी को

लक्ष कर मेरा सिर तो शर्म से झुका जाता है। हमारा नाश हुआ, हमारा परिवार भ्रष्ट हुआ, मैं केवल इसी को महत्व नहीं देती। मैं देखती हूँ हजारों परिवारों का नाश हो गया।'

उसी समय सरला स्नान करके कमरे में लौट आई। पण्डित जी ने कहा—'कमला बेटी तुम भी स्नान कर लो।'

कमला ने कहा—'पिताजी, तुम !'

वह बोले—'मैं अभी पड़ा हूँ। सुसता रहा हूँ।'

कमला स्नान करने चली। जब वह चली गयी, तो पण्डितजी ने सरला को लक्ष्य किया—'अपने बालों में कंघा करो, बेटी !'

सरला बोली—'पिताजी, जीजी करेंगी !'

'अच्छा, अच्छा, मैं समझा, तुम्हारी मा का काम अब तुम्हारी जीजी के ऊपर पड़ गया है। ठीक है। और बेटी, यह तो बताओ, अब तुम क्या करोगी ? क्या पढ़ोगी ?'

सरला ने कहा—'यह सोचना भी मेरा काम नहीं। आपका और जीजी का काम है !'

पण्डित जी बोले—'इतने दिनों में कमला बेटी का स्वास्थ्य गिर गया है।'

सरला ने कहा—'जब से मा गयी हैं, जीजी ने क्या किसी एक समय भी भी ठीक से खाया या सोई है। और अब तो जीजी के मन में भैया की जुदाई की भी दुःख भरा है। जीजी ने भैया के सभी कपड़ों और खिलौनों को बक्स में रख लिया है।'

पण्डित जी उस समय मौन थे। उनके नेत्र कमरे की छत में लगे थे।

उसी समय सरला ने प्रश्न किया—'और पिताजी, इस मकान का किराया क्या है ? अशफाक भाई ने बताया ?'

पण्डित जी ने छत की ओर देखते हुए कह दिया—'आयेगा, तो मालूम हो जायगा।'

सरला बोली—'कमरा तो अच्छा है। सड़क के किनारे है। हवादार है। हमारे लिए काफी है। बिजली की फिटिंग भी हुई है।'

स्नान करके कमला कमरे में आई। सरला ने कहा—'जीजी, मकान का हमारा हिस्सा बाजार की ओर है और रास्ता गली में है।'

कमला ने कहा—'यह भी अच्छा है ।

सरला ने कहा—'तो लाओ मुझे पैसे दो । वह सामने ही परचूनिये की दुकान है । साग-भाजी वाला भी बैठा है । खाने का कुछ सामान ले आऊँ ।'

कमला ने दस रुपये का नोट दे दिया । सरला ने एक कपड़ा लिया, चप्पल पहिने और चल दी। वह मकान और गली से निकलकर बाजार में पहुँच गयी ।

उसी समय मकान का एक युवा व्यक्ति उस कमरे के द्वार पर आया । उसने आते ही, पण्डितजी से प्रश्न किया—'आप पंजाब से आये हैं ?'

पण्डितजी ने उस व्यक्ति की ओर देखकर कहा—'जी !'

उस व्यक्ति ने फिर कहा—'आपका कुछ नुकसान तो नहीं हुआ ? सुनता हूँ, लोगों का बहुत बड़ा नुकसान हुआ ।' वह कहने लगा—'यहाँ भी लाशों का ढेर लग गया । एक ने दूसरे को समाप्त कर देने का प्रयत्न किया ।'

पण्डितजी ने कहा—'आप यहीं रहते हैं ?'

वह व्यक्ति बोला—'जी मैं इस मकान में बीस वर्ष का किरायेदार हूँ । बच्चे बाहर गये हैं, सा'ब झगड़े के कारण उन्हें सुरक्षित स्थान में भेजना पड़ा । यहाँ भी दो दिन से लोग रात को सो पाते हैं, नहीं तो समस्त शहर रात भर जाग कर पहरा देता था । पूरा नगर श्मशान का ढेर बना था ।'

पण्डितजी ने कहा—'आप लालाजी हैं ? क्या काम है, आपका ?'

उनसे कहा—'जी, हाँ, मैं अग्रवाल हूँ । हमारी बनारसी कपड़े की दुकान है ।' फिर उसने अपने-आपही बताया, एक दिन यह मकान हमारा ही ही था । व्यापार में टोटा आया, तो चला गया । बिक गया । अब इसके मालिक खत्री हैं । हैं तो वे पंजाबी, परन्तु देर से यहीं पर कारोबार करते हैं । भाग्य की बात कि दिल्ली आते ही वे मालामाल बन गये ।'

पण्डितजी ने कहा—'आइये, बैठिये !'

उसी समय कमला ने कहा—'तो इस दिल्ली से भी बहुत से पैसेवालों के परिवार सुरक्षित स्थानों में चले गये होंगे ।'

लालाजी ने कहा—'हाँ, बहुत से !' वह बोला—'एक बार लड़ाई के समय भी यही अवस्था थी । दिल्ली बहुत खाली हो गयी थी ।'

उसी समय कमला ने पञ्जाबी में पिता जी से कहा—'यही दिल्लीवालों की बहादुरी है ।'

पण्डित जी ने कहा—'पैसेवालों के पास आत्मबल नहीं होता।'

कमला बोली—'शिविर में मैंने सुना कि जब कलकत्ते में झगड़ा हुआ, मारवाड़ी, सेठों से उनकी बन्दूकें लड़ने के लिए माँगी गयीं, तो उन्होंने नहीं दीं। किन्तु दंगाई जब उनके ऊपर आ पड़े तो उन्हीं की बन्दूक से उनका अन्त कर गये। उनका रुपया भी ले गये।'

पण्डित जी बोले—'बंगाल में जो कुछ हुआ, वह अधिक अच्छा नहीं हुआ। बंगाल के जमींदारों ने दंगाइयों से बचने के लिए कुरान की किताबें उन्हें दिखायीं।' उन्होंने कहा, हम तो इस धर्म को भी मानते हैं। कुरान पढ़ते हैं। परन्तु वे गुण्डे इतनी-सी बात पर भला कब रुकने वाले थे। उन्होंने उन जमींदार और रईस बङ्गालियों को मार भी दिया और धन लूटने के साथ उनकी बहू-बेटियों को भी लूट लिया।'

लाला जी उस समय दरवाजे की चौखट पर पैर रखे खड़े थे। वे यौवन के उतार पर थे। किन्तु दिखता यह था कि रसिक तबीयत के थे। पान अधिक चबाते थे। सिगरेट भी पीते थे। जब पिता-पुत्री की बातें चलीं, तो वे वहाँ से चल दिये।

कमला ने कहा—'पिता जी, धनिक व्यक्ति के पास चरित्र-बल नहीं होता। उसका नैतिक धरातल भी ऊँचा नहीं होता। कितनी मूर्खता की बात है कि भगवान का आशीश पाने के लिए और पुण्य संचित करने के लिए वह मूर्ख समाज ब्राह्मणों को खीर-पूरी खिलाता है। उन ब्राह्मणों से जप कराता है। पुण्य प्राप्त करना चाहता है।'

पण्डित जी बोले—'आदमी के पास जब पैसा आता है, तो सद्बुद्धि के बजाय दुर्बुद्धि का बोझ ही उस आदमी पर डाल देता है। पौरुषहीन मनुष्य क्या बुद्धि का परिष्कार कर सकता है—कदापि नहीं।'

उसी समय सरला लौट आई। आटा, सब्जी, मसाला तथा तेल उसने लाकर रखा। शेष पैसे कमला को लौटाये।

कमला ने कहा—'इन्हें तू रख। घर का और खर्च का हिसाब तू ही रखा कर। महीने पर वह हिसाब पिताजी को दिखा दिया कर।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने उस समय स्नान करने का विचार किया। कपड़े उतारे और धोती लेकर वह नल पर पहुँच गये। उनके पीछे ही, कमला ने

सरला को सुनाया—'इस मकान के उस सामने वाले हिस्से में एक लालाजी रहते हैं। उनके बाल-बच्चे झगड़े के डर से बाहर गये हुए हैं।'

सरला ने कहा—'वह गले में सोने की जंजीर डाले हुए लालाजी !'

कमला ने हँस कर कहा—'हाँ, हाँ, वही।'

सरला बोली—'मुझे भी जीने में मिला था। मुँह में पान, और सुलगती हुई सिगरेट का धुँआ उड़ा रहा था ! मेरी ओर देखता हुआ ऊपर चढ़ आया था। और जब मैंने उसके गले में जंजीर पड़ी देखी, तो सोचा, हजरत कुरते के ऊपर जंजीर डाले लोगों को दिखाना चाहते हैं, हम भी हैं पैसे वाले,—सोने की जंजीर पहनने वाले !'

कमला ने कहा—'पैसा पाकर आदमी दिखावटी अधिक बन जाता है।' और तब वह बोली—'देख, सरला ! नया शहर है। हमारे लिये नये आदमियों की बस्ती है। होशियारी से रहने में ही हमारा भला है।'

सरला बोली—'जीजी, अब डरने से भी क्या काम चलता है। इतना तो मैं मानती हूँ कि नारी को उद्दण्ड तो नहीं बनना चाहिए, उसमें शील होना चाहिए, परन्तु यदि कोई पुरुष उसके शील का दुरुपयोग करना चाहे, तो फिर उसको दिन में तारे भी दिखा देने चाहिएँ!'

कमला ने सरला की ओर देखा और कहा—'अच्छा, अच्छा, यह साग छीन ले। जानती तो हूँ तू किसी दिन झगड़ा करायेगी। पर यह भी बताये देती हूँ अगर तू मेरी मर्जी के खिलाफ चली, तो न तू मेरी बहिन और न मैं तेरी जीजी रहूँगी।'

सरला काम में लग गयी और बोली—'जीजी, मा गयी तो मैंने समझ लिया था कि तुम्हीं मेरी मा हो। विश्वास रखो, इस जन्म में तो मैं तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध नहीं जाऊँगी। मर जाऊँगी परन्तु तुम्हारे सामने सिर न उठाऊँगी।'

उस समय कमला मौन थी। वह जैसे अपने अन्तःप्रदेश का समस्त प्यार उस सरला पर उँडेलती जा रही थी, यही करके वह आनन्द पा रही थी।

: १५ :

दिल्ली प्रवास के अगले प्रातः में जब पिता-पुत्री बैठे हुए चाय पी रहे थे, तो उसी समय अशफाक उस मकान के द्वार पर आकर खड़ा हुआ। वह सिर से पट्टी बाँधे हुए था। घाव अभी ताजा था। देखते ही, कमला ने कहा—'अशफाक भाई, सिर में क्या हुआ ?'

अशफाक कमरे में आ गया। पण्डित जी के पास बैठकर उसने कहा—'आजकल जो कुछ हो रहा है, उसका मैं भी कुछ प्रसाद पा गया। खैरियत हुई कि मैं बच गया। लाठी का वार भरपूर नहीं पड़ सका था।'

पण्डित जी ने कहा—'राम राम ! किसी हिन्दू ने वार किया होगा ?'

अशफाक जैसे खेदजनक अवस्था में मुसकरा दिया—'न, पण्डित जी, यह भी मेरे लिए शर्म की बात है कि मुझ पर चोट करने वाला भी मुसलमान था, निश्चय ही, उसने मुझे हिन्दू समझ लिया था।'

सरला ने कहा—'जब आदमी पागल बनता है, तो कुत्ते के समान अपने जाति-भाइयों को भी काटने लगता है।'

कमला ने इतना सुना, तो उसने घूरकर सरला की ओर देखा। पण्डित ज्ञाननाथ ने तनिक हँस दिया। किन्तु अशफाक हँसा नहीं। उसने कमला की घूरती हुई आँखों को देखकर ही, निरे गम्भीर भाव में कहा—'सरला बहिन ने ठीक कहा है, प्रकाश में आया हुआ, इन दोनों जातियों का पाप क्या छुपाया जा सकता है। वह अब जन-जन के मुँह पर बोलता है।'

पण्डित जी ने कहा—'कोई-कोई बात सत्य होते हुए भी नहीं कही जाती। अप्रिय शब्दों में नहीं कहनी चाहिए।'

किन्तु अशफाक ने अपने शब्दों में दृढ़ता दिखाकर कहा—'जब शरीर सड़ता है, सड़ाँद से भरता है, तो आदमी के प्राणों को बचाने के लिए डाक्टर को एक बड़ा ऑपरेशन करना पड़ता है। हमारी जाति में जो सड़ाँद आ गयी है, उसको दूर करने के लिए शरीर का वह अंग काटना ही पड़ेगा।'

कमला ने प्रश्न किया—'भाई, वह अंग क्या ?'

'स्वार्थियों का अंग ! सरमायेदारी !' अशफाक ने संयत हुए स्वर में कहा–

'देर से इस देश के भाग्य का सूर्य बादलों की ओट में हो गया है। स्वार्थ बढ़ गया है। कर्तव्य-पालन और त्यागमयी भावना का लोप हो चुका है।'

कमला ने कहा—'मैं इसे नहीं मानती। आज जो कुछ हो रहा है, जाति के नाम पर क्या इसे त्याग नहीं कहा जायगा। इतिहास बताता है कि दूसरों का सिर काटने के लिए जातियों ने पहिले अपना सिर प्रस्तुत किया है। देर से, युगनिर्माताओं ने इसे सराहा है। किसी जाति का उत्थान और पतन इस भावना से अधिक सम्बन्ध रखता है। बताइये, इतिहास के पृष्ठों से उसे मिटाया जा सकता है। यदि यह दोष है, तो हमारे पुरखों का है।

पण्डित ज्ञाननाथ बोले—'इस धरती पर अधिकार करने के लिए पुरुष ने सभी-कुछ किया है। इन्सान तभी पृथ्वीवल्लभ बना है।'

सरला ने नितान्त उपेक्षा भरे स्वर में कहा—'यदि इसी कुत्सित कर्म का नाम त्याग है, तब तो मनुष्य की बुद्धि का पतन समझिये। इन्सान का विवेक भ्रष्ट मानिये।' वह बोली—'मैं संसार की अन्य जातियों की कहानी तो नहीं जानती, परन्तु मुझे भारत की जातियों सरीखा इतिहास अन्यत्र नहीं दीख पड़ता कि जिन्होंने पाप, भ्रष्टाचार और खूँरेजी करके इस देश की पावन भूमि पर अपना राज्य-विस्तार किया। मुझे बताइये, पिछले काल के किस बादशाह ने भारत की उर्वरा भूमि और शान्त धर्म को भ्रष्ट करके अपने मार्ग को निष्कण्टक नहीं बनाया!' इतना कहते हुए सरला का मुँह अत्यन्त लाल बन गया। मानो उसके हृदय का उद्वेग और रोष आँखों में भी उतर आया। उसी अवस्था में वह सरल भाव से मुस्कराई—'अशफाक भाई, आप भी ऐसी ही एक जाति से सम्बन्धित हैं, इसीलिये मैं इतना कहने की क्षमता करती हूँ। अन्यत्र क्या मैं इतना कह सकती हूँ। यह सत्य मानिये मैं राम और कृष्ण में आस्था रखने के साथ मुहम्मद साहब पर अत्यन्त श्रद्धा रखती हूँ। परन्तु हिन्दुओं के समान, इस्लाम-धर्म के अनुयायी भी अपने मार्ग से भटक गये हैं, इतना सहज ही समझ पाती हूँ। मैं इस प्रकार के लोगों को जाति का पोषक नहीं मानती। अंग्रेज यदि इस देश में जमे, तो उसका कारण भी, मैं यहाँ के वासियों की भ्रष्ट स्वार्थपरता समझती हूँ।'

अशफाक ने कहा—'मैंने तुमसे जितना सुना है, इससे और अधिक सुनने के लिए प्रस्तुत हूँ। जो सचाई है, उसे क्या मैं झूठ मान सकता हूँ।'

सरला ने फिर कहा—'इन जातियों की जो हीनता है, कायरता है, वह तो मेरी कल्पना से भी अधिक पुरानी है। मेरा मत है, विशेषतः हिन्दू जाति सदा ही स्वार्थ और द्वेष की आग में जलती रही है। इसका कारण क्या रहा, इतना तो मैं नहीं समझती, परन्तु यह मानती हूँ, इस वैभव-सम्पन्न देश की प्रभुता को पाने की होड़ यहाँ के प्रत्येक राजा में रही। इनकी दलगत और जातिगत और धर्मगत मनोवृत्ति उन्हें सदा ही संकुचित बनाने में समर्थ बनी। मुसलमानों की इस श्रेष्ठता को मैं सदा स्वीकार करती हूँ कि दूर देश से आका इस देश में लड़े, कटे, मरे और अन्त में सफल बने। प्रतापी हिन्दू राजा उनसे हार गये। 'वीर भोग्या वसुन्धरा', की बात मैं इस नाते स्वीकार करती हूँ। मैं उन मुसलमान वीरों के समक्ष अपना सिर झुकाती हूँ।'

कमला बोली—'तुम्हें यह भी मानना चाहिए कि विश्व के इतिहास-निर्माताओं में मुसलमानों का विशिष्ट हाथ रहा है।'

सरला ने अपने स्वर पर दृढ़ता लाकर कहा—'जीजी, इसे भी मानती हूँ।'

उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ ने विषय बदल दिया और अशफाक की ओर देख कर कहा—'यह अच्छा नहीं हुआ कि तुम्हारे सिर में इस प्रकार चोट लगी।'

सरला हँस पड़ी—'अच्छा तो हुआ, किसी और का सिर फूटता, इन्हीं का फूट गया। मारने वाले का गुस्सा इन्होंने अपने सिर पर ले लिया।'

सुनकर सभी के साथ अशफाक भी हँस दिया। वह सरल और भावना भरे नेत्रों से सरला की ओर देखने लगा।

पण्डितजी बोले—'हमारे घर में सरला ही एक लड़ाकू लड़की है। कमला लड़ना पसन्द नहीं करती। यह तो समझौता चाहती है।'

अशफाक ने कहा—'बातें दोनों ही ठीक हैं। समय पर दोनों की आवश्यकता पड़ती है।'

कमलाने कहा—'सरला की बात सत्य से अधिक दूर नहीं रहती। कटु हो, यह बात दूसरी है।'

अशफाक ने कहा—'सत्य बात मीठी नहीं लगती। परन्तु मैं जिस बात को समझता हूँ, बहिन सरला भी उसी का उल्लेख करती है।'

उसी समय पण्डितजी ने साँस भरी और कहा—'भाई, जातियों का

उत्थान और पतन ऐसे ही हुआ है। संसार की खोज करने वाले इसी प्रकार आगे बढ़े हैं। जीवन का संघर्ष ही इन्सान की सफलता का द्वार है। तुम्हारे उपयोग में आने वाली ऐसी कौन सी वस्तु है कि जिसका निर्माण करने के लिए इन्सानी-समूह ने बुद्धि और बल का उपयोग नहीं किया। इस्लाम भारत में आया, तो इस सत्य को नहीं छुपाया जा सकता कि इस्लामी दुनिया की संस्कृति, कला और साहित्य ने इस देश को भी बहुत कुछ दिया। इस देश के भाग्य में उन्होंने चार चाँद लगाने का काम किया। और संसार के इतिहास में तो इस्लाम-धर्म का बहुत बड़ा हाथ रहा। एक युग था कि इस्लाम संसार के इतिहास का युग निर्माता बन गया था।'

अशफाक ने कहा—'पण्डितजी, यह भले ही सत्य हो, परन्तु आज इस्लाम का भविष्य अन्धेरे में पड़ा है। वह दृष्टि से भी दूर हो गया है।'

पण्डित जी ने कहा—'ऐसा मैं नहीं मानता। इस्लाम जिन्दा रहेगा। उसे जीवित रहना ही चाहिए।'

कमला ने कहा—'पिताजी, मुझे तो दिखाता है, यह मजहब और धर्म आने वाली सन्तति को मान्य नहीं होगा। इसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा।'

पण्डितजी रहस्यमय ढंग से मुसकरा दिये—'बेटी, इस इन्सानी दुनिया को भागते हुए, जीवन-पथ पर चलते हुए तनिक सहारा भी चाहिए। धर्म एक ऐसा ही सहारा है। मेरा अपना तो यह मत है कि किसी राष्ट्र को जीवित रखने के लिए धर्म अवश्य चाहिए। और जिस मजहब की बात तुम कहती हो, लोगों ने उसे विषैला बना दिया है, अन्यथा मेरा तो यह भी मत है कि जाति और मजहब भी चाहिए। इन्सान को ऐसा सहारा अवश्य चाहिए। धर्म तथा जाति का अस्तित्व सुगमता से मिट भी नहीं सकेगा। शायद नहीं मिटाया जायगा।'

अशफाक ने कहा—'यदि मजहब रहेगा, तो संसार योंही द्वेष तथा हिंसा का गुलाम बना रहेगा।'

पण्डित जी फिर कठिन भाव से बोले—'तो क्या तुम्हारा मत है कि इनका इस विश्व से मूलोच्छेद हो जायगा!' उन्होंने कहा—'न भाई! ऐसी

मधुर कल्पना न करना। हाँ, यह सोच सकते हो कि जो रोग आज बढ़ गया है, वह कल घट जाय। बढ़े हुए कारणों को मिटा दिया जाय।

उस समय अशफाक की दृष्टि कमरे के बाहर थी। उसकी आँखें कुछ अधमिची थीं। उसी प्रकार की मुख-मुद्रा लिये हुए, उसने पण्डित ज्ञाननाथ की बात सुनी। नहीं कहा जा सकता कि उसने किस रूप में स्वीकार की।

किन्तु पण्डित जी ने अपनी बात की और पुष्टि की—'अशफाक बेटे, इस संसार की रचना होते समय निश्चय ही, इतना बोझ इस इन्सान के शिर पर नहीं होगा। परन्तु यह इन्सान ज्यों-ज्यों आगे बढ़ा, अपनी बुद्धि का परिष्कार करता गया, तो त्यों-त्यों ही, इस बुद्धिवादी पुरुष ने, मनुष्य के लिए कानून का निर्माण किया। मजहब और धर्म का यही अस्तित्व है। परन्तु जिस प्रकार मनुष्य ने पैसे का दुरुपयोग किया, उसी तरह धर्म और मजहब का रूप भी बिगाड़ दिया। स्पष्टतः मनुष्य को जाति और मजहब में बाँटा गया, परन्तु इनसे ऊपर जो श्रृंखला थी, उसे स्वार्थियों ने आसानी से तोड़ दिया। इन्सान का धर्म—मानवत्व—जो सर्वोपरि था, वह भुला दिया। और उस महान धर्म की आज भी पुकार है। उसीने इस संसार को श्रृंखलाबद्ध किया है। पैसे के समान, धर्म का माध्यम क्या सुगमता से भुलाया जा सकेगा,—न, कदापि नहीं! मानवता को जागरित रखने के लिये धर्म मानना पड़ेगा।'

अशफाक ने कहा—'एक दिन यही मैं कहता था। परन्तु आज इस अवस्था को स्वीकार नहीं कर सकता।'

बात सुनकर पण्डित जी अत्यन्त गम्भीर हो गये। वह बोले—'तुम्हारे विचारों की दिशा बदल गयी है। वह स्वाभाविक है। पर जब तक पूँजी और श्रम का संतुलन न हो, वर्ग-भेद न मिटे, तब तक न धर्म का वास्तविक रूप रह सकता है, न जातिवाद का परम और सहृदय रूप ही दिखायी देगा। पूँजी और श्रम का उपयोग भी आज हमारी दृष्टि में बदल गया है। इसीलिए मनुष्य बँट गया है। वही तो प्रान्त, देश और जातियों का पहरेदार बन गया है। सभी को बाँट दिया है। धर्म का तो उद्देश्य ही यह है कि वह उदार हो, परन्तु जातियों का स्वार्थ उसे मुर्दे के समान घसीटता है। जिस प्रकार भैंस का दूध निकालने के लिए चतुर ग्वाला उसके मरे हुए बच्चे के खोल में भुस भर देता है और दूध काढ़ते समय उस मृत-मूर्ति को भैंस की आँखों के

सामने दिखा कर दूध प्राप्त कर लेता है, तो उसी तरह तो यह आदमी भी अपने कर्म को मुर्दा समझ कर भी, समय-समय पर अपने जाति भाइयों को उसका रूप दिखाता है, संसार को दिखाता है।' उन्होंने कहा—'हिन्दू-धर्म की यही अवस्था है। उसका उपयोग जाति उत्थान के लिए बहुत कम हुआ है। धर्म के ठेकेदारों ने जाति-द्रोह पेट भरकर किया है।'

कमला बोली—'जिस भारतीय संस्कृति के समक्ष विश्व आज भी सिर झुकाता है, यह केवल खेद की ही बात रही कि भारत केवल उस सभ्यता का ढिंढोरा ही पीटता रहा। यहाँ का अर्थ-लोलुप समाज कभी भी उसका प्रतीक नहीं बना। जाति का शोषण और दमन करना ही हमारे देश के महा-प्रभुओं का एकमात्र लक्ष्य रहा। जिसके पास धन रहा, उसी की तिजौरी में धर्म का पोथा भी बन्द दिखायी दिया। वही समाज का निमाता बना। उसने कर्मकाण्डी पण्डितों की आत्मा को भी खरीदने का प्रयत्न किया।'

उसी बीच में सरला वहाँ से उठ चली थी। वह कमरे के द्वार पर जा खड़ी हुई। निश्चय ही वह उस व्यर्थ के तर्क से ऊब उठी थी। उसे लगा कि यह तो समय का अपव्यय है। जीजी और पिताजी सदा धर्म और जाति के पीछे ही पड़े रहना चाहते हैं। इसलिए जब वह अकारण ही दरवाजे के पास जाकर खड़ी हुई, तो उसने देखा कि दूर पर बाजार के किनारे एक नारी बैठी हुई सब्जी बेंच रही है। वह नारी सूरत उसे पहचानी-सी लगी जैसे वह लाहौर में उसके पड़ोस की रहने वाली थी। इतना देख, सरला की जिज्ञासा बलवती हुई। उसने चप्पल पहिन लिये, और नीचे की ओर चल पड़ी।

कमला ने आवाज दी—'अरी, सुनियो!'

सरला ने जीने से ही कह दिया—'मैं अभी आई-जीजी!' और वह क्षण भर में ही बाजार में पहुँच गयी। वह उस नारी से कुछ फासले पर जा खड़ी हुई। देखकर, वह सचमुच ही स्तमित हुई कि हाँ, यह वही सेठानी है। सेठ रामलाल की पत्नी! जिसके घर पर दो मोटरें थीं। घोड़ा-गाड़ी थी। नौकर थे। घर में लाखों रुपया था। और आज वही अपने सामने कुछ सब्जी रखे, तराजू में आलू तोलती हुई, खरीदार से कह रही थी—'मैंने सेर पर दो पैसे लिये हैं, एक कौडी अधिक नहीं!'

इतना देख-सुनकर जैसे स्तम्भित बनी अप्रत्याशित जीवन के उस क्रम को

पाकर सरला एकाएक अपने आप में खो गयी। उसकी आँखों में अँधेरा छा गया। वह क्षण भर के लिए ठगी-सी रह गयी। मन में तो उसके आया कि आगे जाये और उस सुपरिचित प्रौढ़ा के सामने जाकर कहे—'ताईजी, पाऊँ पड़ूँ !' और जानती थी वह कि सरल हृदय ताई अपने पूर्ण परिचित स्वभाव के अनुरूप, उसे देखते ही कहेगी, 'अरी, तू बेटी ! अच्छी तो है !' लेकिन इसके बाद सरला उस ताई से क्या कहेगी, कुछ कहेगी, तो जरूर उसके जख्मों पर नमक छिड़केगी। सूखे घाव को ठेस पहुँचायेगी। हाँ, वह कुछ न कह सकेगी। अब न कहेगी। न उसके समीप जायेगी। निदान, सरला उल्टे पैरों लौट पड़ी। वह कमरे में आ गयी। पिताजी तब अशफाक से किसी अन्य बात में लगे थे। कमला खाना बनाने की तैयारी करने लगी थी। देखते ही, वह बोली—'कहाँ गयी थी ? कहीं पास गयी थी ?'

सरला ने कहा—'हाँ, जीजी ! मैं पास ही गयी थी। मैं जिन्दगी में एक ऐसी बात देखने गयी, जो मुझे किताबों में शायद ही मिलती। शायद ही जीवन में ऐसे साहस की बात दिखायी पड़ती।' वह बोली—'जीजी, सेठ रामलाल की पत्नी सड़क पर बैठी हुई साग बेच रही है। मैंने यहीं से देखा, तो चली गई। पास तो मैं नहीं गयी, दूर से ही उस अभूतपूर्व साहस को देख आई। उस आदरणीय नारी को नमस्कार कर आई।'

कमला ने साँस भरकर कहा—'उनका तो सभी कुछ चला गया। उनकी तरह ऐसे जाने कितने हैं कि जिनका सर्वस्व ही स्वाहा हो गया।'

उसी प्रकार सरला ने भी साँस भरी—'उनके जीवन में तो निपट अन्धेरा छा गया ! पूर्ण रूप से नाश हो गया।'

दूर बैठे हुए अशफाक ने बात सुन ली थी। वहीं से वह बोला—'एक युवा लड़की को कल लोगों ने ताँगा चलाते भी देखा। समाज के किसी इन्सान का सिर शर्म से भी झुका या नहीं, इतना मैं नहीं जानता।'

पण्डित ज्ञाननाथ बोले—'भाई शर्म की क्या बात ! समय सब कुछ कराता है। जिन लोगों पर मुसीबत आई है, रोटियों का सवाल सामने आया है, वे क्या घर में बैठे रहेंगे। वे अवश्य ही कुछ न कुछ करेंगे।' उन्होंने कहा—'इस प्रकार की मुसीबत में कोई व्यक्ति ऊपर उठता है और पतन के अन्धेरे में गिर पड़ता है। इन्सानों का गिरना-उठना इसी प्रकार चलता है। तुम

जो-कुछ आज देखते हो, ऐसे पहिले भी हुआ है। इस धरती पर होता रहता है। घर उजड़ते हैं, आदमी मरते हैं।'

अशफाक ने कहा—इन्सानों की इतनी बड़ी तादाद जो एक ओर से दूसरी ओर आई गयी है, घर छोड़ने पर मजबूर हुई है, क्या इसका कोई बड़ा असर नहीं पड़ेगा।'

पण्डितजी ने कहा—'क्यों नहीं पड़ेगा। दोनों ओर के लोग परेशान बनेंगे। जिन्हें आज देख करके सन्तोष है, उन्हीं को कल पश्चात्ताप की आग में भी जलना पड़ेगा। अधिकार प्राप्ति के लिये इन्सान इसी प्रकार अन्धा बना है, मरा है और लुटा है। लुटेरा और खूनी भी बना है।'

अशफाक ने कहा—'पण्डित जी, यहीं पर आदमी अन्धा है, जानवर है।'

ज्ञाननाथजी जैसे निर्दय स्थिति में पहुँच रहे थे, वह बोले—'भाई, यह वर्ग-युद्ध और जाति-युद्ध धर्म-युद्ध नहीं, अर्थ-युद्ध है। इसका जन्म ही आर्थिक विकास की समस्याओं पर हुआ है। एक जाति जब दूसरी जाति को दास बनाती है, तो अवसर पाकर दूसरी जाति भी उसी कर्म का सम्पादन करती है। प्रतिशोध लेती है। आज के कत्लेआम का भी यही अर्थ है।'

अशफाक ने कहा—'इतना मानता हूँ।'

'और तुम यह भी देखोगे कि आने वाले समय में दोनों ओर इसका जल्दी ही अच्छा परिणाम भी घटित नहीं होगा। जिन लोगों ने एक भली जाति को आक्रान्त बना दिया, उसका दुष्परिणाम निकट भविष्य में ही घटित होगा। जिन गुण्डों ने एक जाति पर छुरे चलाये, उनकी बहू बेटियाँ लूटीं, वे लोग अपने जाति भाइयों के साथ भी वैसा व्यवहार न करेंगे, ऐसा मैं विश्वास नहीं करता, वे अवश्य करेंगे।'

'तो लोग फिर लुटेंगे। भ्रष्ट होंगे। दूसरी जाति में जायेंगे?'

'क्यों नहीं, जरूर जायेंगे!' पण्डित जी ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'यहाँ के हिन्दू अभी से लुटने लगे हैं। मैंने देखे हैं। अपने जाति भाइयों द्वारा ही कत्ल किये जा रहे हैं।'

अशफाक बोला—'तो कम्युनिज्म फैलेगा। वह इस देश में आयेगा।'

पण्डित जी ने निरुद्देश्य भाव से अन्तरिक्ष की ओर देखते हुए कहा—'ऐसा मैं नहीं मानता। कभी नहीं देखता।'

अशफाक ने कहा—'पण्डितजी, मैं इसी उद्देश्य पूर्ति के लिए हिन्दुस्तान में रहने की बात सोचता हूँ। अम्मी से इजाजत ले आया हूँ। मैं कल ही दिल्ली से बाहर जा रहा हूँ। शायद कलकत्ता पहुँच रहा हूँ। वहाँ से जहाज द्वारा बाहर। शायद रूस!'

गहरी दृष्टि से पण्डित ज्ञाननाथ ने अशफाक की ओर देखा। इतना तो वह पहिले से जानते थे कि यह युवक रहस्यपूर्ण है। कुछ स्पष्ट है, कुछ गुप्त है। परन्तु यह अशफाक अब इतना बड़ा विचार लिये चल रहा है, बाहर जा रहा है,—रूस सरीखे महान देश की यात्रा करने की बात सोचता है—तो उन्होंने जैसे उसे नये सिरे से समझना चाहा। यह तो स्पष्ट था कि वह अब युवक नहीं है। उनकी नसों में जवानी का खून नहीं रहा। वह पहिला पौरुष भी नहीं। किन्तु जितना भी अपने तईं और देश के प्रति चिन्तन का प्रश्न था, कदाचित वह किसी युवक से कम नहीं कहा जा सकता। इसीसे, उन्होंने अशफाक की ओर देखते हुए कहा—'भाई, रूस जाने की बात अच्छी लगती है। कहीं भी जाकर तुम अनुभव प्राप्त कर सकते हो। परन्तु जहाँ तक देश-सेवा का प्रश्न है, वह यहीं रहकर पूरा होगा। देश की समस्या को तुम दूर से देख कर दूर नहीं कर सकते। इस समय देश को सहायकों की आवश्यकता है।'

अशफाक ने कहा—'पण्डितजी, मैंने यही निश्चय किया है। एक बार मुझे बाहर भी जाना है।'

पण्डितजी ने उत्साहित होकर कहा—'हाँ, हाँ, विचार अच्छा है।'

अशफाक उठा। बोला—'मैं कल भी आऊँगा। जाने से पहिले आपसे मिलूँगा।'

पण्डित जी ने उसकी ओर देखा और मुसकरा दिये।

अशफाक चला गया। सरला ने पास आकर कहा—'पिताजी, स्नान कर लो। आज नगर में भी चलो। जीजी का कहना है कि हमें यह भी देखना है कि यहाँ पर कौन अपना आया है और कौन पराया।'

पण्डित जी ने कहा—'हाँ, हाँ, बेटी! मुझे यह काम पहिले करना है। आगे का लक्ष्य भी बनाना है। और मैंने आज अशफाक से मालूम कर लिया है कि इस मकान का हमें पन्द्रह रुपया किराया देना होगा। हमारा महीना

कल से ही चला है। मकानदार का पता भी मालूम कर लिया है। वह मुझे जानते हैं, यह भी अशफाक मियाँ ने मुझे बताया।

सरला ने अपनी जीजी की ओर देखकर कहा—'यह सब तो है, परन्तु हमारा भविष्य तो अन्धेरे में पड़ा है।'

पण्डित जी उठते हुए बोले—'उस अन्धेरे में प्रकाश लाना भी, मैंने ईश्वर के भरोसे छोड़ दिया है।'

सरला ने यह बात सुनी और जैसे कड़ुवा घूँट सा भर, बरबस ही अपना मुँह बाहर दरवाजे की ओर उठा दिया।

: १६ :

अब यह केवल अस्तित्वहीन विषय रह गया था कि कमला सरीखी भावनामयी युवा लड़की ने एक साथी की कल्पना की और फिर परिस्थिति के झंझावात में पड़ते ही भुला दिया। पण्डित ज्ञाननाथ और सरला के समक्ष अभी रमाकान्त का प्रश्न था। किन्तु उन दोनों ने अपना एक यह विचार भी बना लिया कि कमला के सामने उसका उल्लेख न किया जाय। फलस्वरूप, वह परिवार इस ओर से मौन और उदासीन बन गया था। लेकिन जब अशफाक उनके घर से गया, पण्डितजी स्नान करने चले, तो अकस्मात ही, हृदय के जाने किस कोने से निकल कर दबा हुआ प्रश्न कमला के सामने आ उपस्थित हुआ कि अब इस जीवन का क्या होगा? किस प्रकार बिताना पड़ेगा!

अवसर की बात कि कमला अनायास ही दुरूह और कठोर बन गयी। उसे बरबस ही, अपने आस-पास का वातावरण नितान्त कुटिल और अस्वाभाविक लगा। उसने समझा कि आज का मानव भ्रष्ट है, कुत्सित है। सामाजिक परम्पराएँ नष्ट हो गयी हैं। अपना कोई नहीं है। इसलिए साँस रुक रही है। प्राणों का समूह बरबस ही, साथ छोड़ देना चाहता है!

उसी समय सरला ने टंकोर कर कहा—'जीजी, अब क्या सोचा है? पिताजी तो मौन हैं। अपने तईं अब तुम्हें ही सोचना है।'

सरला की बात सुनी, तो जैसे कमला के मन ने बरबस ही झटका-सा खाया। मानो सरला ने उसके मन की स्थिति को समझ लिया। उसने पहचान लिया कि उसकी जीजी के मन में क्या है। अतएव, उस समय कमला को अपने ऊपर ही खिजलाहट आई। जैसे वह अपनी आँखों में ही दोषी बन गयी। इसलिए वह एकाएक सरला से कुछ भी न कह सकी।

किन्तु सरला ने फिर कहा—'जीजी, स्वार्थों के इस समूह में हम सरीखों का जीवन कठिन है। दिखता है, पिताजी तो वीतरागी बन चले हैं। यह स्वाभाविक भी है उनके साथ इस बीच में जो कुछ हुआ! मुझे लगता है कि पिता जी के मानस की स्थिति भी बदल गयी है।'

आश्चर्य कि इतना सुनकर भी कमला मौन थी। वह अपने अन्तःप्रदेश की गहराई में खो गयी थी।

और सरला अपनी बात कहती गयी। वह जैसे अभी तक वास्तविक बात की भूमिका में ही उलझी रही। तभी विषय के निकट आकर बोली—'रमा बाबू से एक बार मिल लेना जरूरी है। पिताजी न मिलें, तो क्या तुम्हारा मिलना जरूरी नहीं है!'

कमला ने यह बात सुनी, तो तपाक से बोली—'तुझे यही सूझती है! देखती है, इन्सान की जिन्दगी उजड़ रही है। जिन्दगी भार बन रही है। इन प्राणों के साँस भी 'बोझ हो गये हैं। लोगों के सिर कट रहे हैं, घर छूट रहे हैं, और तू जीजी के विवाह की बात सोचती है। बड़ी स्वार्थन है। तेरी जीजी सरीखी हजारों बालायें आज या तो लुट गयी हैं, या स्वयं ही जिन्दगी से परे हो गयी हैं।'

एक क्षण सरला ने अपनी जीजी की ओर देखा। उसकी कातर मुद्रा के भारीपन को समझना चाहा। मानो उसने कमला के मन का मर्म भी पाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे उन आँखों में कुछ भी नहीं दीख पड़ा। जैसे उन आँखों का घर अकेला था, सूना था। किन्तु उसे बात कहनी थी, वह उसके मुँह में रुकी हुई थी, इसी लिए, वह तुरन्त फिर बोली—'जीजी, इतना सब देखकर भी, मैं समझती हूँ, इस दुनिया का व्यापार तो चलेगा। जो रहे हैं चल रहे हैं, उनका चलना क्या रुकेगा! तुम्हारे मन में जो आँधी है, उसका वेग नहीं थमेगा। वह तो तुम्हें जरूर उड़ायेगा। कहीं-से-कहीं—'

कमला ने कहा—'सरला, तुझे यह बात शोभा नहीं देती। तू ऐसी बात अपने पास रखे, यह जरूरी नहीं। तू अपना काम देख! अपना पढ़ना देख! भाग्य जुदे-जुदे हैं। जो कुछ मुझे मिलना है, मिलेगा! भाग्य का अस्तित्व अपना काम जरूर करेगा!'

उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ राम-राम का जाप करते हुए कमरे में लौट आये। कमला ने सरला को इशारा किया कि पिताजी की धोती सुखा दे।

ज्ञाननाथ जी बोले—'बेटी, मैं अभी बाजार जाता हूँ। तू कहे, तो सरला को भी लिये जाता हूँ। जो आवश्यक वस्तुएँ चाहियें वे आ जायेंगी।'

कमला ने इसे स्वीकार कर लिया। उसने सरला को अपने बक्स की चाभी देदी और कहा—'कपड़ों के नीचे बटुआ रखा है, उसमें से कुछ रुपये ले ले। घी भी आना है। इस बाजार में अच्छा नहीं मिलता।'

यों, पिता और छोटी पुत्री बाजार चले। वह कमला से जल्दी लौट आने की बात कह गये। वह चले गये। कमला अकेली रह गयी। उस बड़े मकान में कई किरायेदार थे, स्त्रियाँ और बच्चे अधिक थे। कुछ बच्चे उस कमरे की ओर चक्कर लगाने लगे थे। दो-तीन स्त्रियों ने कमरे से बाहर सरला और कमला से दो-चार बातें भी कर ली थीं। किन्तु अभी तक कोई कमरे में नहीं आई थी। कदाचित इसका कारण यह था कि जब से वह उस मकान में आये, पण्डित ज्ञाननाथ अभी बाहर नहीं निकले थे। लेकिन दूसरे दिन जब पण्डित जी बाजार गये, तो तभी एक युवा नारी उस कमरे के द्वार पर आई। कमला ने देखते ही कहा—'आओ, बहिन!'

वह युवा नारी जो बहू थी, अन्दर आ गयी। बोली—'किसी बात की जरूरत हो, तो कहना। हमें अपना समझना।'

कमला ने इतना सुना, तो भावना में भरकर, उस सुन्दर नारी की ओर देखा। उसने मुसकरा दिया।

नारी ने पूछा—'तुम्हारे पति कहाँ हैं? साथ नहीं आये हैं।'

कमला ने अपने श्वेत दाँतों से हँस कर कहा—'अभी मेरा विवाह नहीं हुआ!'

'तो तुम अभी क्वारी हो? यह दूसरी बहिन हैं। तुमसे छोटी—'

'हाँ, उसका नाम सरला है, मेरा कमला। वह मुझसे छोटी है। दसवीं में पढ़ती है।'

बहू बोली—'मुझे बसन्ती कहते हैं। और तुम्हारी मा—'

कमला ने कहा—'इसी सप्ताह अमृतसर के शरणार्थी कैम्प में मा का शरीर छूटा है। छोटा भैया भी हमसे दूर चला गया है।'

'ओह, राम-राम!' बासन्ती ने एकाएक खिन्न बनकर कहा—'मुसीबत जब आती है, तो क्या कह कर आती है। तुम्हारे साथ बुरा हुआ!'

कमला ने कहा—'भाग्य की बात है, बहिन! किसी का भाग्य आदमियों ने फोड़ा, हमारा भगवान ने फोड़ दिया!'

उसी समय दो स्त्रियाँ और कुछ बच्चे भी वहाँ पर आये। वे सभी कमला को घेर कर बैठ गये।

एक स्त्री बोली—'बहिन, पंजाबी हिन्दू गोश्त खाते हैं। तुम भी...?'

कमला मुसकरा दी—'हम प्याज तक नहीं खाते!'

'ओह, तुम प्याज भी नहीं खातीं। कौन जाति हो तुम?'

कमला ने कहा—'ब्राह्मण।'

'और तुम तो पढ़ी-लिखी दीखती हो! अभी अकेली हो?'

पहिले से बैठी हुई बासन्ती ने कहा—'अभी ब्याह नहीं हुआ है।'

एक बोली—'हाँ, पंजाबी देर से अपनी लड़कियों के विवाह करते हैं।'

तीसरी ने कहा—'आजकल पढ़ी-लिखी लड़कियों के विवाह मा-बाप नहीं करते, वे खुद कर लेती हैं। लड़का वे ही पसन्द करती हैं।'

बासन्ती ने आँखों से हँस कर कहा—'भाभी जी, तो क्या यह बुरा है? आम-के-आम, गुठलियों के दाम।'

इस बात पर सभी हँस दीं। कमला भी मुसकरा दी।

लेकिन वह तीसरी नारी जो आयु में प्रौढ़ थी, कमला की ओर देखकर बोली—'देखो जी, पड़ोस में संकोच न करना। कहीं भी बैठना। कुछ भी कहना। हमें अपना मानना।'

बासन्ती ने बताया—'इसी सप्ताह इनकी मा मरीं, छोटा भाई भी!'

'राम-राम!' प्रौढ़ नारी ने कह—'इन बेचारे पंजाबियों के साथ तो भगवान ने भी अच्छा नहीं किया!'

बासन्ती ने कहा—'जिसका यह लोक बिगड़ता है। उसका परलोक भी बिगड़ जाता है।'

'ऐसा भी क्या, लोखों बेपरिवार हो गये। माताओं से बच्चे छूट गये। पत्नियों से पति! यहाँ बैठकर हमें क्या पता! बाहर निकलतीं, तो देखतीं कि कैसा कोहराम मचा है। पंजाब में तो खून का दरिया ही बह गया!'

बासन्ती ने कहा—'यहीं पर क्या कम हुआ! रात कहते थे वे, जिन स्त्रियों के लोग मुँह नहीं देख सकते थे, समाज के गुण्डों ने उन्हें पतित करने का प्रयत्न किया।' वह बोली—'मेरा तो दिल काँपता है, जब सुनती हूँ कि इन इन्सानों ने दया और धर्म को भी ताक पर उठा कर रख दिया। एक दो साल का लड़का जिन्दा ही, मकान के दरवाजे पर कीलों से गाड़ दिया गया। राम-राम! लोगों ने इन्सानियत का मुँह काला कर दिया।'

कमला ने कहा—'बहिन, जब आदमी पागल बनता है, तो ऐसा ही करता है। वह स्वयं मरता है, दूसरे को मारता है।'

'और मरना-मारना ही जैसे इस इन्सान का धन्धा रह गया है।' बासन्ती ने कहा।

कमला ने सीधे-स्वभाव कहा—'हाँ, इन्सान का यही धन्धा है। इन्सान भी एक जानवर है। खून करता है, दूसरे को भी ऐसा करने के लिऐ बाध्य करता है।'

लगता था कि बासन्ती कुछ थोड़ा पढ़ी थी। बोली—'बहिन, ऐसे तो यह इन्सान भगवान को भी धोखा देता है। अपने को भी धोखे में डालता है।'

कमला ने अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरकर कहा—'आज तक तो यही चला है। यह आदमी आगे किस परम्परा को स्वीकार करे, इसे भगवान जानता है।'

उन स्त्रियों के साथ में आये बच्चे कमरे के छज्जे में चले गये थे। और वह छज्जा बाज़ार की ओर था। उसी समय वह बच्चे दौड़े आये और चिल्ला दिये—'वह बूढ़ा आदमी मार दिया...उसका जवान बेटा!'

स्त्रियों में से एक ने चौंक कर कहा'—ऐं, मार दिया! बूढ़ा बाप और बेटा! रे, परमात्मा!

उसी समय एक बच्चा नीचे दौड़ गया।

तभी कमला से बासन्ती ने कहा—'नाश ही हो गया। नहीं सूझता कि क्या होगा! ऐसे क्या कोई जिन्दा रहेगा!'

उसी समय वह बच्चा वापिस आया। उसने बताया बूढ़ा बाप था और उसका जवान बेटा! उन दोनों के हाथ में जो थैले थे, उनमें आटा-दाल था।'

'हे राम! हे राम!' वह प्रौढ़ नारी एकाएक चीख पड़ी—'सचमुच! पाप फैल गया। अब यह इन्सान नहीं रहेगा। मर जायेगा। इसका नाश हो जायेगा।' उसने कहा—'जरूर बाल-बच्चों के लिये आटा-दाल लेने आये होंगे वे बाप-बेटे। घर पर और बीबी-बच्चे इन्तजार करेंगे। उन्हें क्या पता कि यहाँ—अरे, परमात्मा!'

उस समय कमला ने अनुभव किया कि उस नारी को अतिशय दुःख पहुँचा है। उसकी आत्मा में पीड़ा है। और वह पीड़ा तो वह भी अनुभव कर रही थी। उसका दुष्परिणाम भी समझती थी। लेकिन उसका उपाय क्या था! गन्दा दरिया ढाढें मार रहा था और वह इन्सानी समाज को अपने साथ बहाये लिये जा रहा था।

बासन्ती ने कहा—'यहाँ जब से दूसरी जगह के समचार आये हैं तभी से अधिक मारकाट और खूनखराबी शुरू हुई है। लोगों ने लूट भी आरम्भ कर दी है।'

कमला बोली—'यही होता है। स्वाभाविक है।'

'पर ऐसा क्यों करते हैं लोग! भागते क्यों हैं।' उनमें देर से मौन बैठी हुई स्त्री बोली—'अजीब बात है कि जाति के नेता गलत बात कहते हैं, तो लोग उसे भी मानते हैं। दूसरे का सिर काटने के लिये अपना भी कटाते हैं—हे राम! कैसी आफत आई है कि बाजार बन्द...घर से निकलना बन्द! आठ आने सेर दूध चार रुपये सेर मिलता है। वह भी पानी मिलता है।'

कमला ने इतकी बात सुनी, तो उसका भी हृदय क्षुभित हो गया। उसने अनुभव किया कि हाय! संकट का बादल सभी ओर छा गया है। उसने पूरे क्षितिज को ढँक लिया है। किन्तु कमला ने मुँह से कुछ नहीं कहा। उसके मन में इन्सानी समाज के प्रति जो रोष पैदा हुआ, उसे आँखों तक ही सीमित रखा। उनमें बैठी हुई बासन्ती ने कदाचित इसे अनुभव किया। इसी से उसने तुरन्त कहा—'जब आदमी का विवेक नष्ट होता है, तो यह भी

करता है। भेड़िया बन जाता है। अपने नेताओं की वाणी को जन साधारण सुनता है और मानता है। सदा से यही चलता आया है। धर्म और जाति के लिये ये हमारे भाई लुट-पिट कर आते हैं, श्रद्धा से इनके चरणों में सिर झुकाने को मन करता है।'

एक स्त्री ने कहा—तभी तो हमने रात के दो-दो बजे उठकर रोटियाँ बनायीं और हवाई जहाज से भेजीं। कपड़े दिये। पैसा दिया। उस पार वालों के लिये इस पार वालों ने भी कम त्याग नहीं किया।'

बासन्ती ने फिर जोर से कहा—'हाँ, हाँ, हमें वह सब करना चाहिये था। कोई एहसान नहीं किया।'

'लो जी सुनो इस बासन्ती की बात!' उस स्त्री ने सुनकर कहा—'एहसान की बात कौन कहता है। मैं तो यही कहती हूँ, उस पारवालों को जो कष्ट मिला, यहाँ वालों ने उसे कम अनुभव नहीं किया।'

बासन्ती बोली—'इतने बड़े बलिदान के समक्ष हमने कुछ भी नहीं किया! उस विपत्ति की कल्पना नहीं की।' उसने कहा—'जीजी, तुम्हारे देवर (बासन्ती के पति) कहते थे, कि उस पार बसे हुए इन्सानों का नाश हो गया। उन्हें इन्सान के हृदय की सुलगती हुई ज्वाला में अपना सभी-कुछ झोंक देना पड़ा। बच्चे जले, इन्सानों के समूह जले! इसी से आज सभी के हृदय अशान्त हैं। कठोर है। लोगों के दिलों में आग है। टीस है। हृदय में जख्म हैं। जानती हो न। किसी का बेटा मरा है, किसी का पति। इन्हीं कमला बहिन को देखो, मा और भाई से नाता टूट गया है। हरा-भरा घर होगा इनका, कि आज सराय में पड़े हुए मुसाफिर की तरह इनका जीवन दीखता है।'

यह सुनकर, वह नारी शान्त हुई और बोली—'इतना तो मुझे भी पता है। सच, मेरा मन भी चीखता है।'

'और तुम यह नहीं देखतीं कि जो महलों वाले थे, वे आज सड़क पर पड़े हैं। जिनके यहाँ दान के खाते चले थे, उन्हें आज रोटियों के लाले हैं।'

उस स्त्री ने साँस भरी—'भगवान की लीला है!'

बासन्ती ने फिर चिढ़ कर कहा—'भगवान की नहीं, इस आदमी की लीला है। आज तो आदमी ही भगवान बना है!'

उस प्रौढ़ स्त्री ने कहा—'जो कुछ हो, भगवान के काम में भला कौन टाँग फँसाता है। वह बड़ा है।'

बासन्ती हँस दी—'चाची, भगवान हमारी सब बातों में कहाँ आता है। वह तो इन्सान का काम देखता है और मुसकराता है।'

उस समय यह स्पष्ट दिखाता था कि कमला को उस कथा-वार्ता में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह मौन बैठी हुई थी। उन स्त्रियों में बासन्ती समझदार है, इतना वह समझ रही थी।

उसी समय स्त्रियाँ उठीं। प्रौढ़ स्त्री बोली—'तुम्हारे बाबूजी बाजार गये हैं। दूसरी बहिन है, छोटी ?'

बासन्ती ने कहा—'हाँ, उसका नाम सरला है। इनका कमला। सरला छोटी है।

प्रौढ़ स्त्री बोली—'वह छोटी भी लगती है।'

कमला ने बासन्ती से कहा—'चल दीं, बैठो और स्त्रियाँ चली गयीं !'

बासन्ती ने कहा—'मुझे भी अब भोजन बनाना है। दोपहर हो चला है। दो दिन में आज बाजार खुला है, तो जरा दिल में चैन आया है। करफ्यू क्या लगा, लोगों के पास खाने तक के लिए नहीं रहा। कुछ घरों में तो दो-दो दिन तक चूल्हा भी नहीं सुलग पाया।'

कमला ने कहा—'यही पीछे हुआ। लोगों को घर से निकलना भी मुश्किल हो गया। बाजार बन्द रहा।'

'तुम धन्य हो, बहिन ! आग में से निकल आई हो। जीवित हो।'

कमला ने कहा—'मौत आ जाती, तो सन्तोष होता !'

बासन्ती बोली—'मरना तो सरल बात थी, परन्तु बेइज्जती का होना, गुण्डों के हाथों में पड़ना, औरत की स्थिति में बड़ा ही कठोर था।'

कमला ने बासन्ती की ओर देखा। जैसे उसकी आँखों में झाँका। उसने कहा—'ऐसा भी होता, तो क्या रोका जा सकता था। अपना प्राण स्वयं नहीं मारा जाता।'

बासन्ती बोली—'मैंने तो सुना है कि उस पार बहुत सी स्त्रियों ने कुओं में कूद कर आत्मघात कर लिया।'

कमला बोली—'हाँ सैकड़ों स्त्रियों ने ऐसा किया।'

बासन्ती बोली—'तुमने राजपूतों की कहानी पढ़ी ? चित्तौर गढ़ की कहानी ?' उसने कहा—'चित्तौर के किले में जो पद्मनी ने अपने-आपको आग के समर्पित किया, तो उसके साथ सैकड़ों राजपूतानियों ने साथ दिया था। उस अग्निहोम की कहानी फिर जिन्दा हो गयी। भारत में स्त्रियों के त्याग की कहानी कुछ ढँक चली थी, वह फिर प्रकाश में आ गयी। मैं उस पार नहीं पैदा हुई, परन्तु स्त्री हूँ, तो इसलिए उन आत्म-बलिदान करने वाली बहिनों की याद में अपना सिर झुकाती हूँ। इस प्रकार मैं नारी जाति पर गर्व अनुभव करती हूँ।'

कमला उस समय गम्भीर थी। वह पैर के अँगूठे को कमरे के फर्श पर फिरा रही थी। उसकी दृष्टि बाहर की ओर थी। जब बासन्ती ने अपनी बात कही, तो वह सामने की ओर देखती हुई बोली—'बहिन, स्त्रियाँ सदा त्याग करती हैं। यह घर में तो त्याग करती ही आई हैं, परन्तु, अवसर आने पर बाहर भी करती हैं। आज उस पार जो कुछ हुआ, मुझे पता नहीं कि वहाँ की नारी के समान किसी पुरुष ने भी, इस प्रकार का त्याग कहीं अन्यत्र किया, या नहीं।'

बासन्ती ने कहा—'मैंने सुना है कि कुछ पुरुष विधर्मी बने हैं। दूसरे मजहब में चले गये हैं। मौत के भय से वे दूसरा धर्म स्वीकार करने में समर्थ हुए हैं।'

कमला ने कहा—'हाँ, यह सत्य है। लेकिन ऐसे लोगों की संख्या नगण्य है, आटे में नमक के समान है!'

बासन्ती उठी। उसने अँगड़ाई ली। चलने को उद्यत हुई।

कमला ने पूछा—'तो तुम नीचे रहती हो, उस ओर ?'

बासन्ती ने कहा—'हाँ, बहिन! मैं नीचे रहती हूँ। पिछले दिनों ही इस मकान में आई हूँ। आमदनी कम है, इसलिए ऊपर का मकान नहीं लिया गया है। वैसे नीचे अन्धेरा है। दुर्गन्धि भी है।'

कमला ने कहा—'बहिन, पैसे पर ही इस आदमी का कारवाँ चलता है। क्या करें, पैसा भी अपने रास्ते से आता है। वैसे क्या हर कोई पैसा पाता है ?'

बासन्ती ने कहा—'बहिन, एक दफ्तर में नौकरी करते हैं। बी० ए०

तक पढ़े हैं परन्तु जो कुछ महीने में लाते हैं, उसका एक हिस्सा मा-बाप के पास भेज देते हैं।'

हर्ष भाव में कमला ने कहा—'हाँ, हाँ, वह भी बड़ा कर्तव्य है। मा-बाप की सेवा करना पुण्य का काम है।'

बासन्ती बोली—'मैं भी अभी तक वहाँ थी। ब्याह के बाद पहिली बार शहर आई हूँ। विवशता में आई हूँ। कहते थे, अब बाजार में रोटी अच्छी नहीं मिलती। स्वास्थ्यप्रद नहीं। इसीलिए सास ने मुझे यहाँ आने के लिए बाध्य किया। स्वसुर की भी यही इच्छा थी।'

'कोई बच्चा है?' कमला ने प्रश्न किया।

बासन्ती ने कहा—अभी नहीं। अभी ऐसी इच्छा भी नहीं।'

कमला हँसी—'स्त्री की ऐसी इच्छा होना स्वाभाविक है। सभी की है।' उसने कहा—'पर अभी तुम्हारे लिए क्या है! आयु ही क्या है!'

बासन्ती ने कहा—'विवाह हुए अभी चार वर्ष का समय बीता है।'

कमला ने कहा—'पर सास तो बच्चे की तलाश में होगी। चिन्तित भी होगी।'

बासन्ती बोली—'उनकी बात न पूछो। उनकी यही रट है। कभी-कभी तो मुझ पर सन्देह भी होता है। उन्हें मुझमें बांझपन लगता है।'

कमला ने इतना सुना और खिलखिला कर हँस दिया। उसी समय सरला के साथ पण्डित ज्ञाननाथ ने कमरे में प्रवेश किया। वे दूर से आये थे, इसीलिए दोनों के मुँह पर पसीना था। थकान दी। कमला ने पंखा लेकर पिता को हवा देना शुरू कर दिया।

ज्ञाननाथजी बोले—'शहर की बुरी हालत है।'

कमला ने कहा—'मुझे इसका पता था। आप जा रहे थे, तो मैंने रोकना चाहा था।'

उसी समय सरला ने कमला के निकट आकर कहा—'जीजी, आज रमाकान्त भी दीखे। निश्चय ही, उन्होंने हमें भी देखा। परन्तु अनदेखी अवस्था में निकट से निकल गये।' वह बोली—'उनके मन की क्या स्थिति थी, यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु वे अच्छी अवस्था में स्वयं भी नहीं थे। कुरता मैला और फटा था। पैर में जो चप्पल थे वे भी धूलभरे और टूटे थे।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'निश्चय ही रमाकान्त के पिता लाहौर से कुछ ला नहीं सके। यह मेरा पहिले भी मत था कि उनके पास बैंक में रुपया नहीं। पुराने विचारों के व्यक्ति अपना रुपया बैंक में न रख कर घर में रखते हैं। किसी बड़े व्यापारी के यहाँ सूद पर चढ़ाते, सोने चाँदी के जेवरों में लगाते हैं। वैसे भी रुपया बाँट कर सूद प्राप्त करते हैं। ऐसे रुपये विपरीत या विद्रोही समय में मर जाते हैं।'

सरला ने कहा—'कैम्प में तो सुना था कि इनके पास रुपया है, बैंक में जमा है।'

ज्ञाननाथ जी सूखे भाव में मुसकरा दिये। पैसे के विषय में लोग दूसरों के लिए प्रायः गलत धारणा बना लेते हैं, कहावत भी तो है, अपनी अक्ल और दूसरों का पैसा लोग बड़ा ही समझते हैं।'

सरला ने आतुर स्वर में कहा—'पिताजी, यदि रमाबाबू के घर में पैसा नहीं रहा, तो क्या उससे हमारा कोई गहरा सम्बन्ध था ? हमारा रमाबाबू से सम्बन्ध था।'

पुत्री से इतना सुनकर, पण्डित जी फिर विरक्त भाव से मुसकरा दिये। 'नहीं, बेटी ! हमारा रमाबाबू के पैसे से भी सम्बन्ध था। तुम्हारी बहिन ने भी यही देखा था। मैंने भी उसी को लक्ष किया था। उसी पैसे ने तो रमाबाबू को योग्य और भला नागरिक बनाया था। उन्हें सुन्दर और सुशिक्षित सिद्ध किया था।'

सरला ने पिताजी से इतनी बात सुनी तो उसने अचरज के साथ उनकी ओर देखा। वे फिर बोले—'बेटी, यदि रमाबाबू के घर में पैसा न होता तो न तुम्हारी बहिन देखती, न मैं देखता। फिर रमाकान्त का जीवन अन्धेरे में पड़ा होता। तुम सोचती हो, मजदूरों में प्रतिभा नहीं होती। उनके बच्चों में सुन्दरता नहीं होती। उनके पास प्रकृतिदत्त सभी कुछ होता है। कुछ अधिक भी होता है। परन्तु उनके पास पैसा नहीं होता, तो इसलिए उनके पास कुछ भी नहीं होता !'

उस समय दोनों पुत्रियाँ मौन थीं। कमला के समान, सरला भी अपने अन्तर्लोक के किसी अन्य कक्ष में समाविष्ट हो गयी थी।

: १८ :

उस पार उठे भूचाल में रमाकान्त का परिवार पूर्ण रूप से ध्वस्त हो चुका था। कदाचित् यही कारण था कि शरणार्थी शिविर में जब उसने पण्डित ज्ञाननाथ के परिवार को देखा, तो वह जान-बूझ कर उन लोगों से इसलिए दूर रहा कि अब वह किसी भी भिखारी से ऊँची स्थिति का व्यक्ति नहीं रह गया था। आक्रमणकारी समूह ने एकाएक ही हमला किया इसलिये उस परिवार को सर्व प्रथम अपने प्राणों की रक्षा करनी पड़ी इसलिए पहिने हुए वस्त्रों को छोड़ और कुछ उस परिवार के व्यक्तियों के पास नहीं रह गया था। और रमाकान्त पुरुष था, पुरुषत्व का भाव उसके मानस में डोल रहा था। जब पण्डित ज्ञाननाथ भी उस शिविर में पहुँचे, तो रमाकान्त के पिता ने कहा, पिछले सम्बन्ध अब नहीं रहे। हम पण्डितजी से सम्बन्ध रखने योग्य भी नहीं रहे। वस्तुस्थिति के अनुरूप रमाकान्त ने भी इस बात को स्वीकार किया। फलस्वरूप, उन लोगों ने जल्दी ही वह शिविर भी छोड़ दिया।

किन्तु उस दिल्ली में कि जहाँ वे सब सुरक्षित थे, विभाजित की स्थिति में उस नगर को अपना समझते थे, जब बाजार में रमाकान्त ने सरला और उसके पिता को देखा, तो उनसे रास्ता बचाकर भी, वह अपने मन के उस मोह को नहीं त्याग सका कि कमला से मिले और उसके पिता के पास जाये। इसीलिए उसने रास्ता बचाकर भी, उनका पीछा किया और उनका मकान तथा मोहल्ला देख लिया। दिल्ली के उस विशाल क्षेत्र में रमाकान्त इस बात के लिए कटिबद्ध था कि वह माता-पिता के लिए रोटियाँ उपार्जित करेगा। जो भी काम मिले, वह कर लेगा। इसलिए उसने दिल्ली आते ही, काम की खोज की। भाग्य से एक दफ्तर में उसे क्लर्की का काम मिल गया! वह मिलने वाला पैसा इतना तो था नहीं कि सुगमता से काम चलता। बस, उससे गुजारा हो सकता था। किन्तु रमाकान्त ने उसी पर सन्तोष किया।

परन्तु अवस्था यह थी कि रमाकान्त अपने-आप में विषम था। वह क्लर्की करके अपनी स्थिति से समझौता कर सकता था, उस पर टिक नहीं सकता था। उसके अपने कुछ विचार थे। अपने मानस को उसने जिस प्रकार का अभ्यासी बनाया, दृष्टि को जितना विस्तृत किया, उस सबका आखिर यह

तो लक्ष नहीं था कि रमाकान्त कुछ रोटियाँ प्राप्त करने के लिए अपनी वास्तविकता को भुला दे। यद्यपि, उस समय उसने ही अनुभव किया कि यदि आत्म-सम्मान के साथ आदमी रोटियाँ भी उपार्जित करले, तो कम सफलता नहीं,—जीवन का यह भी कठोर व्यापार था! इसलिये उस दुरूहता को रमाकान्त ने स्वयं अपने जीवन पर उतार कर देखा, तो वह अनुभव कर सका कि हाँ, मैंने अब तक जीवन नहीं देखा...जीवन का हास्य पाया, रोदन और पीड़ाओं का समूह नहीं। किन्तु अपने चारों ओर घूमती हुई इस विषमता तथा वैषम्यता के साथ, वह भावुक और विचारक रमाकान्त जिन दुरुहताओं में से निकल कर उस अवस्था में आ पड़ा था, तो सोचा उसने, हाय! इतनी विवशता और असहनीयता को प्राप्त हो गया, यह निरपराधी जन-समाज! उसने अनुभव किया कि हाँ, यह तो कुछ शक्तियों का खेल था। कुछ व्यक्तियों ने अपनी नेतागिरी चलाने के लिए वह दुरुह पासा फेंका। और उस जाल में कितने आदमी फँस गये, कितने लाखों परिवार नष्ट हो गये, उस करुण-दृश्य को देख, उसका मन पिघलता जा रहा था। उस आग में जला जा रहा था। अतएव, उसे चैन नहीं था। उसकी आत्मा में रोष था। स्वभाव से रमाकान्त बोलता कम था। उसके मानस में जितनी पीड़ा थी, उसका वर्णन भी वह किसी से नहीं कर सकता था। कदाचित यही कारण था कि रमाकान्त लाहौर में अपने मित्र अधिक नहीं रखता था और न इस दिल्ली के समाज में अपने छूटे हुए परिचितों में से ही किसी को पा सका था। यद्यपि, उसकी दृष्टि में कमला थी, वह उसके अधिक समीप थी, वह उसकी भावी पत्नी थी, किन्तु अपने मन की उलझन तथा पराजय को लिए हुए वह उसके पास तक भी नहीं जा सका। वह ऐसा साहस नहीं कर सका। और इसका कारण क्या था? क्या रमाकान्त अपने को कमला से हीन मानता था? शायद ऐसा नहीं। बात यह थी कि जब वह लाहौर से चला, तो सभी शरणार्थी शिविर तथा दिल्ली में पीछे से बने हुए सम्बन्धियों की उस मानसिक अधोगति के रूप को देखकर वह स्वतः ही डर गया। उसने देखा कि उस भाग-दौड़ में अपनों ने ही अपनों को लूटा। पराजित किया। जब दिल्ली में वे सब एक दूसरे के समीप रहे, तो तब भी, उनके रुपयों का बिभेद और अधिक आगे बढ़ता गया। इन्सान के स्वार्थ की उस स्थिति को देख कर

सचमुच ही, रमाकान्त क्लेश तथा पीड़ा से भरा था। उसका अन्तर्मन व्याकुल था। उसमें शोख था। जीवन का समूचा उद्वेग फूट आ गया था। रमाकान्त शायद ही कभी रोया हो, बचपन में रोया हो। परन्तु जीवन में प्रथम बार पाई हुई समाज की दरिद्रता को देख, वह अनेक बार रात के सन्नाटे में रोया। क्योंकि उसने समाज की कुमारियों को पतित होते हुए देखा, माताओं को रुदन करते हुए पाया, बलिष्ट और समर्थ को लोगों का धन और सम्मान लूटते हुए देखा। यद्यपि, इस प्रकार की बातें रमाकान्त ने पहिले भी देखी थीं, परन्तु तब उसकी आँखें ऊँचाई पर थीं। वह ऊपर की ओर देखता था। समाज के विशिष्ट व्यक्तियों में उसका उठना-बैठना था। उसके घर का व्यवहार भी ऊँचे व्यक्तियों से था। अतएव, वह प्रकाश में रहकर भी अन्धेरे में था। मानों जन-समाज से दूर! समाज के पतन की ओर से आँख मूँदे हुए!

लेकिन उस दिन, जब रमाकान्त इच्छा करके पण्डित ज्ञाननाथ का मकान देख आया, तो वह अपने मन की इच्छा को लिए सन्ध्या समय फिर उस मोहल्ले की ओर गया। उसने उस परिवार से मिलना और बोलना पसन्द किया। किन्तु उसकी यह भी कैसी विवशता थी कि वह यदि ज्ञाननाथ जी के घर जायगा, उनसे मिलेगा, तो निश्चय ही वह इसे अच्छा नहीं समझेंगे। सम्भव है, वह उसके मुँह पर ही, साफ शब्दों में कह देंगे, भाई, अब हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध न हो सकेगा। अब यह उचित भी न लगेगा।' और पुरुष के रूप में रमाकांत इतनी-सी बात को सुनकर कितना निरीह और ओछा बन जायगा, इसकी कल्पना मात्र से उसका हृदय काँप गया। वह रात का समय था। रमाकांत के माता-पिता सो गये थे। वह बिस्तर पर पड़ा हुआ, जीवन के अध्ययन में लीन बना था। उसके मस्तिष्क में तूफान उठा था। उसी अवस्था में उसने फिर कमला को याद किया। उसने सूचना के रूप में एक पत्र लिखा—

कमला देवी,

निश्चय ही, तुमने सोचा होगा कि मैं पीछे छूटे हुए शरणार्थी शिविर में तुमसे नहीं मिला। परन्तु इच्छा करके भी तुम्हारे पास नहीं गया। जिसका कारण मेरी आत्म-हीनता थी। अब मेरा परिवार दरिद्र है,—पैसे-पैसे का मोहताज है। मैं फिलहाल विवाह की बात तो सोच नहीं पाता, परन्तु इतना

समझता हूँ कि जीवन के सौभाग्यशाली पर्व में हम तुम मिले, एक दूसरे को समझने में समर्थ हुए, तो उसी स्मृति को लिए, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तुम्हें सदा याद रखूँगा। तुम किसी अच्छे परिवार में जाओ, भगवान से इसकी कामना करूँगा !

तुम्हारा, रमाकांत

पत्र लिख लिया। देर हुई कि रमाकांत ने उसे मोड़कर तकिये के सहारे भी रख लिया। किन्तु जब वह चिराग बुझाकर अपने बिस्तर पर पड़ गया, तो उसके मन की गति तब भी तीव्र थी। उसमें अशांति थी। वह बार-बार कह रहा था, कि यह जीवन अच्छा नहीं..... इस जीवन की पशुता का कहीं अन्त नहीं ! इतनी बात को वह अपने मन में क्यों रखे हुए था, कदाचित् इसका कारण यह था कि रमाकांत ने उस विभाजन के और रक्तपात के अन्तराल में पहुँच कर एक बार ही यह देखा कि स्वेच्छा और दम्भ सर्वत्र करम करते हैं। यही दो अपराध आदमी और औरत से बने समाज को नग्न करते हैं। क्योंकि मनुष्य की दुरूहता कितनी गहरी है, कितनी घिनौनी है, उसे वह अब देखने को मिली। सामाजिक भ्रष्टता भी तभी दिखायी दी। रमाकांत दिल्ली में जिस स्थान पर आकर बसा, वहाँ दूसरे परिवार भी थे। लेकिन उनके नित-नये झगड़े, एक-दूसरे को ठगना, राग-द्वेष और कलह के बीज आयेदिन फलते-फूलते थे। सबसे अधिक जो विषमता रमाकांत को खटकती, वह यह थी कि वहाँ पर बसे हुए सभी परिवार सामाजिक और आत्मिक रीति से भिन्न बने थे। उनमें विभेद था कि दूसरे को नफरत की भावना से देखने का भाव उग्रतर बना था। अतएव सोचता रमाकान्त, ऐसे किस प्रकार जीवन चलेगा। आदमी कब तक लगा जाता रहेगा। कब तक यह इन्सान झगड़ा करता रहेगा। क्या यही आदमी का पेशा है। इसी पर समाज का जीवन निर्भर है ? इशारे की जो दबी हुई दुर्गन्धि थी, उसे सब ओर सड़ती हुई पाकर जैसे रमाकांत का स्वाँस घुट जाता। उसे लगता कि जैसे अब पैसा ही सर्वोपरि है, पैसा पाकर ही यह इन्सान अपने को विभिन्न खानों में विभक्त करता है। वह सोचता, जब व्यक्ति स्वयं प्रभु बनना चाहता है, अपने स्वार्थ को प्राथमिकता देता है, तो फिर समाज का हितवाद क्या ! उसका अर्थ क्या ! न, यह सब पाखण्ड है ! पैसेवाले

आज भी क्रूर हैं ! उस पार के धनिक यहाँ भी सम्पन्न हैं, सुखी हैं। उनका यहाँ भी गिरोह स्थापित है। वह गिरोह यहाँ के पैसेवालों से मिल चुका है, समझौता करने में समर्थ बना है। दूसरी और तीसरी श्रेणी के व्यक्तियों को यहाँ भी ठौर नहीं। जाति और धर्म के नाम पर जिनका बलिदान हुआ, वह राख के ढेर में दब गया। उस समाज को जैसे आज भी कूड़े का ढेर बना दिया गया। यहाँ पर सभी सड़े हुए स्थानों पर आ बसे हैं। जीवन-निर्वाह की समस्या से घिरे हैं। तो, सोचता रमाकान्त, ओह ! यह तो सीमाहीन विभिन्नता है। मानो देश में सर्वत्र लूट है ! डाकुओं का गिरोह प्रत्येक स्थान पर स्थापित है। भला यह कैसी अजीब बात थी कि जो व्यापारी थे, वे उसी प्रकार अपने-अपने व्यापार में आ लगे थे। मानो वे एक जगह से उठकर दूसरी जगह आ बैठे थे। वेश्यायें भी अपने स्थान से दूसरे स्थान पर आ गयी थीं। यों समाज की गन्दगी को और अधिक सड़ाने वाले चकले भी परिवर्तित हो गये थे। यों, सभी विभाजित थे। डाक्टर, वकील, पुलिस और फौज के सिपाही यहाँ तक कि कारखाने का छोटा कारीगर भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच गया था। मानो वे सभी उस विभाजन अभ्यस्त थे। वे सभी झगड़े स्वभावगत थे। गुण्डे गुण्डागीरी कर रहे थे। इस प्रकार, उस चालित-यन्त्र के समान चलता हुआ वह मानव-समाज जैसे तनिक भी दुःखी नहीं था। वह पहिले के समान अब भी शरण के नशे में चूर था। अपितु, वह समाज पहिले से अधिक खर्चीला और इच्छाओं का दास बन गया था। नाते-रिश्ते पीछे छूटे, तो इन्सान रूढ़ बना। वह शृंखला-बद्ध परम्पराओं को तोड़ कर जैसे अपनी सीमा को लाँघ गया।

रमाकान्त के मन में था कि वह समाज के लिए काम करे। देश के एक-एक व्यक्ति को सुनाये कि तुम इन्सान हो, हैवान बनने के लिए इस धरती पर नहीं आये हो ! जिस प्रकार आज तुम्हारा पतन हुआ, यदि धरती चाहे, तो तुम सबको एक ही क्षण में उदरस्थ कर ले। तुम आज भी शक्ति से हीन हो। तुम अपना गलत अंदाज़ा लगा चुके हो। पैसे को भी गलत सिद्ध कर रहे हो। जिस भोग के दरिया में तुम डूब जाना चाहते हो, इसमें पहिले ही से डूब चुके हैं। इस दरिया के बड़े-बड़े मगर मुँह फाड़े पड़े हुए हैं। वे इन्सान को देखते हैं और एक ही क्षण में उदर के अन्दर उतार लेते हैं ! भला

तुम्हारी शक्ति क्या...तुम्हारा दम्भ क्या ? तुम्हारी इस अर्थ लोलुपता का अर्थ क्या ..?

कमला को वह पत्र लिखने के बाद भी, रमाकांत देर तक जागता रहा। उसके हृदय का चालित यन्त्र चलता रहा। और शनैः शनैः वह ऐसी स्थिति में पहुँच गया कि जहाँ उसके मानस का उद्वेग आँखों में तैर आया। वह बार-बार अपने मुँह का थूक सटकने लगा। रमाकांत इच्छा करने लगा कि क्या ही अच्छा हो कि वह अभी कमला के पास जाये, उसको सम्बोधित करे, 'ऐ कमला देवी ! मेरी बात का कोई और अर्थ न लगाना। मैं दुःखी हूँ। समाज की हीनता को देखकर स्वयं भी हीन बन गया हूँ। बताओ, ऐसी अवस्था में मैं क्या करूँ ! कहाँ जाऊँ ! किससे कहूँ ! देखता हूँ कोई हृदय नहीं रखता ! सभी के पास स्वार्थ है ! इस विपत्ति में भी कोई अपना नहीं बनता।"

उसी समय, मा की आँख खुल गयीं। उसने रमाकांत को करवटें लेते देखा, तो टंकोरा—'अरे, अभी सो नहीं पाया, बेटा !'

एकाएक सुनकर, रमाकान्त ने कहा—'आज नींद नहीं आई, मा !'

'अब सोजा ! सिर में दर्द होगा ! तुझे सुबह काम पर जाना होगा।'

सुनकर, रमाकान्त मौन रह गया। उसी समय मा ने साँस ली और कहा—'आज ऐसी विपत्ति आई कि तुझे भी दूसरे के यहाँ जाकर काम में लगना पड़ा।'

रमाकान्त ने कहा—'कुछ-न-कुछ सभी को करना पड़ता है, मा !'

मा ने कहा—'जो आरम्भ से करते हैं, वे आदी होते हैं। लेकिन जिन्हें एकाएक ही करना पड़ता है, उनके मन का सन्तोष उन्हें क्या प्राप्त होता है। बेटा, जब किसी व्यापारी का दिवाला निकलता है, तो परवस पायी हुई उस गरीबी से क्या उसे सुख मिलता है !'

रमाकान्त बोला—'मा, जैसी भी स्थिति आती है, आदमी उससे समझौता कर लेता है। आदमी को रङ्ग बदलते क्या समय लगता है।'

मा बोली—'भाग्य की बात है, जो पीछे गरीब थे, वे आज मालदार बन गये हैं।'

बात सुनकर, रमाकान्त ने चाहा कि कहे, इस प्रकार के लोग समाज का

मुँह काला करते हैं। परन्तु तत्क्षण ही उसे ध्यान आया कि बेईमानी करके ही आदमी पैसा पाता है। ईमानदार आदमी क्या इस दुनिया में वैभव प्राप्त कर सकता है! वह तो जिन्दगी की दौड़ में पिछड़ जाता है। परन्तु इतनी बात उसने मा से नहीं कही। वह उसके मन में डोलती रही। क्योंकि चोर उसके भी पास था। वह अब निर्बल था। यदि बलवान बनकर वह पैसे के प्रति उपेक्षित बनता, तो गर्व करने की बात थी। अब तो लोमड़ी के लिए अंगूर खट्टे, वाली कहावत को वह स्वयं चरितार्थ कर रहा था। इसीलिए उसने सोचा, जब तक पैसा है, इस आदमी की आवश्यकता पूर्ति का प्रतीक है, तब तक इन्सान ऐसा ही रहेगा। जीवन के भोग भोगने के लिए अधिक से अधिक पैसा उपार्जित करता रहेगा।

किन्तु मा ने जब रमाकान्त को फिर भी जागता हुआ पाया, तो उसने अपने मन में कहा, जरूर इसके मन में कुछ है। क्या कमला...अपनी समस्या! उसने तब फिर रमाकान्त की ओर करवट लेकर कहा—'तुम्हारे मन में क्या आया है, रमाकान्त! क्या कमला?'

सुनते ही, रमाकान्त ने कहा—'नहीं! नहीं! मा! अब मैं विवाह करने की बात नहीं सोचता!'

मा ने अपना मत तो नहीं दिया, परन्तु इतना उसे स्वीकार नहीं था कि उसका पुत्र विवाह न करे, विवाह की बात अपने मन में न ले। वह साँस भर कर बोली—'यह तो दिनों के फेर हैं, बेटा! बदलते क्या देर लगती है।'

रमाकान्त ने कहा—'अब कोई अंग्रेज हमें आकर जागीर नहीं देगा। अब तो मेहनत करके ही पेट भरा जायगा।'

मा बोली—'भगवान उसी में ही हमारा भला करेगा!'

सुनकर रमाकान्त मौन रह गया।

मा ने फिर कहा—'तुम्हारे पुरखों को जो जागीर मिली, वह भी भाग्य की बात थी, बेटा!'

रमाकान्त ने फिर कह दिया—'मा अब वैसा भाग्य नहीं फलेगा। वैसी हवा का दौर अब इस ओर नहीं आयेगा।'

मा बोली—'तेरे पिता कहते थे कि पण्डित ज्ञाननाथ भी इस शहर में आ गये हैं। उनकी पत्नी और बच्चा गुजर गया है!'

चौंक कर रमाकान्त ने कहा—'क्या पत्नी मर गयी ! बच्चा भी ! ओह !

मा ने कहा—'शरणार्थी शिविर में ही, यह सब हो गया। भगवान की इच्छा ! उनका तो घर ही बरबाद हो गया।'

रमाकान्त ने कहा—'तो मा, पिताजी उनके पास गये क्यों नहीं ? जाना था। दुनिया का यह व्यवहार तो निभाना था।'

मा बोली—तेरे पिता जी को तो उसका ठिकाना मालूम नहीं। दूसरे अब संकोच भी मन में आ गया। गरीबी जब आती है, तो आदमी स्वयं भी शरमा जाता है।'

रमाकान्त बोला—गरीबी पाप नहीं है। दोष नहीं।'

मा ने कहा—'यही तो इस दुनिया का सबसे बड़ा अपराध है।'

बात सुनकर, फिर रमाकान्त ने अपना मत नहीं दिया। वह उस समस्या में डूब गया।

मा फिर बोली—'इस रविवार की छुट्टी में तू हो आता। बात कर आता।'

रमाकान्त ने कहा—'मा, वही संकोच मुझमें भी है। मेरा वहाँ जाना किसी प्रकार भी शुभ नहीं है।'

मा बोली—'यह भी बड़ी अशुभ बात हुई कि मा चली गयी, बाप वृद्ध हो गया, अब भला सयानी लड़कियों की कौन रखवाली करेगा ?' उसने कहा—'तुम वहाँ जाते तो मालूम करते कि क्या सचमुच, उन दोनों लड़कियों को किसी विधर्मी के घर में रहना पड़ा था ! यही तो शरणार्थी शिविर में हमसे कहा गया था।'

इतना सुनते ही, रमाकान्त क्षुण्ण बन गया। उसके मन का रोष फूट पड़ा। उसने छूटते ही कहा—'मा, आखिर तुम्हारे मन की हीनता का भी कोई अन्त है।, तुमने और पिताजी ने सचमुच ही मुझे पागल कर दिया। यदि शरणार्थी शिविर में मुझे न रोका जाता, मुझसे उन लड़कियों का दूसरी जाति के गुण्डों द्वारा अपहरण का समाचार न कहा जाता, तो निश्चय ही मैं उनके पास जाता। पण्डित ज्ञाननाथ और उनके परिवार के समाचार मालूम करता। परन्तु तुम लोगों ने तो मुझे बरबस ही कायर बना दिया। मुझे उन लोगों के समक्ष मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रखा।'

मा ने कहा—'बेटा मुझे क्या पता, शरणार्थी शिविर में चर्चा थी तेरे

पिता ने भी यह बात लोगों से सुनी थी। कुछ औरतों ने भी मुझसे यह बात कही थी।'

रमाकान्त ने फिर झल्ला कर कहा—'तुमने खाक सुनी थी! जिन लोगों ने बात कही उन्हें यही शोभता है। आज शरणार्थियों की इस समस्या ने भी उग्र रूप धारण किया है। लोगों की सामाजिकता को मिटाने का प्रयत्न किया है। अच्छे परिवारों को बदनाम किया जा रहा है।'

मा ने कहा—मुझे इसका क्या पता! लोगों के मन में क्या है, इसे भला कौन जानता है!'

रमाकान्त ने अपनी बात पर फिर बल दिया—'नहीं, यही बात है। कुछ लोगों का यही व्यापार है। समाज में चलने का यही तरीका है।' वह बोला—'ऐसे लोग समाज में भ्रष्टता फैलाते हैं। भोले समाज के नर-नारियों के प्रति क्रूरता और बर्बरता का प्रदर्शन करते हैं।'

मा ने कहा—'तिल का ताड़ तो बनता है। पर ताड़ तिल नहीं बन पाता।

उस समय रमाकान्त के मन में झुँझलाहट थी। मा ने जब फिर अपनी बात कही, तो उसे हँसने की इच्छा भी आई, परन्तु वह हँसा नहीं, उस रात के प्रहर में मौन ही बना रहा, वह उसी प्रकार पड़ा रहा। वह अपनी मा और पिता की अदूरदर्शिता पर भी छटपटा रहा था,—वह रमाकान्त!

: १६ :

रात में ही रमाकान्त ने निश्चय किया था कि वह प्रातःकाल पण्डित ज्ञाननाथ के पास जायेगा। उनसे क्षमा माँगेगा। परन्तु जब प्रातः हुआ, तो वह अब कमला से नहीं मिलेगा, पण्डित ज्ञाननाथ के घर भी नहीं जायगा। परन्तु उसके मन की भी अजीब स्थिति थी कि दूसरे दिन दफ्तर के लिए चला, तो नित्य के रास्ते पर न चलकर उस रास्ते पर चढ़ गया कि जहाँ पण्डित ज्ञाननाथ का मकान था। वह अभी उस गली के पास ही पहुँचा था कि सामने सरला

पड़ गयी। वह बाजार में साग-भाजी खरीदने निकली थी। अवसर की बात कि दोनों की चार आँखें भी हो गयीं। देखते ही, रमाकान्त ने आगे बढ़ कर कहा—'ओ, तुम सरला देवी !'

सरला ने मुसकराया और कहा—'आप तो अच्छे हैं ! कहाँ रहते हैं ?'

रमाकान्त उस समय जैसे अपराधी के सदृश बन गया था। अतएव, वह वहाँ से जल्दी भागना चाहता था। दफ्तर का भी समय हो चुका था। इस लिए, वह बोला—'मुझे कल ही पता चला कि तुम लोग दिल्ली आ गये हो। अमृतसर-कैम्प में जिस विपत्ति का तुम लोगों को सामना करना पड़ा, वह भी मुझे ज्ञात हो गया। तुम्हारी माता जी और भाई यों छोड़कर चले गये, सुनकर मुझे अतिशय दुःख हुआ।' यह कहते हुए उसने जेब से कागज निकाला और कहा—'कमला देवी को मेरा यह पत्र दे देना। मैं जल्दी ही तुम लोगों से आकर मिलूँगा।

सरला ने कहा—'अभी चलिये।'

रमाकान्त ने कहा—'दफ्तर का समय हो गया है। अब मुझे जाना है।' उसने पत्र सरला के हाथों में रख दिया और नमस्ते करके तेजी से चल दिया।

सरला ने वह पत्र कमला को जाकर दिया और कहा, कि रमाकान्त ने दिया था। उसने यह भी बताया कि वह आयेंगे। जल्दी ही हम लोगों से आकर मिलेंगे।

कमला ने वह पत्र पढ़ लिया। पिताजी उस समय बाहर गये थे। सरला ने कहा—'क्या लिखा है ?'

कमला बोली—'तूने पढ़ तो लिया होगा ?'

सरला ने विश्वास दिलाया, 'मैंने नहीं पढ़ा।'

कमला ने वह कागज का टुकड़ा उसकी ओर बढ़ा दिया।

उसको पढ़ते ही, सरला ने फिर प्रश्न किया—'जीजी, तुमने क्या अर्थ निकाला ?' वह बोली—'मैंने तो कल ही समझा कि रमाबाबू का जीवन ही बदल गया है। अमीरी गयी, गरीबी ने पल्ला पकड़ लिया। जरूर वह इसीलिए नहीं आये। हमसे नहीं मिले।'

बात सुनकर, कमला ने साँस भरी—'क्या रुपये से ही सम्बन्ध किया

जाता है। आदमी, आदमी से मिलता है। समाज का व्यवहार यही सिखाता है।'

सरला ने कहा—'जीजी, जब आदमी के पास पैसा नहीं होता, तो इस भरी दुनिया में रहकर भी वह अपने को अकेला पाता है। ऐसी अवस्था में क्या कोई उससे सम्बन्ध रखता है। ऐसा आदमी अपने को हीन मानने लगता है।'

प्रस्तुत विषय में कमला कोई तर्क करने के लिए तैयार नहीं थी। उस कागज पर लिखे कुछ शब्दों ने स्वतः ही उसकी मोह-निद्रा खोल दी थी। उसके सामने वही पहिला रमाकान्त फिर आ गया। वह सामीप्य भी याद आ गया। फलस्वरूप, उस युवा तरुणी के मन का सूखा हुआ सागर फिर लहलहा उठा। उसमें तरंगें भर आईं। निदान, वहाँ से उठकर कमला कमरे के बारजे में जा खड़ी हुई। सामने ही एक किरायेदार खाना खा रहा था। उसकी पत्नी हवा कर रही थी। जिसका नाम वासन्ती था। कल ही बासन्ती उससे आकर मिली थी। देर तक बैठी रही और अपने परिवार की बातें सुनाती रही। और तभी कमला के मन में आया, तो सच, रमा बाबू का जीवन बदल गया! पैसा नहीं रहा! रोटियों का प्रश्न आ गया। उन्हें माता-पिता की चिन्ता है। अपनी चिन्ता है। इतना सोचते ही, कमला के मन में जैसे भूचाल उठ खड़ा हुआ। उसे लगा कि हाय! इतना विपरीत जमाना आ गया। इन्सान ऐसा विद्रोही बन गया! पैसा ही सब कुछ हो गया। आदमी का महत्त्व बेकार कर दिया गया।

किन्तु अपने मन की इस अवस्था में ही, कमला ने सर्व प्रथम अपने-आपको ही दोषी पाया। उसने समझा कि जब रमाबाबू का परिवार विपन्न बन गया, पास में भोजनों का आधार नहीं रहा, तो मुझे उनसे मिलना था। कुछ अपनी कहना था, कुछ उनकी सुनना था।

उसी समय, पीठ पीछे सरला ने कहा—'जीजी, अब क्या बनेगा?'

कमला ने उसकी ओर देखा, एकाएक अपना मत भी नहीं दिया।

सरला बोली—'क्या रमाबाबू की बात सोचती हो!'

आतुर भाव में कमला ने कहा—'नहीं, री!' और फिर अपने-आप

बोली—'यह जीवन भी अजीब पहेली है। मानो समस्याओं का झुरमुट ही रह गया है, यह जीवन!'

सरला ने कहा—'जीजी, इस जीवन में और क्या है! यही चेतना है, यही अभ्युदय! इसी एक समस्या को सुलझाता हुआ यह आदमी जीता है और मरता है।' वह बोली—'रात पिताजी कहते थे, इस देश का भाग्योदय सो रहा है। देश का विभाजन हुआ है, तो यह देश और अधोगति को प्राप्त हो गया है!'

कमला ने कहा—'ऐसा नहीं मानती! जो नित्य के झगड़े थे उनका तो अन्त हो गया। जुदा सभी होते हैं। एक घर के दो भाई भी आपस में बँटवारा कर लेते हैं। अब तुम अपना घर सम्भालो, दूसरा अपना!'

सरला ने कहा—'पर जीजी, एक समस्या का निपटारा करके हमने तो और भी बहुत से प्रश्नों को खड़ा कर लिया है।'

कमला ने उपेक्षा भाव से कहा—'इस दुनिया में यह सब तो चलता है! एक बात आती है, दूसरी जाती है।'

सरला बोली—'तो रमाबाबू की बात पर तुमने क्या समझा!'

कमला ने कहा—'दिखाता है, रमाबाबू दुःखी हैं। परेशान हैं।'

'और विवाह की बात पर कुछ लिखा है?'

कमला ने सरला की ओर देखा। उसने कहा—'वे अभी विवाह नहीं करेंगे।' वह बोली—'यह ठीक भी है। उन्हें यही करना चाहिए। विवाह जीवन के लिए आवश्यक भी नहीं है। और आज के युग में जबकि मानव त्रस्त है, दुःखी है, तो क्या इस पुरुष-स्त्री समाज को आमोद-प्रमोद में डूब जाना चाहिए।'

सरला बोली—'जीजी, इस दुनिया में सभी-कुछ चलता है। नैपोलियन जब एक बार अपनी हजामत बना रहा था, तो उनके पास एक तार आया। वह तार उसने पढ़ा और फिर रख दिया। पास में एक मित्र बैठा था, उसने कहा, कैसा तार आया है? नैपोलियन बोला, पढ़ लो! और जब मित्र ने वह तार पढ़ा, तो उसने चकित बनकर बोनापार्ट का लक्ष्य दिया और कहा, भाई, तुम भी अजीब आदमी हो! युद्ध के मोर्चे पर तुम्हारा आवाहन किया गया है, और तुम फिर भी पहिली मुस्तैदी के साथ हजामत बनाने में लगे हो। नैपोलियन

बोला—महाशय, मैं जिन्दगी को एक खेल मानता हूँ। मनोरंजन मानता हूँ। युद्ध मानता हूँ। ठीक है, मुझे युद्ध का बुलावा आया है, परन्तु वहाँ जाने से पूर्व ही मैं मुर्दा बन जाऊँ, हजामत अपनी बन्द कर दूँ, यह कहाँ तक उचित है। क्यों न सज कर जाऊँ। सुन्दर बन कर जाऊँ। मर भी गया, तो देखने वाले कहेंगे, कैसा खूबसूरत जवान था।' सरला ने ठीक अपनी जीजी की आँखों में झाँक कर कहा—'जीवन में पहिली बार विपत्ति आई है और वह रमाबाबू को इतना उदास बना सकी, मैं इसे अच्छा नहीं मानती! उन्हें विवाह करना चाहिए! एक से दो बनना चाहिए। सहयोगी का सहयोग पाना चाहिए!'

कमला होंठों से हँसी—'अच्छा उपदेशक जी, तुम्हारी बात उन तक न पहुँच जायगी। अब रोटी की फिक्र करो, दोपहर हो गया है। दाल बना लो।'

सरला वहाँ से चलती हुई बोली—'रमा बाबू आये, तो मैं उनसे यही कहूँगी।'

उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ घर में आये। वे कहीं दूर से चलकर आये थे, थके थे।

कमला ने उनके पीछे ही, कमरे में आकर कहा—'पिताजी, क्या दूर गये थे?'

पण्डित जी बोले—'हाँ, बेटी! दूर गया था। कुछ व्यक्तियों से मिलना था।'

'तो वे मिले?'

'हाँ, कई व्यक्ति मिले।' पण्डित जी ने कुरता उतार दिया और कहा—'बेटी, मैं सोचता था उस पार से आये व्यक्ति लुट अधिक गये। पर मुझे तो लगता है, अन्तर अधिक नहीं पड़ा। बल्कि जो वहाँ भूखे थे, उन्हें यहाँ कमाई करने का अवसर मिल गया। जो वहाँ पैसेवाले थे, वे यहाँ भी पैसे वाले हैं। जो वहाँ अधन और निम्न वर्ग के थे, वे यहाँ भी उसी कोटि में हैं। अब मुझे लगता है कि इस अवस्था में तो जाति का उत्थान तो क्या होगा, पतन हो जायेगा। आदमी सदाशयता को छोड़, और अधिक बोझिल बनेगा।'

कमला ने कहा—'आज का व्यक्ति पहिले अपने उत्थान की कल्पना करता है। स्वयं पेट भरना सभी को हितकर दीखता है।'

कुरता काढ़कर पण्डितजी पंखे से हवा कर रहे थे। बोले—'आज मकान-दार से भी मिला। किराया दे आया। पन्द्रह रुपये में जो मुझे मकान दिया, तो उसने जैसे बहुत बड़ा एहसान मेरे सिर पर क्या डाल दिया। वैसे कहने को उस पार का है, परंतु स्वार्थ के प्रश्न पर क्या कोई झुकना चाहता है! उस अवस्था में तो वह साँप बनकर डँसना ही पसंद करता है।'

कमला बोली—'पिता जी, ये आदर्श की बातें हैं। इस दुनिया में क्या ये चलती हैं। यह स्वार्थों से बँधी हुई दुनिया है। उस पार के हिंदू और सिखों का पाप ही तो उन्हें यहाँ ले आया है।'

पण्डितजी ने कहा—'अंग्रेजी राज्य में पचास प्रतिशत रुपया पंजाब पाता था। इसीलिए पंजाब सरसब्ज था। लड़ाकू था। फौजियों की पेंशनें और तनख्वाहों में जितना रुपया अंग्रेज समूचे देश में देते उतना ही पञ्जाब पा लेता था।'

कमला बोली—'पंजाब के साहूकार प्राप्त कर लेते थे।'

पण्डितजी ने कहा—'तभी तो वहाँ के जन-समाज में विद्रोह भाव था, विद्वेष था। समय पाते ही, उस आग ने सभी ओर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उस साँप ने सभी को डस लिया।'

कमला ने साँस भरी—'तो आपने क्या किया?'

पण्डित जी ने कहा—'सरला की पढ़ाई के लिए बात कर आया हूँ। तुम्हें कोई काम मिले, इसके लिए भी बात चला सका हूँ।'

कमला ने कहा—'यह काम जल्दी होना चाहिए, पिताजी! हमारे पास इतने साधन नहीं कि कुछ मास तक भी बैठे खायें!'

पण्डित जी ने चिन्तित स्वर में कहा—'मुझे इसका पता है, बेटी! चिन्ता है। मैं स्वयं भी काम करने के लिए तत्पर हूँ। इसी उद्देश्य से एक पत्र-कार्यालय में हो आया हूँ। अभी मैं जिस व्यक्ति के पास से आ रहा हूँ, उसके पास करीब पचास लाख रुपया जमा है। वह सब रुपया उसने अपने समाज की नेतागिरी करके प्राप्त किया। जब लाहौर से उठ कर यहाँ आया, तो अपने पत्र-कार्यालय का फर्नीचर तक उठा लाया। निश्चयही, उस व्यक्ति की दृष्टि में आदमियों का मूल्य नहीं रहा, अपने फर्नीचर का रहा।' वह बोले—'बेटी, इस विभाजन में जिनके पास रुपया था, वह हवाई जहाज में आये। किन्तु

जो साधन हीन थे, उन्हें तो रेल का भाड़ा भी मुयस्सर नहीं हुआ। इसी कारण बहुत से आदमी मर गये!'

उस समय कमला का मुँह बाहर की ओर था। उसकी आँखें चढ़ी थीं। जब पिताजी ने अपनी बात कही, तो उसने दूसरी ओर देखते हुए ही कहा—'पिताजी, यह देश कभी भी एक नहीं रहा। उस पार भी सभी के जुदे रास्ते थे। सोचने के ढंग भी अलग थे। जातियों के स्कूल अलग, धर्म स्थान अलग, आपस में की जाने वाली बातें अलग। मानो सभी जातियों के पुरखे अपनी सन्तानों को जुदा-जुदा ढंग से सोचने और विचारने के तरीके बता गये थे। वे रास्ते बना गये। भला कोई सीमा है यहाँ की कि लोगों को पानी पीने के लिये कूपालय अलग, भोजन के लिये भोजनालय अलग, तब भला बताइये, हम एक-दूसरे के प्रति सहृदय कैसे बन सकते हैं। हम सभी कुछ दूसरे ढंग से देखते और सोचते हैं।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'किन्तु जब मैं उस पत्र-कार्यालय में पहुँचा, उसके संचालक से मिला, तो यह समझ कर भी कि इस ज्ञाननाथ के पास पैसा नहीं, इसकी दो युवा लड़कियाँ हैं, उस व्यक्ति ने तनिक भी सहायता करने की प्रवृत्ति नहीं दिखायी। मैंने स्पष्ट होकर कहा कि मैं भी कोई काम कर लूँगा। बड़ी लड़की कमला कोई काम कर लेगी। परन्तु क्या मजाल कि जो उसने इस बात पर अपना मत दिया हो।'

कमला ने कहा—'हम मजदूरी कर लेंगे, परन्तु ऐसे लोगों के समक्ष हाथ न फैलायेंगे'

ज्ञाननाथ जी बोले—'बेटी, मैं अब भी नहीं चाहता कि तू कुछ काम करे। मैं तो कहता हूँ कि तू घर में रहे।'

कमला बोली—'पिताजी, समय पर सब कुछ किया जाता है। मेरी अब एकान्त इच्छा है कि पेट भरने का उपाय करने के साथ जन-सेवा का कार्य करूँ। अपना जीवन इसी क्षेत्र में लगा दूँ।'

पण्डित जी ने कहा—'मैं अपनी बेटियों की इच्छा का दमन नहीं करूँगा। जो कुछ मैंने जीवन में सोचा और पाया, यदि मेरी बेटियाँ भी वह चाहें भी, तो मैं नहीं रोकूँगा।'

कमला बोली—'मेरा अब यही निश्चय है। आप से ऐसे ही आशीष के पाने की इच्छा है।'

उसी समय सरला वहाँ आई। बोली—'आप स्नान कर लें, पिताजी! रोटियाँ तैयार हैं।'

पिता ने उसको लक्ष्य करके कहा—'अच्छा, अच्छा!'

कमला ने कहा—'पिताजी, अशफाक मियाँ आये थे। देर तक बैठे रहे। इस समय तो वह दिल्ली से दूर चले गये। आप नहीं मिले, तो कहते रहे, मैं पत्र दूँगा। वह मुझसे कह गये हैं कि मैं बाहर जाकर इस बात का अध्ययन करूँगा कि देश किस दिशा पर चलाया जाये। कहते थे, मैं रूस में जाऊँगा।'

पण्डित जी ने कहा—'मुझे लगता है कि यह अशफाक एक दिन बड़ा आदमी बनेगा। बाहर जा रहा है, तो जरूर अपना जीवन-पथ भी प्रशस्त कर सकेगा।'

कमला ने कहा—'अशफाक भाई का मत है कि यह देश कम्यूनिस्ट बनकर ही उठ सकेगा। रोग भयानक है, तो इसका उपचार भी उसी सिद्धता से करना पड़ेगा।

पण्डित जी ने कहा—'मत मेरा भी यही है। परन्तु इस समस्या को सुलझाना अभी कठिन दीखता है।'

कमला ने कहा—'क्या उस पार से आये हुए लोग कम्यूनिस्ट नहीं बन सकते! वे सहायक नहीं बनेंगे?'

ज्ञाननाथ जी ने जैसे कड़ुवा घूँट भरा—'नहीं, नहीं, जिस समाज के पास चरित्र नहीं, वह क्या खाक कम्युनिस्ट बनेगा! उस पार में झगड़ा हुआ, तो लोग अपने प्राण बचा कर भागे। वहाँ के लोगों ने अभी तक अपने प्रान्त और देश को ठगा था। परन्तु जब अवसर आया, तो लोगों ने अपने बीबी-बच्चों, माता-पिताओं को त्याग दिया, लोगों ने अपने प्राण बचाना ही आवश्यक माना। सैकड़ों माताओं ने अपने बच्चे फेंक दिये, पतियों ने पत्नियों को त्याग दिया! भला, विश्व के इतिहास में तुम्हें इससे भी बड़ा करुणापूर्ण दृश्य देखने को मिलेगा! इतना अमानुषीय कर्म! जिस भारत में लोगों ने एक प्राण के लिए हजारों प्राणों की बलि दी, तो आज अपने प्राण बचाने के हेतु अपने बिकट के प्राण को त्याग दिया...उसे पत्थर समझ कर फेंक

दिया...हाँ, बेटी ! ऐसे अवसरवादी, स्वार्थी, चरित्रहीन समाज से तुम यह आशा मत करो कि वह जाति और देश का साथ देगा। आज भी अवस्था यह है कि सरकार मुक्तहस्त बनकर शरणार्थियों की मदद कर रही है, यहाँ के लोग भी सहायता प्रदान कर रहे हैं, परन्तु क्या किसी शरणार्थी के मुँह से तुमने यहाँ के लोगों और सरकार को साधुवाद देते सुना है, कदापि नहीं! मानो उनका यह स्वभाव नहीं, कर्म नहीं, धर्म नहीं...!'

कमला ने कहा—'हम सहिष्णु नहीं हैं, आभारित भी नहीं। धृष्टता प्रगट करना ही हमारा स्वभाव बन गया है !'

'अशफाक मियाँ आये और मैं नहीं मिला, यह जानकर शोक हुआ। उस व्यक्तिने हमारे साथ सहयोग प्रदान किया।' कहते हुए पण्डितजी स्नान करने के लिए उठे।

कमला ने कहा—'अशफाक मियाँ मुझे निमंत्रण दे गये हैं कि मैं कम्युनिस्ट बनूँगी और उनके साथ काम करूँगी।'

'तो तुमने क्या कहा, बेटी ?'

'मैंने कह दिया, पिताजी, मैं आज भी कम्युनिस्ट हूँ। मैं जन-सेवा करना अपना लक्ष बना चुकी हूँ।'

कमरे से जाते हुए पण्डितजी ने कहा—'तुम्हें यही कहना चाहिए था, बेटी !'

: २० :

वस्तुतः रमाकान्त का मन नौकरी करने में नहीं लग रहा था। वह अनुभव करता कि रोटियाँ उपार्जित करना ही मेरा काम नहीं। और कदाचित अपने मन की ऐसी स्थिति के कारण ही वह इच्छा करके भी, पण्डित ज्ञाननाथ के घर नहीं पहुँच सका। अब प्रश्न था कि वह क्या करे ? क्या जन-सेवा का कार्य करे ? निःसन्देह, उसका मन इसीलिए आतुर था। रमाकान्त यह देख कर

अत्यन्त विचलित होता कि अंग्रेज गये हैं, देश में परिवर्तन हुआ है, तो सभी ओर लूट का बाजार गर्म हो गया। स्वार्थ फल रहा है। व्यक्ति से व्यक्ति ठगा जा रहा है। देश जल रहा है और समाज का एक बड़ा समुदाय भैरव राग से पूरित जैसे किसी दूसरे लोक का स्वप्न देख रहा है...

उसी समय देश में अन्धेरा छा गया। मानो देश का प्रकाश बुझ गया। भारतीय क्षितिज का उज्ज्वल नक्षत्र जाने कहाँ लोप हो गया। जिस समय एक व्यक्ति ने महात्मा गान्धी की हत्या की तो चारों ओर कोहराम मच गया। उस दिन रमाकान्त जितना रोया, कदाचित अपनी स्मृति में उतना नहीं रोया था। उसने अनुभव किया कि देश का भाग्योदय नहीं होगा। रमाकान्त ने अपने माता-पिता से यह भी कहा कि शरणार्थियों के आगमन से जो जहर फैला, तो उसका आचमन स्वयं शंकर ने कर लिया। उसने देश को बचा दिया। अब यहाँ झगड़ा नहीं होगा। और यही सचाई थी। महात्मा गांधी की मृत्यु ने जैसे आग पर पानी डाल दिया। समूचे देश के आँसुओं ने रोष की ज्वाला को बुझा दिया।

किन्तु झगड़े दब गये थे, पर समस्याओं के मुँह अभी खुले थे। वे मुँह बढ़ते जा रहे थे। देश की आत्मा को कुण्ठित और कम्पित बना रहे थे। उन्हीं रमाकान्त ने अपने को उस पार्टी से सम्बन्धित किया कि जिसका लक्ष देश में नव-जागरण और नव-चेतना का प्रसार करना था। रमाकान्त उसी पार्टी के काम में लग गया। जल्दी ही उसे नौकरी छोड़नी पड़ी और संस्था के काम से कभी नगर में रहता और कभी बाहर जाता।

विभाजन के बाद जब रमाकान्त समाज के मध्यम और निम्न-वर्ग से सम्बन्धित हुआ, तो उसने यह भी देखा कि देश के उस अंग का सुधार सरल नहीं है। मध्यमवर्ग के पास शिक्षा है, परन्तु वह शिक्षा या तो क्लर्की दिलाने का काम करती है, अथवा वैभवपूर्ण संसार की कुत्सित भावनाएँ भोगने की इच्छाएँ प्रदान करती है। किन्तु वे भोग की इच्छाएँ क्या सभी प्राप्त करते हैं? सभी के पास ऐसे साधन हैं? रमाकान्त देखता कि अधिकांश व्यक्ति केवल तरसते हैं। आँखों की वासना शान्त करते हैं। और वे बाजार में प्राप्त होने वाली सुन्दर वस्तुएँ,—वह हलवाई की दुकान, वह बिसाती की दुकान, अथवा कपड़े वाले की दुकान—मध्यम-वर्ग के आदमी ही तो बेचते हैं, उन

वस्तुओं का निर्माण करते हैं। सन्ध्या आ गयी है, सिनेमा घरों पर भीड़ लगी है, वेश्याओं के द्वार पर वेश्याएँ सजी हुई खड़ी हैं। उनके खरीदारों में आधिक्य भी पैसे वालों का नहीं, मध्यम और निम्नकोटि के व्यक्तियों की है। जिस वस्तु को पाने के वह योग्य नहीं, उसी को पाना चाहते हैं। किन्तु रमाकान्त और उसके साथियों की परेशानी यह थी कि सरकार सरमायेदार की पृष्ठपोषक थी। वे जहरीले तत्व देश में तीव्रता से फैल रहे थे। देश की विशिष्ट संस्थाओं में ऐसे व्यक्ति अधिक संख्या में आ गये थे कि जो अपने जीवन में कभी भी जनता-जनार्दन के भक्त नहीं बने। जेल नहीं गये। देश-सेवा की कल्पना में कभी नहीं लगे। और ऐसे व्यक्तियों के हाथों में देश का भाग्य सौंप देना किसी प्रकार भी खतरे से खाली नहीं था। सरकार की मशीन में वही पुराने पुर्जे थे कि जिन्हें अंग्रेज लोग फिट कर गये थे। वे पूर्जे देश की अवस्था के प्रतिकूल थे। आजाद होने पर भी वे देश का शोषण कर रहे थे।

एक दिन की बात कि रमाकान्त किसी पड़ौसी के काम से थाने में गया। वहाँ उसने देखा कि अपराधी व्यक्ति एक सेर चने के आटे पर दो पैसा अधिक लाभ लेने के कारण गिरफ्तार कर लिया गया। जिस समय रमाकान्त वहाँ पहुँचा तो इस व्यक्ति की पत्नी वहाँ आई थी। वह थानेदार से कुछ निवेदन करना चाहती थी। किन्तु उस शिक्षित और कुलीन परिवार से सम्बन्धित थानेदार ने उस नारी को देखते ही और उसे गर्भवती पाकर नितान्त उपेक्षित तथा उपहास्यास्पद स्वर में कहा—'जा, जा, घर बैठ ! तू बच्चा पैदा कर !'

रमाकान्त ने इतना सुना, तो जैसे एकबारगी अन्धेरे में घूम गया। उसका सिर चकरा गया। वह नहीं समझ सका कि यह थानेदार जंगली है या सभ्य है। परन्तु इतना उसने समझा कि पुलिस विभाग का प्रत्येक व्यक्ति उद्दण्ड है। पुलिस के हाथ में समाज की सुरक्षा का भार है परन्तु समाज में जितने भी दुराचार होते हैं, उनका उद्गम स्थान यह पुलिस है। निदान, रमाकान्त तुरन्त ही थाने से लौट आया। उसका थानेदार से काम था, परन्तु उसने वह काम पसन्द नहीं किया। उस व्यक्ति से बोलना भी नहीं चाहा।

इस प्रकार रमाकान्त जिस संस्था में काम करता उसका काम ही यह था कि वह यह खोजे कि देश में ऐसे कौन-कौन से दुर्गुण तथा विषैले तत्व हैं

कि जिनसे प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित है। क्योंकि उस संस्था का यह निश्चित मत था कि जब तक ऐसे तत्वों को न मिटाया जाय, तब तक देश का भला न होगा। निदान, संस्था की ओर से एक ऐसी सूची बनाकर सरकार को भेजी गयी। रमाकान्त और उसके साथी सरकार के उच्च अधिकारियों से मिले। विधानसभा के मेम्बरों का भी उस संस्था ने सहयोग और आशीष प्राप्त किया। फलस्वरूप, सरकार के कोप से उस जन-सेवी समाज को साहस प्राप्त हुआ। रमाकान्त आजीवन सदस्य था। विशिष्ट था। संस्था के संस्थापकों और अग्रणी व्यक्तियों में उसका नाम पहिले आता था।

यद्यपि, रमाकान्त नगर का वासी था। उसका जन्म एक बड़े शहर में हुआ था। परन्तु संस्था के काम से जब उसे अपनी पार्टी के साथ गाँवों में भी जाना पड़ा; तो उसने सहज ही अनुभव किया कि अंग्रेजों ने गाँव उजाड़ दिये हैं, नग्न कर दिये हैं। इसलिए बढ़े हुए शहरों की आबादी को कम करने का एक ही उपाय है कि शहर के लोगों को गाँवों में भेजा जाय। गाँवों को आबाद किया जाय। रमाकान्त देखता था कि नगरों में लोगों की इच्छा का विस्तार तो अधिक होता है, अनुपाततः पैसा कम आता है, तो उनमें विषमताएँ पैदा होती हैं, उनका जीवन एक कुएँ के मेढक के समान बन जाता है। वह मेढक जिन्दगी पर्यन्त उस कुएँ में चक्कर काटता है और एक दिन दम तोड़ बैठता है...।

फलस्वरूप, संस्था के व्यक्तियों में अपने भाषणों, लेखों और पैम्फलेटों द्वारा इस बात का प्रचार किया कि यदि मनुष्य अपने नित्य के जीवन में सिद्ध बनना चाहता है, तो वह किसान बने, गाँव का वासी बने। वे लोग बताते हैं कि जीविका चलाने के लिए किसान का पेशा इसलिए सार्थक है कि उससे आदमी स्वतः ही, अनजाने में पुण्य का संचय करता है। किसान की सम्पत्ति खेतों में होती है। उस सम्पत्ति का उपयोग जंगल के जानवर, पक्षी तक करते हैं। गाँव की गरीब जनता भी उससे लाभ उठाती है। किसान मेहनत की कमाई खाता है। उसका पुरुषार्थ ही समस्त देश का कल्याण करता है। जीव-जीवों का पेट भरता है। अवसर की बात कि उसी संस्था से एक दिन कमला ने भी अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। यद्यपि, उसको यह पसन्द नहीं था कि वह रमाकान्त के समीप जाये। किन्तु पण्डित

ज्ञाननाथ ने स्वयं उसको उत्साहित किया। बाद में सरला ने भी अपना नाम उस संस्था के रजिस्टर में लिखा लिया। इस प्रकार ज्यों-ज्यों संस्था के व्यक्ति बढ़ते जाते थे, त्यों-त्यों काम भी बढ़ता जाता था। अजीब बात थी कि जिन लोगों के विरुद्ध वह संस्था प्रचार करती, तो उसी समुदाय की जेब से उसे रुपया मिलता। उसका प्रचार-कार्य चलता। एक दिन आया कि रमाकान्त और कमला ने उस संस्था में सर्वोपरि स्थान प्राप्त कर लिया।

किन्तु लगातार मिलती हुई उस सफलता को पाकर भी, रमाकान्त के मन में बेचैनी थी, वह देखता कि सहयोगी ईमानदार नहीं। सरकारी अधिकारी भी उनके प्रति सहृदय नहीं। उसके पथ पर जो रुकावटें थीं, वे अपरिचित थीं। उनको पार करके ही, लक्ष की सिद्धि प्राप्त हो सकती थी। इसलिए, रमाकान्त ने जितना भी रास्ता पार किया, वह अभी नगण्य था। दुर्भाग्य की बात तो यह कि स्वयं साधारण-समाज उस संस्था के व्यवस्थापकों का उपहास करता। क्योंकि संस्था में अधिकतर शरणार्थी व्यक्ति थे, इसलिए उस पार के नौजवानों को इस पार के व्यक्ति सन्देह की दृष्टि से देखते। अवस्था यह थी कि उस पार वालों द्वारा भी संस्था के कार्य कर्ताओं का उपहास किया जाता। कमला और रमाकान्त को लक्ष्य कर एक यह भी विषाक्त भाव लोगों के मन में आया कि दोनों ही रहस्य से पूर्ण हैं...आदि युग की नारी के समान, यह कमला भी एक समस्या है...नव युग की प्रतिक्रियाओं का खुला रूप! और जब समाज के लोग एक दूसरे को लक्ष्य कर इस प्रकार के विचार प्रकट करते, तो साथ ही, ऐसे व्यक्ति ही-ही कर अपने दाँत निपोर देते। अवस्था यह थी कि रमाकान्त स्वतः लोगों की उस विचार धारा से परिचित था। वह शर्मिन्दा होता था। उस अवस्था में वह उस क्षेत्र से पीछे हट जाना भी पसन्द करता था। परन्तु उसने तो उस संस्था को जन्म दिया था। वह उसके संस्कार निर्माताओं में से एक था।

एक दिन की बात थी कि रमाकान्त नगर की एक सभा में भाषण दे रहा था। उसके बाद ही कमला का भाषण होने वाला था। उस भाषण में समाज की बुराइयों का विशद रूप से उल्लेख था। सभा में सभी प्रकार के व्यक्ति थे। शिक्षित युवक अधिक थे, किन्तु रमाकान्त के भाषण के बीच में ही जिस प्रकार के अभद्र शब्द घोषित किये जा रहे थे, वे किसी भी सभ्य

समाज के लिए शोभनीय नहीं थे। किन्तु रमाकान्त का ध्यान उस ओर नहीं था। वह समाज की जिस नब्ज पर हाथ रखे हुए था, वह तेज थी। परन्तु उसमें जीवन अधिक नहीं था।

उस सभा के बाद जब रमाकान्त और कमला अपने-अपने पथ पर चले, तो उनके पीछे चलते हुए लोगों में हुल्लड़ था और आवाजकशी का जोर था। रमाकान्त ने कहा—'मैं तुम्हें घर पहुँचा दूँ। साथ चलूँ?'

कमला ने कहा—'नहीं, मैं अकेली जाऊँगी।'

रमाकान्त बोला—'लोग उद्दण्ड हैं। पागल हैं।'

कमला बोली—'मैं इस समाज के विष को पी लूँगी। स्वयं भी अनुभव करूँगी।'

रमाकान्त चौराहे पर जाकर उससे छूट गया।

उस समय नगर की बत्तियाँ जल गयी थीं। चारों ओर प्रकाश था। कहीं अन्धेरा था। एक रास्ते की मोड़ पर जब कमला पहुँची, तो उसका सामना कुछ व्यक्तियों ने घेर लिया। उनमें से एक नौजवान ने आगे आगे आकर कहा—'तो तुम हो, हमें उपदेश देने वाली! तुम—'

बरबस ही, कमला ने देखा कि वह युवक शराब पिये हुए था। शराब की गन्ध उसके मुँह से आ रही थी। बात कहने के साथ ही, जब वह युवक और समीप आया, तो कमला ने ताड़ से उसके मुँह पर तमाचा मार दिया, उसने तड़प कर कहा—'हरामजादे सूअर—

तमाचा लगना था कि वह युवक जैसे तिलमिला गया। उसने पत्थर उठा लिया और कमला के खेंच मारा। किन्तु उस तमाचे और पत्थर चलने के साथ ही, उस स्थान का दृश्य ही बदल गया। उस युवक के साथी भाग गये और वह स्वयं पकड़ लिया गया। लोगों ने उसे पुलिस को सौंप दिया। पत्थर लगने से कमला के सिर में चोट लग गयी थी। खून बह निकला, इसलिए तुरन्त ही, लोगों ने उसे डाक्टर की दुकान पर पहुँचाया। डाक्टर ने पट्टी बाँधी और बाद में लोगों ने उसे घर पहुँचा दिया।

यह एक घटना थी कि जिसका कमला के मन पर अधिक प्रभाव पड़ा। पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'अच्छा यही है कि तुम इस पथ को छोड़ दो।

अपने घर में रहो। समाज का काम करने वाला लांछित भी किया जाता है, पीड़ित भी बनाया जाता है।'

कमला ने कहा—'पिताजी, मैं यह रास्ता नहीं छोड़ूँगी। मैं जिस पथ पर चलती हूँ, उस पर और आगे बढ़ूँगी।'

पण्डित जी ने पुत्री की इस बात का विरोध नहीं किया।

और अवस्था यह थी कि कमला का जीवन ही उस घटना ने बदल दिया। जब वह युवक अदालत में पेश किया गया, तो कमला ने वहाँ जाकर मजिस्ट्रेट से निवेदन किया कि मैं इस युवक को क्षमा करना चाहती हूँ, आपसे भी भिक्षा माँगती हूँ।'

किन्तु मजिस्ट्रेट ने उस युवक को सूखा नहीं छोड़ा। उसने जेल की सजा न देकर, उस युवक पर पचास रुपया जुर्माना कर दिया। आश्चर्य कि जुर्माना तुरन्त ही कमला ने अपने बटुवे से निकाला और अदालत में जमा कर दिया। जब वह अदालत के बाहर निकली, तो काफी व्यक्ति वहाँ जमा थे। वह युवक बिना किसी लज्जा के कमला की ओर झुका और उसके पैर पकड़ कर बोला—'बहिन, मैं क्षमा माँगता हूँ।'

कमला ने उसे ऊपर उठाया और कहा—'भाई के कसूर को बहन क्षमा करती है। तुम घर जाओ!'

इस घटना का नगर की जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। कमला का सम्मान और अधिक बढ़ गया।

किन्तु कमला के साथ जो घटना घटी, और उस पर कमला द्वारा जिस प्रकार पर्दा डाला गया, उसको देखकर, रमाकान्त मौन था। गम्भीर भी था। वह युवक कह रहा था कि सचमुच, समाज शिक्षित नहीं! सभ्य नहीं। इस समाज में काम करने वाला व्यक्ति भी निर्लज्ज होना चाहिए। मान और अपमान का उसके पास कोई महत्व नहीं रहना चाहिए! चूँकि घटना कमला के साथ घटी थी, इसलिए उसकी उद्विग्नता रमाकान्त को भी प्राप्त हुई। यद्यपि, कमला ने जब से उस संस्था के काम में अपने को लगाया, तब से एक बार भी उन दोनों के बीच में पीछे छुटी हुई कथा-वार्ता पर चर्चा नहीं चली। मानो उन दोनों के पास उस चर्चा को चलाने का न तो समय था, न उन दोनों का जीवन ही साध्य था। इसलिए, अपने मन की बात जब दोनों

ने ही एक-दूसरे से नहीं कही, तो यह भी स्पष्ट था कि बात दोनों के पास थी। मानों दोनों के मनोभावों की संगति भी एक थी। उसमें समता थी। समन्वय की भावना थी।

सरला उस संस्था से सम्बन्धित होकर भी, अधिक योग नहीं देती थी। उसका काम पहिले पढ़ाई करना था। फिर घर का काम था। पण्डित ज्ञाननाथ यद्यपि, मुख्य रूप से किसी काम में नहीं लगे थे, परन्तु वे अनेक संस्थाओं से सम्बन्धित थे। कभी-कभी वे रमाकान्त और कमला के निमन्त्रण पर उस जन-सेवा-संस्था में भी पहुँचते। वे उस कार्य-प्रणाली को देखकर सन्तोष प्रगट करते।

उन्हीं दिनों की बात है कि एक दिन अपने कार्यालय में बैठे हुए, जब रमाकान्त और कमला को अधिक समय हो गया, तो तभी रमाकान्त ने कमला को सम्बोधित किया और कहा—'तुम घर जाओ कमला देवी !'

कमला ने कहा—'यह काम समाप्त करना है। इस डाक को आज ही भेज देना है।'

रमाकान्त ने कहा—'काम बढ़ रहा है। इस कार्यालय के काम के लिए कोई आदमी रखना आवश्यक है। आखिर हमारे पौरुष की भी सीमा है !'

इतना सुनकर कमला ने रमाकान्त की ओर देखा। उसने बात का उत्तर नहीं दिया।

रामाकान्त ने फिर कहा—'देखता हूँ तुम्हारा स्वास्थ्य गिर रहा है। ऐसे क्या जीवन चलता है।'

कमला मुसकरायी—'और तुम्हारे मुँह पर तो जैसे खून छलकता है !'

रमाकान्त बोला—'मेरी क्या बात, मैं पुरुष हूँ। पुरुष काम करने के लिए ही बना है।'

कमला हँस पड़ी—'वाह-वाह ! तो यों कहो, इस पुरुष ने ही काम करने का बीड़ा उठाया है।'

रमाकान्त जैसे चौंक गया। बोला—'न, न, मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि पुरुष ही सर्वेसर्वा है। मैं स्त्री को कार्य-सिद्धि और स्वयं सिद्ध मानता हूँ।'

कमला ने कहा—'तो बस, यही मानिये और अनुभव कीजिये ?' वह बोली—'अभी आपके पास इतना पैसा नहीं, कि काम करने के लिए आदमी

रखे जायें। हम लोग भी जो इस संस्था से गुजारा कर लेते हैं, तो काम करने के लिए ही प्राप्त करते हैं। नेतागिरी करके क्या उस संस्था का जीवन रख सकते हैं!'

रमाकान्त ने कहा—'मैं इसे स्वीकार करता हूँ।'

'और आप यह नहीं मानते कि किसी भी संस्था को चलाने के लिए उसके कार्य-कर्ताओं को पहिले ईमानदार बनना पड़ता है। मेरे पिताजी की यही धारणा है।'

रमाकान्त ने कहा—'तुम्हारे पिताजी का अनुभव बड़ा है। उनका कार्य-क्षेत्र भी बड़ा रहा है।'

कमला बोली—'उनका जीवन ही ऐसे कार्य में लगा है।'

रमाकान्त ने कहा—'मैं बहुत दिनों से उनके दर्शन नहीं कर सका। कार्याधिक्य के कारण अपने सभी स्नेहियों से छूट गया।'

कमला ने कहा—'वे प्रायः जान लेते हैं। मुझसे बात करते है। तो संस्था की गतिविधि का भी लेखा समझ लेते हैं।

रमाकान्त ने कहा—'वे देवता हैं। ऋषि हैं।'

कमला ने कहा—'मेरे पिताजी ने दीनता में रह कर ही जीवन के दर्शन किये हैं। यही उन्होंने हम बहिनों को सिखाया है।'

रमाकान्त ने कहा—'काश, हम भी वही बनें!'

कमला हँस दी—'काम करता है, तो आदमी बनता है। इच्छा और स्वार्थ को पहिले छोड़ा जाता है।'

और अपनी उस भावनामयी अवस्था में रमाकान्त जैसे अपने मानस में ही डूब गया—और खो गया।

: २१ :

पण्डित ज्ञाननाथ के विचारों के अनुरूप, उनकी पुत्रियाँ भी इस बात को समझती थीं कि चरित्रहीन समाज में सम्मान पूर्वक नहीं रहा जा सकता।

ऐसे वातावरण में रहते हुए रास्ते में पग-पग पर काँटे मिलते हैं और कठि-नाइयाँ उपस्थित होती हैं। पण्डितजी का यह दृढ़ मत बन गया था कि जब देश के व्यक्तियों का चरित्र नहीं, सामाजिक धरातल ऊँचा नहीं, इसलिये सुगमता से अच्छे जीवन का उपयोग नहीं किया जा सकता। यद्यपि, वे इस बात को समझते थे कि आर्थिक दासता के कारण ही आदमी हीन बनता है और दूसरे को ठगना पसन्द करता है। फलस्वरूप उनका मत यह भी था कि एक दिन आज सरीखा ही हमारा देश नहीं था। समर्थ था। जागरूक था। यहाँ का व्यक्ति उदार दीखता था। 'बुभुक्षितानां किम् न करोऽति पापम्' वाली उक्ति उन्हें इस दिशा में भी उचित लगती थी। अतएव उनके मन में बात थी कि सदियों से चली आई दासता ने देश को पंगु और कायर बना दिया है। अन्त में उस विषमता ने चरित्र भी छीन लिया। पण्डितजी इस बात को बड़े गौरव के साथ कहते कि पंजाब भारत का सिंहद्वार रहा है। विदेशियों की तेज तलवार का प्रथमवार पंजाब ने अपने ऊपर लिया। आज भी अपनी रक्षा के लिए पंजाबी युवक और पंजाबी युवतियों ने सिर से कफन बाँध कर विपक्षियों का सामना किया...विभाजन हुआ, लोग गृह हीन बने तो पंजाब ने अपने पौरुष से काम लिया, देश को पुरुषार्थी बनकर दिखा दिया......

वस्तुत: ज्ञाननाथजी की यह गर्वोक्ति असत्य नहीं थी। उसमें बल था। सत्य था। परन्तु स्वयं उनकी पुत्री कमला और सरला समस्त देश की चरित्र-हीनता को लक्ष कर जैसे अपने अन्तर्मन में ही परेशान थीं, खिन्न थीं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा और लाज जाने का भी भय था। आये दिन नारियों का अप-हरण, लूट के समाचारों से उनके मन का सन्देह पुष्ट बनता था। किन्तु कमला ने जो पग आगे बढ़ा दिया था, वह अब पीछे नहीं हट सकता। सरला का प्रश्न उसके सामने था। परन्तु सरला चंचल थी। अतिशय सुन्दरी भी। उसका यौवन अंगूरी हाला के समान उस शरीर रूपी प्याले में बरबस हा छलछला उठा था। वह यौवन अपनी मादक गन्ध चारों ओर फैला रहा था। कदाचित यही कारण था कि कमला अपनी ओर से सदा ही इस बात का प्रयत्न करती कि समय पर घर पहुँचे और सरला की गति-विधि पर ध्यान करे। किन्तु अपनी जीजी की उस अप्रत्याशित आशंका को पाकर स्वयं सरला को यह अच्छा नहीं लगता था। उसे यह पसन्द नहीं था कि जीजी बार-बार

उसे टोके। वह घर में देर से कैसे आई, कहाँ रही, आदि बातों का ब्यौरा ले। इसलिए जब भी ऐसा प्रसंग चलता, तो सरला या तो मौन रह जाती, बात को टाल जाती, अथवा आँखों में बल डालकर कह देती, मैं सहेली के यहाँ थी, स्कूल का काम पूरा कर रही थी।

इस प्रकार उस घर में, उन दो युवा लड़कियों के बीच धीरे-धीरे मनःस्ताप और हृदयों को दूर करने का साधन बन रहा था। कमला ने अपने ऊपर जिस उत्तरदायित्व को ले लिया था, तो उससे अनायास ही उससे बुजुर्गी का भाव आ गया। वह समाज के जिस चरित्र निर्माण और योजना बद्ध संघठन के काम में लग गयी तो उसने भी उसे विपरीत धारा में प्रवाहित कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि यौवन की उस भरी दोपहरी में जवानी की उस आँधी में कमला ने एकबार भी यह अनुभव नहीं किया कि उसके जीवन की भी कोई माँग है...उसे भी एक साथी की दरकार है कि जो उसकी बात सुने और अपनी कहे। यद्यपि, इस सचाई से इन्कार करना शायद कमला सरीखी भावनामयी युवती के लिए शोभनीय नहीं था कि जब भी दो-चार दिन तक रमाकान्त उसे न दीख पड़ता, तो वह चिन्तित बनती और उसके लौट आने की आतुर भाव से प्रतीक्षा करती। कमला के मन का यह चोर मानो सर्वव्यापी था और उसके समूचे जीवन पर अपना प्रभाव डाल चुका था। अवसर की बात यह कि रमाबाबू का जो परिष्कृत रूप कमला ने उस अवस्था में पाया, वह वैभवपूर्ण-जीवन में नहीं दीखा। और जिस मनोयोग से रमाकान्त अपने काम में लगा था, वह भी कमला के लिए सर्वथा आदरणीय और ग्रहणीय था। किन्तु अपने मन के उस चोर की कहानी को रात के शान्त प्रहर में वह फिर स्मृति पट पर उतरता पाती, तो तभी कमला के मन की हीनता उसे चौंका देती। वह तुरन्त कहती, तो तुझे सरला को रोकने का क्या अधिकार है? उसके यौवन की भी कोई माँग है। वह भी आकांक्षित है। उसकी हृदय तन्त्री के तार भी मधुर स्वरों से परिपूरित हैं। यही कारण था कि कमला उस रात के मौसम में, दुनिया की बन्द आँखों के आगे उस सरला को झकझोरती और दुलार के साथ उसका चुम्बन लेती। उस अवस्था में ही वह सरला का सिर अपनी छाती से लगा कर, मधुर भावना में विरत हुई कहती—'तू मेरी बात का बुरा तो नहीं मानती सरला! देख, मैं तो तेरा ही

भला सोचती हूँ। मैं दुनिया की स्वार्थी और तेज आँखों को देखती हूँ। मैं तुझे आदर्शमयी नारी बनती हुई पाना चाहती हूँ। मेरी यही साध है। बस, यही एक आकांक्षा !'

सरला कहती—'तुम मुझ पर सन्देह मत किया करो, जीजी !'

जीजी आतुर बनकर कहती—'अरी, पगली ! मैं क्यों तुझ पर सन्देह करूँगी ! मैं तो तुझे नित्य टँकोरती हूँ। तेरा पथ-प्रदर्शन करती हूँ।'

परन्तु अवस्था इसके विपरीत थी। सरला के मन की दिशा और थी, कमला की और। ये दोनों बहिनें मानो दो पृथक रास्तों की पथिक बन रही थीं। कमला सोचती थी जब हजारों बहिनों का सोहाग चला गया, असमय ही उनका जीवन भी चला गया, तो मुझे उस रास्ते पर नहीं जाना चाहिए, जीवन की उस क्षणिक आकांक्षा तथा आवेश को रोक रखना चाहिए। किन्तु सरला के मन की बात थी कि जब जीवन मिला है, इच्छाओं का समूह भी उसके पास एकत्र हो गया है, तो वह उसे रोक नहीं सकेगी। वह अपने को उलझन में नहीं डालेगी। जीवन के आवेग को विकृत नहीं होने देगी। कदाचित इसीलिए सरला जीवन में खेलना और उछलना पसन्द करती थी। वह जिस स्कूल में पढ़ती, तो वहाँ यद्यपि लड़कियाँ ही पढ़तीं, परन्तु उस स्कूल की सीमा के बाहर जो शहर भर में युवकों का समूह एकत्र था, तो उसमें से अनेक से सरला का परिचय हो गया। सरला को बचपन से ही गाने का शौक था। अपने पीछे छूटे हुए स्कूल के ड्रामों में भी उसका विशिष्ट पार्ट होता था। फलस्वरूप उस अवस्था में भी, उसे जल्दी ही ऐसे प्रदर्शन करने का अवसर मिल गया। नगर के व्यक्तियों की दृष्टि में सरला का रूप और नाम आ गया। नगर में जब भी कोई विशेष ड्रामा किया जाता, तो सरला का आवाहन होता। इस प्रकार बड़ी बहिन सेवा-क्षेत्र में अवतरित होकर नगर की दृष्टि में आई और छोटी अपने कला चातुर्य्य और सुरीले गानों के कारण। फल यह हुआ कि अपनी पढ़ाई के साथ-साथ सरला ने अपने घर को आर्थिक सहयोग देना भी आरम्भ कर दिया। सप्ताह में एक या दो बार उसे रेडियो प्रोग्राम भी मिलने लगा। यों पण्डित ज्ञाननाथ की पुत्रियों का नाम कला, संस्कृति और सेवा के द्वारा सुनाई देने लगा। लोग उनके घर पर आने लगे। उन आने वालों में सभी प्रकार के व्यक्ति थे, कुछ पण्डित ज्ञाननाथ के परि-

चित थे, कुछ कमला के और कुछ सरला कुमारी के ! स्थिति यह हुई कि उस मकान में प्रातः से रात तक किसी-न-किसी व्यक्ति का आवागमन निरन्तर रहने लगा ।

चूँकि पण्डित ज्ञाननाथ की दोनों पुत्रियाँ समर्थ थीं, समाज के कार्य-क्षेत्र में उतर चुकी थीं, उनके पास लोगों की आवाजाही लगी थी, इसलिए लोगों ने बरबस ही कानाफूसी आरम्भ की कि इस बूढ़े की (ज्ञाननाथ जी की) ये पुत्रियाँ अच्छी नहीं हैं । सुन्दर हैं, जवान हैं तो इनके चारों ओर नगर के रईसों और उछलते हुए हृदयों के लिये युवकों की भीड़ लगी रहती है । बाप के सामने ही बेटियों की जवानी लुट रही है...बेहयाई सीमा को पार गयी है...ये पंजाबी लड़कियाँ ही,...ही ..ही...ही...हो...हो......'

इस प्रकार पण्डित ज्ञाननाथ जिस मकान में रहते, मोहल्ले वालों की उस पर निगाह रहती । और वे निगाहें उन्हीं लोगों की थीं कि जो समाज में शिक्षित और सभ्य कहे जाते थे । जिनकी उन लड़कियों के प्रति आसक्ति थी, वही इस प्रकार की धारणा अपने मन में रखते थे । वे लोग उस गन्दी दुर्भावना का प्रचार करते । जब पण्डित ज्ञाननाथ दिल्ली में आये थे, तो उसके बाद ही उनके किसी मित्र ने कहा था कि यहाँ पर एक व्यक्ति को मार कर जब उसका घर देखा गया तो एक बक्स में कुरान के साथ गीता भी पाई गयी । इसलिए वह प्रायः कहते, सभी को दोष नहीं दिया जा सकता । समाज का चरित्र जरूर दूषित है, परन्तु प्रत्येक नर और नारी को उसका शिकार बना हुआ भी नहीं समझा जा सकता । किन्तु जिस समाज की दृष्टि उनकी पुत्रियों पर थी, उस सौन्दर्य के प्रति जिनकी आसक्ति बढ़ रही थी, उन्हें यह कहते हुए संकोच नहीं था कि उस घर की आमदनी अनन्त है, इन लड़कियों की पहुँच भी असीमित है...

एक दिन रमाकान्त और कमला किसी गाँव की सभा में भाषण देने गये थे । वे दोनों वहाँ से लौट रहे थे । रास्ते में रमाकान्त ने सरला का प्रश्न उठाया और कहा—'मैंने अनेक व्यक्तियों के मुँह से सरला का नाम सुना है । सुनता हूँ उसका गाना और अभिनय उसे दर्शनीय और लोगों की चर्चा का का विषय बना रहा है ।'

कमला ने कहा—'सरला ने अपना एक रास्ता चुन लिया है ।'

'क्या भावी पति भी चुन लिया है ?' रमाकान्त ने पूछा।

कमला बोली—'सम्भवतः ऐसा नहीं हुआ। कदाचित इसलिए नहीं कि उसकी जीजी ने स्वयं अपने लिए कोई निर्णय नहीं किया। और मैंने उससे कह दिया है कि विवाह की बात को मैंने महत्व नहीं दिया, जिस दिन आवश्यकता होगी, तो साथी ढूँढ लिया जायगा।'

कमला के मुँह से साथी 'ढूँढ' लेने की बात सुनकर, स्वभावतः ही रमाकान्त को अच्छा नहीं लगा। क्योंकि उसके मन की तो धारणा थी कि कमला ने साथी चुन लिया है, वह पा भी लिया है। और वह मैं हूँ। विभाजन के बाद मेरे और कमला के मध्य में जो एक दरार पड़ी, वह अब पट गयी है। परिस्थितियों ने हमें फिर 'एक' कर दिया है। परन्तु जब उसने कमला को अपनी बात इस प्रकार कहते हुए पाया, तो वह एकाएक बोल नहीं सका। वह जैसे उस प्रसंग की दुरूहता में खो गया।

किन्तु कमला ने जब रमाकान्त को अपनी बात सुनकर मौन पाया, तो उसने स्वतः ही समझ लिया कि रमाकान्त जहाँ पहुँच गया है। इसके मन पर कहाँ चोट लगी है। इसीलिए, वह रमाकान्त की ओर देखकर मुसकरायी। अपने स्वेत फेनिल सरीखे दाँतों से हँसी। उसी अवस्था में वह बोली—'रमाबाबू, मैंने समझा है कि जीवन कहीं भी समतल नहीं है। इसे सम बनाने के लिए जिस संयम और ममत्व की हमें आवश्यकता है, वह नहीं मिलता। सभी को प्राप्त नहीं होता।' इतना कहते हुए, कमला ने साँस भरी और छोड़ दी। उसने रास्ते में अपने सिर के ऊपर उड़ता हुआ एक पंछी देखा और उसी को दूर जाता हुआ पाकर, उसने अतिशय गम्भीर हुए स्वर में फिर कहा—'इस जन-सेवा-संघ में काम करके मैंने अपना भला अधिक किया है। मैंने इतने समय में उन हजारों नारियों को देखा है कि जिनका जीवन असमय ही अपने पतियों के कारण दुर्गन्धिपूर्ण हो गया। वह जीवन विनाश को प्राप्त हो गया......'

तुरन्त ही रमाकान्त ने कहा—'आज तुमने यह बात कही। इतने दिनों में मैंने भी देखा है कि अपनी पत्नियों की अदूरदर्शिता, अविचार और अनपढ़ होने के कारण अनेक व्यक्तियों का जीवन अनायास ही अन्धेरे में पड़ा रहा। उन्हें सुख नहीं मिला। घर में शांति का वातावरण भी प्राप्त नहीं हुआ।'

कमला ने कहा—'एक बार पिताजी कहते थे कि विवाह वासना पूर्ति और जीवन का मनोरंजन करने के अतिरिक्त आज कुछ नहीं है। एकदिन इसकी इसलिए महत्ता थी कि इसे सन्तान उत्पत्ति का साधन माना जाता था। दो विभिन्न प्रकार की इन्द्रियों का संयोग मानव-समाज की इच्छा का समर्थन करता था। परन्तु आज तो उसका रूप ही भ्रष्ट हो गया है। पुरुष और नारी के इस समाज ने अपने को वासना का क्रीतदास बना लिया है!'

रमाकान्त ने कहा—'दोनों ही अधोगति को प्राप्त हो गये हैं। यह भी मानता हूँ पुरुष ने नारी का पतन कर दिया है। समाज की नारी भी पुरुष के हाथों में खेल गयी, उसने अपने को वासना के हाथों समर्पित कर दिया।'

कमला के मन में बात आई कि कहे, नारी ने अपने को नहीं बेचा, पुरुष ने उसे बाध्य किया है, परन्तु उसने अपनी बात को रोक लिया। उस विषय में तर्क करना भी संगत नहीं समझा।

किन्तु रमाकान्त ने फिर कहा—'प्रश्न मेरे सामने भी है। माता-पिता का अंकुश अब भी मुझे परेशान करता है। पिछले सप्ताह ही मा बीमार पड़ी, तो उसने फिर मुझे टँकोरा, 'तू बहू न लायेगा, विवाह न करेगा, तो यह घर चौपट हो जायगा। मेरे बाद क्या तुझे भी सन्तोष मिलेगा।'

जिज्ञासा के भाव में कमला ने प्रश्न किया—'तो आपने क्या कहा? क्या विवाह करने की बात को स्वीकार नहीं किया?'

मानो आतुर बनकर रमाकान्त ने कहा—'उस समय मैंने मा को समझा दिया। उसका मन रखने के लिए कह दिया, अच्छा मैं विवाह करूँगा। कर लूँगा।'

कमला ने कहा—'यह ठीक ही है कि आपको विवाह कर लेना चाहिए। माता-पिता की सेवा आप नहीं कर सकते, तो अपना प्रतिनिधि देना चाहिए।'

इतनी बात सुन कर, रमाकान्त सूखे भाव में हँस दिया। उसके मन में बात थी कि कमला से प्रश्न करे, तुमने क्या निश्चय किया। किन्तु उसने इस बात को नहीं उठाया। उसे बात याद आई कि पिछले दिनों ही, इसी प्रकार के प्रसंग पर कमला ने रमाबाबू को सुनाया था कि मैं विवाह को प्रेम नहीं मानती। दो आत्माओं का मिलन भी नहीं मानती। जीवन का समझौता मानती

हूँ। जब दो व्यक्ति अभावग्रस्त होते हैं, तो आपस में व्यवहार करते हैं, लेन-देन करते हैं। इसी प्रकार इस सामाजिक और इन्द्रियों की भूख को मिटाने के लिए नर और नारी का यह समूह विवाह करता है। विवाह एक के बाद दूसरे से भी किया जा सकता है। पहिला छोड़ दिया जाता है। लोग विवाह को धार्मिक और सांस्कृतिक संज्ञा अवश्य देते हैं, पर समाज ने उसे कभी व्यावहारिक रूप से स्वीकार नहीं किया।'

उसी समय रमाकान्त ने कहा था—'ऐसे समाज की व्यवस्था नहीं रहती। धनिकों ने इस विषय में अधिक अनाचार किया। एक-एक राजा ने बहुत से विवाह किये। आज भी नारी के साथ न्याय नहीं किया जाता। बच्चों पर उसका अधिकार नहीं होता।'

मानो कमला ने अपने होंठ काट कर कहा—'नारी के सभी अधिकार छीने गये हैं। बर्बर पुरुष सदा मदान्ध रहा है। सामाजिक रूप से पुरुष ने उसे कुछ भी नहीं दिया। सम्पत्ति का अधिकार भी उसी ने प्राप्त किया।' वह बोली—'महाशय, यह भी एक दूकानदारी है। जिस दुकान पर माल होता है, ग्राहक वहीं जाता है। सुन्दर नारी की ओर पुरुष का अधिक झुकाव होता है। और आज तो इस क्रयविक्रय की दुनिया में पैसा ही सर्वोपरि है। इसी के सहारे सभी कुछ पाया जाता है। इसीलिए मैंने इस विषय को फिलहाल अपने मन से निकाल दिया। मेरा मन कुण्ठित हो चुका है। विवाह क्या है, यह मैंने समझ लिया।'

कमला की उस बात को याद कर, रमाकान्त ने अपने मन में कहा, कमला विरोधी है, विद्रोही है, इसके मन में आग है। इसे क्या छुआ जा सकता है,—नहीं।

कदाचित इसी से उन क्षणों में उसने समझा कि जो कमला उसके अत्यन्त निकट थी, वही उससे दूर थी,—उसकी कल्पना से दूर?

: २२ :

उन्हीं दिनों अशफाक मियाँ ने बाहर दो पत्र दिये। एक पण्डित ज्ञाननाथ के नाम और दूसरा कमला के नाम। पण्डित जी को लिखा पत्र साधारण था। वह कहाँ पहुँचा है और कहाँ जाने का विचार रखता है, यही उस पत्र में लिखा था। परन्तु कमला का पत्र बड़ा था। पत्र मिश्र से लिखा गया था। वह मिश्र के एक छोटे ग्राम में ठहरा हुआ था। उस गाँव में वह जिस परिवार का अतिथि था, उसका भी उस पत्र में वर्णन था। पत्र में अपने जीवन के प्रति उसने लिखा था कि मैं जीवन में एक स्वच्छन्द पंछी के समान उड़ना चाहता हूँ। किन्तु मैं मनुष्य हूँ, इसलिए अपना उत्तरदायित्व भी अनुभव करता हूँ। अशफाक ने बताया कि पिता की जायदाद से मुझे इतना रुपया प्राप्त हुआ कि मैं संसार का भ्रमण कर सकूँ। और यह भ्रमण मैं इसलिए कर रहा हूँ कि जीवन के प्रति अधिक जागरूक और संजीदा बन सकूँ।

उस पत्र में अशफाक मियाँ ने एक बात और लिखी। उसने कहा कि परिस्थिति वश मैं तुम्हारे पिताजी से जीवन के जाने किस अज्ञात क्षण में मिला था। मैं आज अनुभव करता हूँ कि मेरा वह क्षण अतिशय सुखद और अमूल्य था। मैंने निरन्तर देखा कि तुम्हारे पिताजी कभी पैसे की ओर नहीं झुके। कहने को कहा जा सकता है कि वह ऐसा भाग्य नहीं पा सके। परन्तु मेरा अपना मत यह है कि जिन विचारों को पण्डितजी ने अपने जीवन में संकलित किया, यदि पैसे की ओर बढ़ते, तो अपने उन विचारों को मार देते, जीवन का नाश कर देते। क्योंकि विचारों का नाम ही जीवन है। इसी से, यह इन्सान ऊँचा और नीचा है। अतएव मैं पण्डितजी को खलीफा मानता हूँ। और चूँकि तुम उनकी पुत्री हो, भावनामयी हो, तो इतना कहना नहीं भूलूँगा कि तुम जीवन को किसी कुएँ में न डाल देना। नारी की चलती आई परिपाटी का अनुसरण भी न कर बैठना। आखिर जीवन एक सोपान है, एक अवसर है, एक आहुति है कि जिसका विशिष्ट और तेजोमय प्रभाव मनुष्य को तभी मिलता है 'कि जब वह उसका अर्थ समझने में सिद्ध होता है। उसने लिखा, हमारा देश कूपमण्डूकों का बसेरा है। पुरानी लीक पर चलना ही वहाँ के व्यक्ति को पसन्द आता है।

जहाँ-जहाँ से अशफाक मियाँ पर्यटन करके मिश्र पहुँचे, उसने सभी जगह का संक्षिप्त हाल पत्र में लिखा था। इसीलिए उसने बताया कि मिश्र भी मुसलमानों का देश है। परन्तु अजीब बात है कि भारत के मुसलमान से यहाँ का मुसलमान किसी दशा में भी मेल नहीं खाता।

जब अशफाक ने पत्र का अन्त किया तो सरला को नमस्ते लिखा और कहा उसकी सरल और स्पष्ट बातों का प्रभाव आज भी मेरे मन पर पड़ा है।

उस पत्र को पढ़कर कमला ने जब उसे एक किताब के अन्दर रख दिया, तो उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ वहाँ आये। उन्होंने आते ही कहा—'आज रमाबाबू के पिताजी मिले। बहुत सी बातें करते रहे। विवाह की चर्चा भी चलाई।' तभी पण्डितजी ने कमला की आँखों में झाँक कर कहा—'बेटी, तुम्हारी क्या राय है? देखता हूँ, तुमने अपने ऊपर अधिक कार्य ले लिया है। यह तो मुझे अच्छा लगा। परन्तु तुम अविवाहित रहो, ऐसा मेरे मन ने कभी भी पसन्द नहीं किया। तुम्हारे सामने अपनी छोटी बहिन का भी प्रश्न है। सरला ने जिस रास्ते पर अपने को डाल दिया है, वह भी मुझे कभी पसन्द नहीं आया।'

कमला ने कहा—'सरला का मार्ग साफ है। उसने कला और संगीत में अपने को लगाया है। बताइये, आपको क्यों बुरा लगता है?'

इतनी बात सुनकर पण्डित ज्ञाननाथ जी चिढ़ गये—'सुनती हो, समाज क्या कहता है! मुँह पर नहीं कहता, पीछे तो कहता है।'

उसी स्वर में कमला ने कहा—'आप समाज की बात पर जाओगे, तो धोखा खाओगे, पिताजी! निराश भी बनोगे! जिस सभ्य समाज की ओर आप देखते हैं, उसने चरित्र को शराब के प्याले में डाल कर पी लिया है! दूसरों को उपदेश देता है और स्वयं...'

बीच में ही पण्डित जी ने क्रुद्ध स्वर में कहा—'लेकिन मैं अपने घर में शराब का प्याला नहीं चलने दूँगा। चरित्र को छोड़कर मेरे पास और कोई सम्पत्ति नहीं। इसी सम्पत्ति पर मेरा जीवन टिका है।'

कमला ने संयत और धीर स्वर में कहा—'आप अपनी पुत्री पर ऐसा अविश्वास न करें। सरला को अपने पैरों पर खड़ी होने दें।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'लोगों में चर्चा है कि मैं लड़कियों की कमाई खाता

हूँ। सरला पढ़ने जाती है, पर क्या वह पढ़ती है! वह नाच-गाने के चक्कर में रहती है। उसी से पैसा प्राप्त करती है। सुन्दर वस्त्र पहनती है। लिपस्टिक, पाउडर लगाती है।'

कमला ने उसी धीर स्वर में कहा—'जब पैसा आता है, तो उसका उपयोग भी साथ आता है। पिताजी, सरला अभी बच्ची है। साथियों को देखकर वह भी इच्छा करती है।'

'और तुम्हारी इच्छा का क्या अर्थ है?' पण्डितजी ने मानो कमला को खोजते हुए कहा—'जन-सेवा का कार्य मेरी दृष्टि में सदा ऊँचा रहा है, परन्तु जिस एकाकी जीवन को लेकर तुम इस भवसागर में तैरना चाहती हो, मुझे तुम्हारे भी डूब जाने का सन्देह होता है।'

अपने प्रति पिता से इतनी बात सुनकर कमला मुसकरा दी—'पिताजी, आप का सन्देह सच्चा है। इस भवसागर में सभी को डूबना पड़ता है। शायद एक दिन मुझे भी।' इतना कहते हुए कमला गम्भीर बन गयी। वह बोली—'हाँ, इतनी बात मेरी जरूर है कि मेरे लिए आप जिस विवाह की बात सोचते हैं, रमाकान्त के साथ सोचते हैं, वह शायद सम्भव नहीं होगी।' वह कहने लगी—'पिताजी, जब आपने यह विषय छेड़ा है, मेरे सामने सीधी बात को रखा है, तो इतना निवेदन कर दूँ, रमाबाबू अच्छे साथी बन सकते हैं, अच्छे पति नहीं। आदि पुरुष की हीन मनोवृत्ति की भावना उनके भी पास है। वह शिक्षित हैं, समाज के अच्छे कार्य कर्त्ता हैं, परन्तु वह चोर भी हैं। जिस संस्था को जन्म देने में उनका बड़ा हाथ रहा है, उससे उन्होंने काफी रुपया उपार्जित किया है! आश्चर्य कि उन्होंने मुझसे भी छुपाया। संघ के पास एक भी पैसा नहीं है। उनकी माता और पिताजी निश्चय ही मुझे बहू बनाने की कल्पना करते होंगे, परन्तु मैंने तो निश्चय कर लिया है कि उनसे दूर का सम्बन्ध रखूँगी। उन्होंने जब पैसे के लिए समाज से चोरी की, तो नारी की भूख मिटाने के लिये मुझसे भी चोरी कर सकते हैं।'

ज्ञाननाथजी बोले—'और तुमने रमाकान्त को चोर समझ कर भी उस रहस्य का उद्घाटन नहीं किया। मेरा मत है कि तुमने भी चोरी को छुपाने का काम किया। उसे प्रोत्साहन दिया।'

कमला बोली—'मैं केवल पचास रुपया प्रतिमास प्राप्त करती हूँ। गुजारा

भर लेती हूँ। आप जानते हैं कि मैं घर का खर्च चलाने के लिए लेख लिखती हूँ। मैं शीघ्र ही इस संघ से नाता तोड़ देनेवाली हूँ। वहाँ जाकर इतना उत्साह जरूर पाया है जो सेवा करना ही मेरा कर्म है—जीवन का महान कर्म!' उसने कहा—'जहाँ तक विवाह की बात का सम्बन्ध है, रमाबाबू उसी दिन मेरी दृष्टि से गिर गये थे कि जब मैंने सुना कि उन्हें यह ज्ञात हुआ, हम दोनों बहिनें एक रात किसी मुसलमान के घर में रहीं। हिन्दू-मुसलमान का पक्ष आज भी उनके मन में है। शरणार्थियों को वह आज भी प्रोत्साहन देते हैं। शरणार्थियों के लिए सरकार और समाज से जो सहायता उनके द्वारा वितरित की गयी, मुझे पता चला कि उसका बहुत सा रुपया भी वे खा गये। विश्वास कीजिये, अब उनके पास पैसा है। दोनों समय सुन्दर भोजन खाया जाता है। कुछ काम किया, तो नगर में सुन्दर मकान भी प्राप्त कर लिया है।'

ज्ञाननाथ जी ने दुःखी बनकर कहा—'बेटी, इस देश में यही होता है!'

कमला बोली—'पिताजी, मेरी आपसे विनय है, मुझे बाँधने की कल्पना मत कीजिये। मुझे इसी प्रकार रहने दीजिये। हाँ, सरला की बात अवश्य सोच लीजिये। आज मैं उससे कहूँगी। परन्तु अब उसका भी दृष्टिकोण बदल गया है। यह सत्य है कि उसने कुछ उपार्जित किया है। सम्मान भी पाया है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'बेटी, सम्मान तो तुमने पाया है।'

कमला ने कहा—'पिताजी, यह आपका आशीर्वाद है। आप से सुना हुआ ही तो मैंने लोगों से कहा है।'

परन्तु जब दूसरे दिन यह बात रमाकान्त के पिता को ज्ञात हुई कि स्वयं कमला उनके घर बहू के रूप में आने के लिए तैयार नहीं, तो उन्हें आश्चर्य हुआ। जब उन्होंने रमाकान्त से कहा, तो उसने भी इस बात का विरोध नहीं किया। किन्तु पिता से सुनी हुई बात को रमाकान्त एकाएक भूल नहीं सका। वह अपने-आप में रुखे रहा। उसे इतना भरोसा नहीं था कि कमला ऐसा जवाब देगी। उससे उदासीन होगी। इसका परिणाम यह हुआ कि उस दिन से रमाकान्त प्रायः कमला से कम बोलता। उसके सम्पर्क में भी कम आना पसन्द करता। वह संघ की गतिविधि को भी अब कमला के समक्ष

पहिले के समान रखनी पसन्द न करता था। परन्तु उनका विरोध कोई साकार रूप ग्रहण करता, इससे पूर्व ही, कमला ने अपना इस्तीफा संघ के अध्यक्ष को सौंप दिया। फलस्वरूप, संघ की कार्य-कारिणी बुलायी गयी। उसमें कमला का इस्तीफा उपस्थित था। रमाकान्त उस संघ का मन्त्री था।

आरम्भ में ही अध्यक्ष ने कहा—'हमारे लिए इससे अधिक लज्जा की और कोई बात नहीं हो सकती कि कमला देवी ने हमारी गतिविधि को दोष-पूर्ण मानकर ही यह त्याग-पत्र दिया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि जन-सेवी-समाज के वे कार्यकर्ता ईमानदार नहीं। उनकी भावना स्वच्छ नहीं।'

अध्यक्ष ने कहा—'मेरी सम्मति से कमला देवी का त्यागपत्र स्वीकार नहीं करना चाहिए। उन्हें हमारे बीच में स्पष्ट कहना चाहिए कि उन्हें किस व्यक्ति की ईमानदारी पर सन्देह है। यही इस समाज का प्रथम और अन्तिम लक्ष्य है।'

कमला भी उस मीटिंग में उपस्थित थी। उसने अध्यक्ष की बात सुनी, तो तुरन्त रमाबाबू की ओर देखकर कहा—'आप इस सभा को ब्यौरा दें कि पिछले मास जो उन्होंने दस हजार रुपया खर्च किया, वह किस प्रकार व्यय हुआ। सभा के कागज इतना नहीं बताते। कई रकमें ऐसी हैं कि जिनको नहीं दिखाया गया। मेरा मत है कि इस प्रकार आपने काफी रुपया खा लिया। कुछ रकमें तो ऐसी हैं कि जिन्हें मेरे साथ ही प्राप्त किया गया था। उनका कहीं भी अभी तक उल्लेख नहीं आया।'

कमलादेवी से इतना सुनना था कि सभा में सन्नाटा छा गया। जब रमाबाबू ने दो मिनट तक विरोध प्रदर्शित नहीं किया, तो अध्यक्ष ने उनकी ओर देखकर कहा—'रमाकान्तजी, आप इस संस्था के प्राण रहे हैं। आपकी बदनामी संस्था की बदनामी है। मैं आशा करता हूँ कि आप सभा से इस्तीफा देंगे। जो रुपया आपने गबन किया, वह तुरन्त सभा को लौटा देंगे। अन्यथा, सार्वजनिक रूप से यह मामला अदालत में चलेगा। क्योंकि जिन्होंने रुपया दिया, उनके पास आपकी लिखी रसीदें होंगी। परन्तु वह रुपया यहाँ के खाते में नहीं आया। बैंक में भी जमा नहीं किया गया।'

बड़ा अपराध था। अपराधी ने मौन भाव में अपना अपराध भी स्वीकार कर लिया था। अतएव, रमाकान्त ने अपना त्याग पत्र दे दिया।

अध्यक्ष ने सभा को सम्बोधित करके कहा—'कमला देवी का नाम मैं मन्त्री पद के लिए रखता हूँ, आपसे स्वीकार करने का अनुरोध करता हूँ।'

कमला ने कहा—'मुझे क्षमा करें। इस भाव से ही मुझे काम करना है।'

किन्तु सभा ने अध्यक्ष का मत अधिक पसन्द किया। कमला को मन्त्री-पद दे दिया गया।

कमला ने कहा—'मेरी प्रार्थना है कि आप रमाबाबू को एक और अवसर दें। आदमी भूल करता है, क्षमा भी किया जाता है।'

अध्यक्ष ने कहा—'यह सार्वजनिक संस्था है। जिन व्यक्तियों ने नियम बनाये, यदि वही तोड़ते हैं तो फिर भगवान ही हमारा रक्षक है।'

इसके बाद अध्यक्ष ने सभा को विसर्जित कर दिया। रमाबाबू को पूरा हिसाब देने के लिए एक सप्ताह का अवसर दिया गया।

यद्यपि उस संस्था के व्यक्तियों की यह हार्दिक इच्छा थी कि रमाबाबू का मामला गुप्त रखा जाय। परन्तु बात फैली, तो फिर इसके दूसरे दिन नगर के पत्रों ने भी उस समाचार को मोटे अक्षरों में छाप दिया। यों अनायास ही रमाकान्त की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा। अवस्था यह हुई कि उसका घर से निकलना भी कठिन हो गया। उसे देखकर समाज थू-थू करने लगा। उस अवसर पर विविध प्रकार की बातें चलीं। किसी ने कहा, अजी, तुम भी तो उस छोकरी के पीछे लगे थे! सुन्दर चिड़िया पा गये थे। यह भूल गये कि काली नागन से खेल रहे थे। कोई कहता, अजी ऐसी बातें तो आती और जाती हैं। यह देखो न, सेवा और धर्म के नाम पर रुपया आ गया...जिन्दगी का सहारा बन गया...समझदार निकला, रमाकान्त! एक सहारा तो पा गया!

परिचितों में बात चलती, तो रमाकान्त कहता—'मुझे क्या पता था! डायन ने ऐसा काटा पानी-पानी हो गया।'

'पर यार, तुमने भी खूब हाथ मारा। गरीब बनकर आये थे, मालदार बन गये।'

'अजी, तो हुआ क्या! मैंने काम भी कम नहीं किया। जो करेगा, वह खायेगा। मैंने ही उस मुर्दा बनी हुई संस्था में प्राण डाल दिया।'

हाँ, हाँ, यह तो ठीक है। जो काम किया, उसका पुरस्कार पाना भी उचित था। तुमने उचित किया!'

'और तुम सोचते हो, मैं इस कमला को छोड़ दूँगा! बीच रास्ते पर पटकूँगा। पानी भी न माँगने दूँगा।'

'बेशक! बेशक! यह तो तुम्हें करना ही होगा! इस सुन्दर चिड़िया के पर न नोचे तो तुम्हारा नाम रमाकान्त नहीं रहेगा।'

अगले दिन जब पण्डित ज्ञाननाथ ने यह बात सुनी, तो उन्होंने अत्यन्त कातर भाव में कमला से कहा—'प्रतिरोध इतना सख्त करोगी, मुझे नहीं पता था। तुम्हें किनारा काट जाना ही उचित था। रमाकान्त का अनैतिक कर्म तो जरूर था पर तुम्हें भी क्षमा करना था। उसने परिस्थितिवश ऐसा किया था। घर में अभाव था। सम्पन्न परिवार का व्यक्ति यहाँ खाली हाथ आया।'

कमला ने रोषपूर्ण होकर कहा—'पिताजी मुझे यही करना था। मेरा कर्तव्य मुझे बाध्य करता था।'

तभी पिता ने अपने जीवन में प्रथम बार अनुभव किया कि यह उनकी पुत्री कमला कितनी रहस्यपूर्ण है, जिन्दगी की कितनी गहराई में उतरी हुई कि जिसका पता उन्हें भी सुगमता से नहीं लग रहा था...

: २३ :

मनुष्य-जीवन की छोटी-सी भूल, किस प्रकार जीवन भर के लिए उसे रोने और परेशान बने रहने के लिए बाध्य करती है, इसका ज्वलन्त उदाहरण रमाकान्त था। यद्यपि, उसने अपने जीवन में जिन विचारों का संकलन किया, उनमें कदाचित एक भी ऐसा नहीं था कि जो उसे विपरीत दिशा की ओर संकेत देता हो। किन्तु जिस पैसे का विरोध उसने भी किया, वह उसी पैसे की चोरी में पकड़ा गया, इस दारुण क्षोभ को वह एकाएक नहीं भूल सका।

अपने जीवन में रमाकान्त ने कमला को सहृदय और भावनामयी पाया था। परन्तु वह उसी के द्वारा पददलित हुआ। उस साँपिन ने उसे डस लिया। कमला ने उसकी आत्मा में जो काँटा चुभो दिया, उससे वह अतिशय पीड़ित था। रमाकान्त इतना व्याकुल था कि संस्था से सम्बन्ध विच्छेद करने के बाद घर से बाहर भी नहीं दिखायी देता था।

किन्तु जिस परिस्थितिवश रमाकान्त चोर बना, अविश्वासी और उपेक्षित बन गया, उन कारणों की यदि खोज की जाय, तो कहना पड़ेगा, यह श्राप भी उसे पैतृक धरोहर के रूप में प्राप्त था। सचाई यह थी कि रमाकान्त शिक्षित और सुधारवादी बनकर भी, उस प्रमाण से वंचित नहीं था कि जो उसे पिता से सौगात में मिला। और वह सौगात क्या थी? उसके पिता का वह पाप क्या? भले ही, इस सचाई को स्वयं रमाकान्त स्पष्ट नहीं कर सकता, वह अपने पिता का दोष भी नहीं पा सकता; परन्तु उसके पिता कितने कृपण और पक्के सूदखोर थे, इस बात को उनसे सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति जानता था। चूँकि रमाकान्त के पूर्वजों ने अत्यन्त क्षुद्र स्थल पर खड़े हुए भी अकस्मात एक बड़ी जायदाद प्राप्त कर ली थी, लेकिन इस प्रकार वह परिवार अपने खून में प्रवाहित हीन और ओछी प्रवृत्ति को नहीं त्याग सका। देर तक उस परिवार के व्यक्ति इसकी जातियों के यहाँ भोजन का निमन्त्रण खाते रहे। दान लेते रहे। वह निमन्त्रण खाने का सिलसिला अभी तक आरम्भ था। रमाकान्त के पिता को अन्न का दान लेना और खाना अब भी अशोभनीय नहीं मालूम होता था। निश्चय ही, यही वह हीनता थी कि जिसका प्रभाव रमाकांत के मन पर जमा था। वह भी उससे प्रभावित था। दिल्ली में आकर रमाकांत ने समाज-सुधार का काम किया, वह लोकप्रिय बना, परन्तु जब घर में पैसे का अभाव था, पैसा ही उसके जीवन निर्माण का मुखिया था, तो उस जिन्दगी के कारवाँ को आगे चलाने के लिए पैसा आवश्यक था। उस पैसे का विरोध करते हुए भी, उसकी परम्परा तथा प्रणाली को दोषयुक्त बताकर भी, रमाकांत उसके प्रति मोहित था, और इतना उसके जीवन के उस प्रथम प्रहर में ही समझा कि पैसा प्राप्त करने का मार्ग सीधा नहीं है। वह टेढ़ा मार्ग है। जटिल है। अतएव, वह पैसा नहीं पा सकता। इस जीवन को सुगमता से आगे नहीं बढ़ा सकता। रमाकान्त ने वह भी देखा और

अनुभव किया कि देश और समाज के ये नेता,ये सुधारक सभी पैसे की कल्पना करते हैं। ये सुधारवादी इसी चिन्तन में लीन हैं। भला ये सब कहाँ से पैसा पाते हैं? किस प्रकार प्राप्त करते हैं? न इनके कारखाने चलते हैं, न घर पर खेती का काम करते हैं। अत्यन्त मनन और सूक्ष्म दृष्टि से देख कर ही, रमाकान्त इस परिणाम पर पहुँचा कि समाज और देश का काम करने वाले उन्हीं से पैसा प्राप्त करते हैं कि जिनके लिए काम करते हैं और जिनका विरोध करते हैं। क्योंकि जब आदमी मैदान में उतरता है, तो वह सभी की दृष्टि में आता है। समाज का रहनुमा और मार्ग-दर्शक बनकर जनता का स्नेह और श्रद्धा-भाव प्राप्त करता है। इस तरह, जब रमाकान्त ने अपने को पाया, लोगों द्वारा आदर का भाव ले सका तो वह एकाएक ही अपना अधिकार और स्वत्व अधिक प्रभावशाली मानने लगा। उसने अनुभव किया कि मैं काम करता हूँ, मैं जनता को मार्ग दिखाता हूँ, तो उससे प्राप्त हुए धन से अपनी घरेलू आकांक्षाएँ भी पूरी कर सकता हूँ। यह दम्भ और हीन भाव जब उसके मन में आन्दोलित हुआ, तो पाई हुई कीर्ति और यश के सहारे-सहारे चलकर रमाकान्त लालच की उस दीवार पर भी चढ़ गया। किन्तु कितने खेद की बात थी कि वह उस ऊँचाई पर चढ़ तो गया, उतरना उसके वश में नहीं था। वह ऊपर पहुँच गया था। धरती पर खड़ा हुआ आदमी उसे छोटा दीखता था—जैसे भुनगा, मच्छर! लेकिन हवा चली, झोंका आया और उस विपरीत वातावरण के उत्पन्न होते ही, वह ऐसा गिरा इतना नीचे आ गया कि मुँह के बल धराशायी हो गया। उस चोट से रमाकान्त का शरीर, आत्मा और मन क्षत-क्षत हो गया। वह तड़प गया। जीवन की समूची टीस से व्याकुल बन गया। बरबस ही, वह कराह उठा।

इस प्रकार कई दिनों तक रमाकान्त घर से नहीं निकला। उसके मित्र अधिक बन गये थे, उनमें से अधिकांश आते और चले जाते। परन्तु उन मित्रों में से कदाचित ही कोई ऐसा हो, जो उसकी पीठ पीछे यह न कहता हो कि जैसा किया, वैसा पाया! वह कहते, क्या हुआ कि अप्रतिष्ठा की बात बनी, रमाकान्त रुपया तो पा गया, अब जिन्दगी भर मौज लेगा। संस्था ने अदालत में दावा भी किया, तो एक-दो वर्ष की सजा भुगत आयेगा।

अस्तु, जो हो, यह सचाई थी कि उन दिनों रमाबाबू और कमला के

उस विरोधाभास का जनता ने भले ही आनन्द न लिया, परन्तु जो उसके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति थे, उनकी चर्चा का एक ताजा और मजेदार मसालाजरूर बन गया। वे लोग पहिले आपस में इस बात की चर्चा करते थे कि रमाकान्त ने कमला को अपने जाल में फाँसा है। निश्चय ही, इन दोनों का एक दिन पति-पत्नी का सम्बन्ध भी हो जाने वाला है। और इस चर्चा का एक कारण यह भी था जब तब रमाकांत के समक्ष उसके मित्रों ने हास्य के भाव में इस बात को रखा, तो उसने स्वतः भी मुसकराकर, अथवा मौनभाव में, उस बात का समर्थन किया। उसने इस बात को शब्दों से भी स्वीकार किया था। वह सदा कमला की प्रशंसा करता। वह उन मित्रों को यह बताने में भी सुख तथा गर्व अनुभव करता कि कमला से उसका पुराना परिचय है। उन दोनों के विवाह सम्बन्ध की बात को चले भी एक जमाना हो चुका है। उस आरम्भिक चर्चा का विषय समाप्त हो गया है। अब तो आगे की रस्म को पूरी कर लेना है।

'तो यह कहिये, अपने साथ भावी पत्नी को देश-सेवा और समाज-सेवा का पाठ दिया जा रहा है। तुम भाग्यशाली हो भाई! कमला सरीखी सुन्दर और भावनामयी पत्नी पाकर तुम जीवन का समूचा सुख पा सकते हो। पा गये हो।' यह भी रमाकांत से कहा जाता था।

लेकिन जब कमला ने स्वतः ही रमाकांत का विरोध किया, उसे समाज के मुँह पर चोर और डाकू घोषित किया तो वे मित्र जैसे अवाक् रह गये। वह एकाएक उस रहस्य को नहीं समझ सके। रमाकांत की वह मित्र-मण्डली इस समस्या का हल नहीं ढूँढ़ सकी कि आखिर कमला ने इतना दुस्साहस कैसे किया! क्या उसने रमाकान्त को हृदय से त्याग दिया? किसी और व्यक्ति को दाम्पत्य-जीवन के लिए चुन लिया? उन मित्रों में सभी प्रकार के व्यक्ति थे। सरदार जी भी उनमें से एक थे। जब एक दिन यही चर्चा चली, तो वह बोले—'हमारे बुजुर्गों का तो कहना रहा है कि औरत का भरोसा नहीं करना चाहिए। भोली-भाली कमला ने जरूर किसी और के प्रभाव से ऐसा किया है। उसने रमाकांत को त्याग दिया है!' सरदार ने कहा—'ऐसी औरत को सजा मिलनी चाहिए! उसने धोखा दिया है! कलंक मोल लिया है!'

दूसरे मित्र ने प्रश्न किया—'सरदारजी, क्या करना चाहिए ?'

सरदार जी ने रोष में आकर कहा—'मैंने इन हाथों से बहुत से इन्सानों को मारा है ! एक खून रमाकान्त को करना चाहिए !'

साथी ने कहा—'सरदार जी, ऐसी अक्ल मत दो ! मामला खुल गया है। कमला को कुछ हुआ, तो रमाकान्त पकड़ा जा रहा है। फाँसी पर चढ़ सकता है।'

रमाकान्त ने कहा—'सरदार जी, मैं कुछ नहीं करूँगा। मैं एक भूल करके, दूसरी करने का प्रयत्न नहीं करूँगा।'

सरदारजी ने कहा—'तुम्हारी भूल कैसी ?'

'मैंने चोरी की ! पैसा पाया !' रमाकान्त ने मानो अपराधी बनकर कहा।

सरदार जी बोले—'यार रहे कोरे बुद्धू ! अरे, भाई, यह पैसा तो सभी पाते हैं। जितने भी नेता हैं, इसी प्रकार अपनी जिन्दगी का कारवाँ चलाते हैं। यह कहो, वह जो कुछ खाते हैं, हजम कर लेते हैं। तुमने औरत को साथी बनाया, किसी मर्द को बनाते, तो क्या यों ठोकर खा जाते ! औरत क्या कभी साथ दे सकी है ! इस कौम ने सदा इन्सान की कमर तोड़ी है।'

सरदार जी की उस बात को सुनकर लोग हँस दिये। कई ने समर्थन किया। बात को पक्की और सत्य बताया !

सरदार ने फिर अपनी वाणी पर जोर दिया—'जनानियों से वफा की उम्मीद नहीं की जा सकती ! वफा मर्द करते हैं। मर्द अपना सीना लड़ाते हैं। मर्द सिर कटाते हैं।'

एक बोला—'पर सरदारजी, वह कमला तो औरत बनने चली थी, घर की मालकिन ! वह तो रमाकान्त को प्रेम करती थी।'

बात सुनी, तो फिर ठहाका उठा। कमरा गूँज गया।

नीचे के हिस्से में माता और पिता थे। रमाकान्त ने कहा—'धीरे-धीरे ! मा सुनेगी।' वह बोला—'मेरी मा अब भी कमला को अपने घर की बहू बनाने की बात सोचती है। वह कहती है, जितना मैं समझती हूँ, कमला उतनी बुरी नहीं है। मेरी मा रुपया खाने की बात को भी क्या अच्छा समझती है !'

सरदार जी ने कहा—'तुम्हारी मा बुढ़िया हो गयी है। वह मरे, तो हम उन्हें जमुना किनारे पहुँचाने के लिये तैयार बैठे हैं।'

दैव की बात कि उसी समय मा उस कमरे के द्वार पर आ गयी। उसने सरदार की बात सुन ली। नया लड़का, रमाकान्त का साथी, इसलिए वह उसी को लक्ष्य करती हुई, आँखों से हँस कर बोली—'क्या कहता है, बेटा! मुझे मारना चाहता है! जमुना जी पहुँचाना—'

सरदार ने जल्दी से कहा—'हाँ मा! तुम मरो, तो हम बड़ी अच्छी तरह से तुम्हें जला आयेंगे। तुम पर एक कनस्तर घी भी छोड़ आयेंगे।'

पास बैठे हुए दूसरे नौजवान ने कहा—'चुप, बे!' वह मा की ओर देखकर बोला—'न माताजी! आप अभी और जीवित रहें! यह सरदार तो बनता है। तुम बेटा कहती हो न, तो यह सिर पर चढ़ गया है।'

किन्तु मा ने कहा—'न, बेटा! अब मरना ही मेरा काम रह गया है। सभी कुछ तो देखा! हजारों को कटते भी देख लिया। अपनों को लुटता देखा! भला, अब क्या बाकी रहा है!'

सरदार ने कहा—'माताजी, इस इन्सान की जिन्दगी में यही सब तो होता है।'

मा ने कहा—'हाँ, बेटा! यही सब होता है। पर इतना बुरा होता है, इसका मुझे पता नहीं था।'

एक और व्यक्ति जो आयु से प्रौढ़ थे, बोले—'यहाँ जो कुछ होता है, अकस्मात नहीं होता, किया जाता है। आदमी अपने पैर में कुल्हाड़ी स्वयं मारता है।'

'तुम जीते रहो बेटा, तुम्हारी बड़ी उम्र हो।' रमाकान्त की मा ने कहा—'यही मैं कहती हूँ, आदमी अगर आँख खोलकर चले, तो क्या ठोकर खाकर गिरता है! रास्ते में किसी छिलके पर पैर रखकर जो फिसलते हैं, उनको भी इसी पाप का दण्ड मिलता है।' इतना कहते हुए मा ने उन सबकी ओर देखा और साँस भर कहा—'बेटा, मेरे लिए तुम सभी रमाकान्त हो! रमाकान्त ने भूल की है, तुम भी इसे मानो। जन सेवा करने घर से निकला, तो चोर क्यों बन गया? मेरा बेटा खुले बाजार में चोर कहा गया, यह देखकर तो मैं शर्मिन्दा हूँ। मेरी कोख शर्मिन्दा है। मैं कहती हूँ, कमला ने जो कुछ किया,

अच्छा किया। उसे यही करना था। उसका यही कर्तव्य था। वह नारी है। भावना ही उसका जीवन है। उसकी आत्मा पवित्र है।' मा रुक गयी और बोली—'मैं कल ही कमला के घर गयी थी। मैं उसके यहाँ अपने पुत्र की भीख माँगने गयी थी। किन्तु वहाँ जाकर तो मैंने देखा कि वह कमला मुझे देख कर शर्मिन्दा हुई। उसकी आँखें भर आईं। वहीं पर उसने बताया कि रमाकान्त को उसने कई बार टंकोरा। ईमानदार बनने के लिये कहा।

मा की बात सुनते ही, रमाकान्त ने कहा—'मा, तुम्हें उसके पास नहीं जाना था। उसने मुझे खाया है। मेरा अन्त किया है!'

किन्तु मा ने रमाकान्त की ओर स्नेहाविल भाव से देखकर कहा—'न, बेटा! कमला ने तुम्हें खाया नहीं, तुम्हें जीवन दिया है। यही उसने कहा। मैंने भी यही अनुभव किया।' वह बोली—'कमला तुम्हें अब भी कर्मण्य मानती है। वह तुम्हारे इस दोष को भी क्षमा करती है। उसने कह दिया है कि रमाबाबू ने जो कुछ खाया, अब वह वापिस नहीं माँगा जायगा। अदालत में दावा भी नहीं किया जायगा, मुझे कमला ने बताया कि रमाबाबू को फजीहत से बचाने के लिये ही मैंने संस्था का मन्त्रीपद स्वीकार किया। अन्यथा, कोई और मन्त्री बनता, तो रमाबाबू को जेल जाना पड़ता। उसने तुम्हें मिलने के लिये भी कहा है। यहाँ आने का भी आश्वासन दिया है!'

रमाकान्त ने कहा—'वह आयेगी, तो धक्का दे दूँगा। और मैं क्या जीते-जी उसके द्वार जा सकूँगा। उसने मीठी बातें बनाकर तुम्हें समझा दिया है, मा!'

पुत्र की बात सुनकर मा ने हँस दिया, आँखों से मुसकरा दिया। तदनन्तर उसने वह कमरे का द्वार भी छोड़ दिया।'

वह बैठे हुए प्रौढ़ व्यक्ति बोले—'रमाबाबू, इन बातों को सुनकर मैंने दूसरा परिणाम निकाला है। बताइये, आप सबने क्या निष्कर्ष निकाला है?'

सरदार ने कहा—'आप बताइये!'

उस व्यक्ति ने कहा—'कमला का मन अब भी रमाबाबू की ओर लगा है। उसके मन में पीड़ा है, दया है!'

सरदार ने कहा—'झूठा! सरासर गलत! उस सफेद कबूतरी ने अपने

उजेले पंख फड़फड़ा कर रमाबाबू को बहकाया है। जो बात हुई, उस पर पर्दा भी डाल देना चाहा है।'

पास बैठे हुए तीसरे नौजवान ने कहा—'मेरा भी यही मत है। फिर भी जल्दबाजी से काम करना बुरा है।'

रमाकान्त ने कहा—'यह कमला कभी भी किसी एक व्यक्ति की बनकर नहीं रहेगी! यह जिससे मिलेगी, उसे धोखा देगी।'

उस प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा—'यह प्रश्न जुदा है। बात तुम्हारे प्रति उसकी नीयत की है। तुम्हारी मा ने कुछ कहा, वह क्या गलत कहा है?'

सरदार ने कहा—'अरे, भाई! इनकी मा सरल है, भोली है। जिसने जो कुछ कहा, मान लिया, औरत अपने साथ एक ऐसा तीर रखती है कि उसका निशाना सदा फिट बैठता है। जब कोई औरत रो कर अपनी बात कहती है, तो क्या उसे मानने से इन्कार किया जा सकता है। न कभी नहीं।'

प्रौढ़ महाशय बोले—'तो समझा मैंने तुम्हारी बुद्धि का दिवाला निकल गया। एक मजिस्ट्रेट के सामने जाने कितनी औरतें रोती हैं, तो क्या वह पिघल जाता है। अभियुक्त को छोड़ देता है! भाई जो सचाई है, उसे नहीं भुलाया जा सकता। रमाकान्त की मा ने जो बात कही, उसमें मुझे बल मिला।'

रमाकान्त ने जैसे खिसियाकर कहा—'उस कमला का बाप भी कितना ढोंगी है, गिरगिट की तरह से रंग बदलता है,—शैतान!'

तीसरे नौजवान ने कहा—'गंगा गये गंगा दास, जमुना गये, जमुनादस! पण्डित ज्ञाननाथ सभा के पास जाता है। आर्य समाजी, कांग्रेसी, मुसलमान, जन-संघी सभी से तो उसका मेल है। सभी से अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। वह क्या काम करता है, मैं आजतक नहीं समझ पाया!'

सरदार ने कहा—'अब उसे काम करने की आवश्यकता नहीं, उसने सरला सरीखी दुधहारी लड़की को पा लिया है!'

नौजवान ने कहा—'सुनहरी चिड़िया है वह! उसका बसेरा हर रोज बदलते हुए पेड़ पर रहता है! जब देखो तब नया साथी उसके साथ लगा है!'

रमाकान्त ने कहा—'वह लड़की घर नहीं टिकेगी, भाग जायेगी! वह और अधिक ऊँचाई पर जायगी!'

प्रौढ़ महाशय आँखों से हँस कर बोले—'अँगूर खट्टे जान पड़ते हैं!'

बात सुनी तो सभी हँस दिये। खिलखिला पड़े।

सरदार ने कहा—घबड़ाओ मत रमाकान्त, हम तुम्हारे साथ हैं। यह जिन्दगी है, तो सभी दिल-फेंक तमाशा देखते हैं। तुमने कुछ किया, तो क्या बुरा किया? सभी ने यही किया है।'

और रमाकान्त उस समय गम्भीर था। वह कमरे के बाहर आकाश में आँख लगाये उड़कर दूर जाती हुई एक चिड़िया को देख रहा था, उसे देखे जा रहा था......

: २४ :

कमला की बहिन सरला का जीवन जैसे निरा रहस्य से भरा था। उस यौवनमयी सुन्दर बाला ने जिस द्रुतगति से समाज के विशिष्ट जनों को अपनी ओर आकर्षित किया, वह किसी भी युवती के लिए ईर्षा का विषय हो सकता था! पढ़ाई का कार्य समाप्तप्राय हो गया। अभिनय, नृत्य और गाना ही उसके जीवन का लक्ष्य बन गया। अवस्था यहाँ तक पहुँची कि सरला को नगर से बाहर दूर प्रान्तों और नगरों के नियन्त्रण आने लगे। उन निमन्त्रणों द्वारा उसे यश और धन मिल रहा था। पण्डित ज्ञाननाथ और कमला के समक्ष यह नयी समस्या थी। चिन्ता की बात यह थी कि उनके हाथ खाली थे। तीर कमान से निकल चुका था। वे दोनों सरला को नहीं रोक सकते थे। वह नहीं रुक सकती थी।

फलस्वरूप, कई दिन हो गये थे कि सरला एक निमन्त्रण-पत्र पर बम्बई पहुँची थी। वह चार-पाँच दिन में लौट आने वाली थी, परन्तु एक सप्ताह बीत चुका था। पण्डित ज्ञाननाथ और कमला चिन्तित थे। वे सरला की प्रतीक्षा में थे। उसके पत्र की भी आकांक्षा रखते थे। किन्तु जब एक सप्ताह बीत गया, न सरला आई, न पत्र आया, तो पण्डित ज्ञाननाथ ने एकाएक ही

अपने पर झुँझला कर कमला को सुनाया—'मेरा बुढ़ापा भी अच्छा नहीं रहा। इस सरला ने मेरा मुँह काला कर दिया!'

इसके विपरीत कमला ने अपने मन की दूसरी ही अवस्था बना रखी थी। यद्यपि वह स्वयं सरला की गति-विधि से सन्तुष्ट नहीं थी, परन्तु वह अपनी बहिन के प्रति उदार थी। विशेषतः पिता के समक्ष सरला की उपेक्षा या उसके चरित्र के प्रति सन्देह करना वह अच्छा न मानती, ऐसे समय वह बहिन का ही पक्ष लेती। अतएव, जब पिता ने अपने मन का रोष प्रगट किया, तो कमला स्वयं भी गम्भीर बन गयी। वह भारी स्वर में बोली—'पिताजी, मेरा मत है कि प्रत्येक माता-पिता की यह आदत होती है कि वे सन्तान पर सदा ही नियन्त्रण रखना पसन्द करते हैं। आप भी उसी रीति को मानते हैं। परन्तु मैं कहती हूँ, कि आज के युग में क्या यह ठीक है? उचित है? सन्तान के प्रति न्याय है? आप भी अपनी सन्तान के प्रति न्याय नहीं करते। जैसे पाप करते हैं। उस पर सन्देह करते हैं।'

कमला से इतनी बात पाकर, ज्ञाननाथ जी जैसे भयातुर अवस्था के समान उसे घूरने लगे। वे जैसे जीवन में प्रथम बार यह समझने का प्रयत्न करने लगे कि यह कमला मूर्ख तो नहीं है, पागल तो नहीं! और जो कुछ यह कहती है अपना उत्तरदायित्व समझकर कहती है, अथवा मेरा (अपने पिता का) अनादर करने के अभिप्राय से कह रही है। इसलिए उनके मन में उस समय अतिशय क्रोध भर आया। उनके सिर के श्वेत बाल खड़े हो गये। आँखें फटी रह गयीं। वे कातर और खिन्न बन गये।

अपने पिता की उस अवस्था को देखकर कमला ने सदयभाव से कहा—'पिताजी, आप शान्त बनिये। आप अपनी भलाई सोचिये। आपकी तो सन्तानें हैं, दोनों लड़कियाँ हैं। मेरी अपनी व्यक्तिगत बात है, इन लड़कियों में से एक भी अब ऐसी नहीं कि जिसका बोझ आपको उठाना पड़े। आपका आशीष तो इन्हें सदा चाहिए। सरला ने जिस पथ का अनुसरण किया है, क्या आपके लिए यह सन्तोष की बात नहीं कि उससे उसे यश मिला है, पैसा भी प्राप्त हुआ है। सरला के द्वारा ही, आपके पास बीस-तीस हजार रुपया एकत्र हो गया है। आपके समक्ष अब आर्थिक कष्ट नहीं है। आपको अब पूर्ण स्वतन्त्रता है।' इतना कहते हुए कमला ने साँस भरी और फिर

बोली—'आप यह तो जानते हैं, मैं रुपया नहीं प्राप्त कर सकती। बहिन का रुपया भी उपयोग में नहीं ला सकती। मेरा खर्च भी अधिक नहीं है।' तदनन्तर ही कमला ने बाहर द्वार की ओर देखा। उसने अपने स्वर पर झटका-सा खाया और कहा—'इस दुनिया में कोई किसी के भाग्य से नहीं बँधता। एक साथ पैदा हुए पंछी भी जुदी-जुदी डालों पर अपना बसेरा लगाते हैं। आपके बाद हम दो बहिनें भी कहाँ-कहाँ होंगी, नहीं कहा जा सकता। आप हैं, तो यह सम्बन्ध भी बना है, हम दोनों बहिनों का जीवन परिस्थितियों ने जुदे-जुदे रास्ते पर डाल दिया है,—यह जीवन एक बड़े दरिया में पड़ गया है। तेजी से प्रवाहित है।' इतना कहते हुए कमला का स्वर अवरुद्ध हो आया। उद्वेग आँखों में उतर आया। आँसू गालों पर बह चले, उसी अवस्था में उसने फिर कहा—'पिताजी, सरला मेरी बहिन है, आप की पुत्री है। हमारी मा तो रही नहीं, आप हैं, केवल आपका आशीष ही हमें पर्याप्त है। सरला को मत रोकिये। उसे आगे बढ़ने दीजिये। समाज की ऊँचाई पर उसे पहुँचने दीजिये। और जिस बात की आपको आशंका है, वह निरर्थक है। उसकी सीमा है। सरला को इस बात का ज्ञान है। अपने चरित्र की रक्षा करना वह समझती है।'

पण्डित ज्ञाननाथ उस समय स्वयं दुःखी थे। जब उन्होंने कमला को रोती हुई पाया, तो उनके हृदय का ममत्व भी आँखों में उतर आया। पुत्री ने अपनी बात जिस धारणा और विश्वास पर कही उसका अर्थ भी उन्होंने समझ लिया। उन्होंने पैसे का मूल्य भी पहचाना। उस मकान में अब उनके पास केवल एक ही कमरा नहीं था। उस कमरे सरीखे दो कमरे और बढ़ गये थे। खाना बनाने और घर का काम करने के लिए नौकर था। इस प्रकार पैसा आया, व्यय बढ़ गया था। मानो पैसे के साथ खर्च का बढ़ना स्वाभाविक था। उस पैसे का यही महत्व था। यही उसका उपयोग था।

उसी समय कमला ने फिर कहा—'आपका पुत्र नहीं रहा, तो दो पुत्रियाँ हैं। यही पुत्र हैं। दोनों समर्थ हैं।

उत्साह भाव में ज्ञाननाथ बोले—'हाँ, हाँ, इसका तो मुझे भरोसा है।'

'और आप यह भरोसा क्यों नहीं करते कि हम अपने भविष्य का निर्माण भी कर सकती हैं। हम रास्ते की कठिनाई समझती हैं।'

यह सुनकर, एकाएक ज्ञाननाथ जी ने मत नहीं दिया। परन्तु तनिक देर बाद ही, उन्होंने कहा—'बेटी, तुम्हें यह तो पता है कि मेरा जीवन पैसे के दरिया में नहीं बहा। कदाचित मैं इसीलिए शान्त और स्वस्थ रहा। मैंने सदा ही, अपनी और तुम्हारी मा की इच्छाओं का दमन किया। परन्तु आज पुत्री द्वारा पैसा पाकर मेरा मन मिंच रहा है। जैसे ऐंठ रहा है। लगता है कि कोई मेरा गला दबोच रहा है। कोई मुझे सुना रहा है कि इस हास्य के नीचे ही रोदन है, मानव का चीत्कार है। और यह तो तुम जानती हो, चरित्र खोकर क्या कोई जीवित रहता है! जीवन का सात्विक पदार्थ चरित्र है। वही सहारा है। तुम इस बूढ़े की बात का उपहास मत करो, इसे आत्महीनता की बात भी मत समझो। मेरा अब भी यही कहना है कि सरला ने लोगों के मनोरंजन के हेतु अपना जीवन आग की भट्टी में झोंक दिया है। समाज का वह उच्च वर्ग उसकी सुन्दरता देखता है, यौवन देखता है और उसके मधुर स्वर में अपने प्राणों को खोता पाता है। एक तरुणी से इतना आनन्द पाकर वह समाज—धनिक समाज उसके ऊपर रुपया उछालता है। उसे अपनी आँखों के पलकों पर बिठा लेना चाहता है,...कमला,...ज्ञाननाथ की पुत्री से लोग इस प्रकार का मनोरंजन करें···उसके रूप को शराब के समान पीना पसन्द करें...अरे, ज्ञाननाथ···अरी कमला!'

उसी समय, कमला ने रोषपूर्ण बनकर कहा—'पिता जी, मैं समझी, आप भी दकियानूसी हैं! प्रखर विचारवान बनकर भी उसी पुराने युग की की ओर देखते हैं।' वह बोली—'इस युग में सभी अपने को बेंचते हैं। आप स्वयं अपनी पुत्रियों को बेचना पसन्द करते हैं। बताइये, आपने धनिक रमाकान्त के घर में मुझे देना पसन्द नहीं किया क्या? आखिर वह मेरा क्या उपयोग करता! मेरा शरीर ही तो खाता, मुझे भ्रष्ट करता! वह रमाकांत...'

ज्ञाननाथजी ने काँपते हुए स्वर में कहा—'वह पति-पत्नी का सम्बन्ध होता! सात्विक होता। धार्मिक होता। नैतिक होता! सामाजिक होता!'

मानो चिढ़कर कमला ने कहा—'खाक धार्मिक होता! पैसे का चोर रमाकांत धार्मिक बनता! मैं कहती हूँ इस धरती पर आकर सभी क्रय-विक्रय करते हैं। कहीं लड़के खरीदे जाते हैं, कहीं लड़कियाँ! सरला अपना स्वर बेचती है। नृत्य की कला बेचती है। यही न! परन्तु, आप अपनी सीमा से

भी आगे बढ़ चले हैं और कहते हैं कि वह अपना रूप बेचती है। मैं कहती हूँ यही अनर्गल है। और यदि मैं आपकी बात को ही महत्त्व दूँ, तो कहती हूँ रूप सभी बेचते हैं। यदि मैं सुन्दर न होती, तो क्या रमाकांत मुझे अपनी पत्नी स्वीकार करते। आज जितने भी विवाह होते हैं, वे सभी रूप देखकर होते हैं। क्या यह दुकानदारी नहीं है! खरीददारी नहीं है! रूप तो सदा ही बिकता है! देखा जाता है। आँखों से परखा जाता है। वैसे कला, कला है। उसका महत्त्व अलग है। यदि कला के साथ रूप भी हो, तो यह सोने में सोहागा है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'जो हो, मैं इसे स्वीकार नहीं करता। मैं इसे कलंक मानता हूँ।'

कमला ने कहा—'सरला आयेगी, तो आप उससे कहना अपनी आकांक्षा और अधिकार भी उसे बता देना!'

ज्ञाननाथ जी ने जैसे शैथिल्य भाव लेकर कहा—'अब मेरा अधिकार नहीं रहा। मैं निर्बल बन गया। पुत्रियों की दया पर आश्रित हो गया!'

यह सुनते ही, कमला ने घूर कर पिता की ओर देखा। उसे फिर क्रोध आया। किन्तु उसी समय नौकर ने आकर सूचना दी, भोजन तैयार हो गया।

कमला ने कह दिया—'अच्छा, आते हैं।'

पण्डित ज्ञाननाथ जी ने कहा—'मेरी इच्छा है कि तुम दोनों के बीच से हट जाऊँ, कहीं चला जाऊँ, संन्यासी बन जाऊँ।'

सुनकर कमला ने अपना मत नहीं दिया। उसने तब कुछ भी कहना पसन्द नहीं किया। उसी समय डाकिया आया और वह कुछ पत्र पण्डितजी के सामने रखकर चला गया। उन्हीं पत्रों में एक पत्र पर उनकी दृष्टि गयी। वह सरला का पत्र था। लिफाफा उठा लिया। उसे कमला के सामने रख दिया।

कमला ने कहा—'आप पढ़ लें।'

'नहीं, पढ़ कर सुनाओ।'

कमला ने पत्र खोला। पढ़ा। तब उसने पत्र और लिफाफा फर्श पर रखकर कहा—'सरला अभी नहीं आयेगी। अगले सप्ताह के अन्त तक आयेगी। लिखा है कि उसे बम्बई से बीस हजार रुपया प्राप्त हुआ है। एक फिल्म

कम्पनी ने उससे पचास हजार रुपये पर कन्ट्राक्ट किया है और उसे दो मास बाद फिर चित्र में अभिनय करने के लिए बम्बई लौट जाना है। वह पचास हजार रुपया भी शीघ्र पेशगी मिल जाने वाला है।'

देर हुई कि पण्डित ज्ञाननाथ जी ने पत्र सुन लिया। एक सप्ताह में सरला ने कितना उपार्जित किया, यह भी उनके कानों में सुनकर अपने हृदय में उतार लिया। किन्तु उस समय अपने स्वभाव के विपरीत उन्होंने मत नहीं दिया। उस डाक में जो कमला के पत्र थे, वे उसे दे दिये और जो पत्र उनके नाम थे, उन्हें एक-एक कर पढ़ लिया।

नौकर फिर आया और बोला—'बीबीजी, खाना ठण्डा हो रहा है'

कमला ने साँस भर कर कहा—'पिताजी, चलिये।'

पण्डित जी साँस लेकर उठे और बोले—'हाँ, चलो, खाना तो खाया ही जायगा।'

पिता-पुत्री चले और दूसरे कमरे में जाकर खाना खाने लगे। चूँकि अब नौकर बनाता था, खाना बनाना ही उसका काम था, इसलिए सतर्क होकर अच्छे-अच्छे व्यंजन बनाता था। पहिले उनके घर में एक दाल या सब्जी बनती थी, परन्तु अब थाली में दो-चार कटोरियों का होना जरूरी था। उस भोजन का व्यय अब पहिले से दस गुना बढ़ गया था। जिस घर में पहिले सौ-डेढ़ सौ रुपये में सुगमता से काम चलता, वहाँ अब कई सौ रुपये व्यय होता। अब कोई अपने हाथों से गिलास भर पानी भी नहीं लेता। नौकर था, तो इसलिए, प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसी को पुकारा जाता। उस समय भी, जब पण्डितजी और कमला भोजन के लिए बैठे, तो उन दोनों की थालियों में कई प्रकार के भोज्य पदार्थ रखे गये थे। उस दिन नौकर ने कुछ नई सब्जियाँ बनायी थीं। खाते हुए कमला ने अपने-आप कहा, 'यह मटर दो रुपये सेर से कम नहीं होगा। यह करेला भी महँगा होगा।' उसी समय उसने मन पर झटका-सा खाया और कहा—'पिता जी को करेला पसन्द है। आलू मटर का साग भी इन्हें अच्छा लगता है।' इतना कहते ही वह मन में मुसकरायी—'मन-मन भावै, मूड़ हिलावै' की नीति को पिताजी ने भी अपनाया दीखता है।' किन्तु तभी उसके मन में एक ऐसी बात आई, जो नई न होकर भी, नई थी। वह मन में बोली—'सरला से पिताजी का

सम्बन्ध रहे, या नहीं; परन्तु मेरा नहीं रह सकता। हम दोनों बहिनों को वैसे ही छूटना था। अलग-अलग घरों में जाना था। इसलिए मुझे अब भी सरला से सम्बन्ध तोड़ देना चाहिए। पिताजी और सरला को एक बन कर रहना चाहिए।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'कमला, खा नहीं रही है ?'

सुनकर, कमला तनिक चौंक गयी और वह फिर रोटी का एक बड़ा टुकड़ा उठाकर खाने लगी। उसी समय उसने मन में फिर कहा—'हाँ, यह ठीक है। मेरा दूर रहना ही उचित है। मैं इतना उपार्जित नहीं करती। केवल सौ रुपया प्राप्त करती हूँ। मैं तो अपनी आवश्यकताएँ ही कम करना उचित मानती हूँ।'

पण्डितजी फिर बोले—भोजन करते समय मन को शान्त रखना चाहिए। भोजन शांति से करना चाहिए।'

कमला ने इतना सुना और पिताजी की ओर देखा। उसने अनुभव किया कि सच, पिताजी ने अपने मन की बात को भुला दिया। इस सुन्दर भोजन में रवाँ दिया। वह मन में बोली—'आदर्श और है, व्यावहारिकता और ! जब पुत्री के द्वारा अच्छा भोजन मिले, सेवा के लिये नौकर मिले, तो बुरा क्या है ! आजकल का यही आदर्श है !' यह कहते हुए कमला ने गिलास भरा पानी पी लिया। उसने थाली को छोड़ दिया।

चौंक कर ज्ञाननाथ जी बोले—'बस !'

कमला ने कहा—'हाँ, पिताजी, बस !'

'आज तूने कुछ नहीं खाया ! करेला नहीं खाया, मटर का साग नहीं !' उन्होंने मुँह उठाकर कमला की ओर देखा।

कमला ने पिता की बात पर अपना मत नहीं दिया। वह स्थान छोड़ दिया। वह अपने कमरे में गयी और फर्श पर बिछी हुई दरी पर जा पड़ी। उस समय कमला के मन की स्थिति अतिशय दीन थी। वह कातर बनी हुई थी। उन क्षणों में वह अपने को उस भरे हुए विश्व में अकेली मानती थी। इसलिए, कमला के मन में ओस के समान उद्वेग झलक आया। उसकी बूँद बन गयी। कमला रो देने की स्थिति में आ गयी। उसकी बहिन सरला कितनी सुखी है। कितनी तेजोमय है, वह समाज की आँखों पर उठी है। समाज की पलकें उसकी छाँह करती हैं। और वह है कि एकाकी जैसे निराधार !

जीवन में एक रमाकान्त मिला, तो वह भी हृदय से हीन! कायर! समाज का चोर! अगर उसने चोरी का रहस्य खोल दिया, तो वह भी उसका दुश्मन बना है। वह उसे ठगना भी चाहता है और अन्त भी करना चाहता है। हाँ, वह पुरुष है न! अपना अपमान मानता है। उसका प्रतिशोध जानता है!

निःसन्देह, उस अवस्था में मौन बनी हुई भी कमला की आत्मा जैसे जल रही थी। काँप रही थी। वह अपने को नितान्त दुर्भागी देखती थी। कदाचित यही कारण था कि उसकी आँखें भरी थीं। वे आँखें बस एक ही क्षण में उसके गोरे और सुन्दर गालों पर बहने के लिए बाध्य हो रही थीं। उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ इस कमरे में आये। वे कमला के निकट आ बैठे। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा—'बेटी!'

किन्तु कमला ने उत्तर न देकर अपनी धोती का पल्ला मुँह पर रख लिया और फुफक कर रोना आरम्भ कर दिया।

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'बेटी, कमला!'

कमला ने कहा—'मैं दुःखी हूँ, पिताजी!'

पिताजी ने कहा—'मैं अनुभव करता हूँ। मैं देखता हूँ।'

कमला ने फिर कहा—'आप चाहें तो मुझे मार दें मेरा अन्त कर दें।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'तू है, तो यह ज्ञाननाथ है, बेटी! तेरे ऊपर ही मेरा जीवन टिका है। कौन नहीं जानता कि पिता और छोटी बहिन को तुम्हारा ही सहारा है।'

किन्तु कमला की उद्विग्नता ने उसे बोलने नहीं दिया। उसने अपना मुँह ढके रखा। पण्डित ज्ञाननाथ का हाथ भी उसके सिर के बालों पर चलता रहा।

: २५ :

यह सचमुच ही अजीब बात थी कि पण्डित ज्ञाननाथ अपनी पुत्री की समृद्धि और ख्याति को देखकर भी सन्तुष्ट नहीं थे। किन्तु जब उन्होंने बम्बई से सरला का पत्र पाया और एक ही सप्ताह में उसे सत्तर हजार रुपया उपा-

र्जित करते हुए देखा, तो निःसन्देह, उन्होंने कमला की बात को महत्व दिया। कदाचित इसी अभिप्राय से वह भोजन-कक्ष से निकल कर सीधे कमला के पास गये। लेकिन जब उन्होंने कमला को स्वयं रोती हुई पाया, तो अपने पास पिता का हृदय लिए हुए ज्ञाननाथ जी एकाएक स्वयं ..... विचलित बन गये। वे इस बात को नहीं समझ सके कि आखिर इस कमला के मन में क्या है! परन्तु जब वह देर तक कमला के सिरहाने बैठे हुए उसके सिर पर हाथ रखे रहे, तो तभी कमला ने उनकी ओर देख कर कहा—'पिताजी, आप चाहें तो सरला को रोक लीजिये। उसका विवाह कर दीजिये।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'जिस तोते को तुम पिंजरे में रखने की बात करती हो, वह मेरे हाथों से उड़ चुका है। वह दूर ऊँचे वृक्ष की डाली पर जा बैठा है।'

किन्तु कमला ने कहा—'इस बात के कहने से मेरा एक यह भी अभिप्राय है कि मैं पृथक रहना चाहती हूँ,—अपने-आप में ही डूब जाना पसन्द करती हूँ।'

इतना सुनना था कि पण्डितजी एकाएक बोल नहीं सके। वे अपने मानस में ही खो गये।

कमला ने फिर कहा—'पिताजी, मैं अपने-आपको इस योग्य नहीं पाती कि इस प्रकार रहूँ। मैं इतना पैसा उपार्जित नहीं करती। कर नहीं सकती।'

पिता बोले—'कमला बेटी, तुमने बड़े महत्व की बात कही है। यही बात मेरे मन में है। परन्तु इस प्रकार के पृथक्करण का प्रभाव तो और भी भयानक होगा। हमारा घर अपने ही हाथों नष्ट हो जायेगा। बोलो क्या तुमने अन्तिम निश्चय कर लिया है कि इसी प्रकार एकाकी रहना है।'

कमला बोली—'इस जीवन में कोई भी निश्चय अन्तिम नहीं होता। परन्तु विवाह जिस लिये किया जाता है, उसके लिये मैं आकांक्षित नहीं। मुझे सन्तान की भी इच्छा नहीं। शरीर भोग की महत्ता मेरे मन में नहीं।'

उसी बीच में ज्ञाननाथ जी ने कमला के सिर से अपना हाथ हटा लिया। कमला उठकर बैठ गयी। उस समय पिता को गम्भीर भाव में देख, वह स्वयं भी तटस्थ बनी रही।

उसी समय पण्डितजी बोले—'बेटी, अब तुम स्वयं समर्थ हो। अपना

हित-अहित देखती हो। तुम समाज की पथ-प्रदर्शिका हो। इतना मेरा कहना अवश्य है, मन की साधना कभी पूरी नहीं होती। भावना की जिन्दगी भी शान्ति और सन्तोष का सृजन नहीं करती। जब तुम्हारी मा थी, तो तुमने रमाकांत को चुना, मैंने भी पसन्द किया। परन्तु अब तुमने उसी को अपात्र मान लिया, मैंने इसमें भी तुम्हारा विरोध नहीं किया, किन्तु कल के दिन जब मैं इस संसार से आँख मूँद कर चला जाने वाला हूँ, तो क्या तुम यह सोचती हो कि मैं अपनी दोनों पुत्रियों को निराधार देखकर, सुख के साथ मर सकूँगा। विश्वास करो, उस अवस्था में, मर कर भी मेरी आत्मा छटपटायेगी। वह जहाँ भी जायेगी, अपनी पुत्रियों की स्मृति अपने अन्तर्पट में लिये रहेगी।

इतना सुनकर, कमला ने पिता की ओर देखा। उनके वृद्ध हुए उस श्वेत मुँह को लक्ष किया। सचमुच, उसे अपने पिता पर पहिले ही अपार श्रद्धा थी। परन्तु उस समय, जब उन्होंने पुत्रियों के पास से चले जाने की बात कही, तो वह बोल कमला के मन को चुभ गया। अनायास ही उसमें कसक पैदा हुई और वह अपने पिता के प्रति समूची श्रद्धा-भावना को लिये हुए बोली—'पिता जी, आप के चले जाने का अर्थ है, हम दोनों बहिनों का अकेली रहना। और यह तो आप जानते हैं, परिस्थितियाँ ही इस जिन्दगी को ढालती हैं। देखते हैं न, आज, मैं क्या थी, क्या बन गयी। कभी कल्पना भी न कर सकती थी कि समाज की सेविका बनूँगी। यों घर-घर जाकर अलख जगाऊँगी। यही बात सरला की है। उस पगली को भी नहीं पता था कि वह ऐसे रास्ते पर चली जायगी। इतनी समर्थ और स्तुत्य बन सकेगी। इसलिए, जब आप अपनी वही पुरानी बात कहते हैं, तो मैं सोच नहीं पाती कि आप क्यों कहते हैं, क्या सोचकर कहते हैं। मैं नगर में जाती हूँ, कुमार-कुमारियों को टोली की टोली में हँसता-खेलता पाती हूँ तो अपने आप में ही आल्हादित बनती हूँ। कोई चरित्रहीन हो, तो हो; पर मैं तो सभी को गंगा का जल समझती हूँ, परन्तु आप अपनी पुत्रियों की समृद्धि पर नहीं मुसकराते। भगवान का आभार नहीं मानते। कदाचित आप यह भी अनुभव नहीं करते, कि पञ्जाब से आया हुआ यह बृहत् नर-समूह आज भी हँसता है, खेलता है, जीवन को गौरव की वस्तु मानता है।' इतना कहते हुए कमला रुक गयी। मानो उसकी आत्मा की प्रभुता उसकी आँखों में छलक आयी। तभी वह फिर बोली—'पिता जी,

जिस पञ्जाब के प्रति आप के मन में अनेक आशंकायें और अशुभ दुर्भावनाएँ हैं, वही पञ्जाब अपने बच्चे-बच्चियों को छाती से लगाये, रावी के इस पार बैठ कर भी हिम्मत से काम ले रहा है। उसने अपना बिगड़ा हुआ जीवन बनाने का पौरुष दिखाया है। उसके नौजवानों में आज भी बल है। उसके सिख बच्चे, हिन्दू बच्चे और बच्चियाँ आज भी जीवन के गीत गाते हैं, देश के गीत गाते हैं। देखिये तो, वे कितने आत्माभिमान के साथ जिन्दगी को उछालते हैं। अपना पथ प्रशस्त करने के लिए अग्रसर होते हैं। इसीलिए, मेरा मत है कि यह भारत देश नहीं मरेगा। यह जीवित रहेगा। हमारे सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक संस्कार सदा ही ओजपूर्ण बने रहेंगे। वे हमें अभय प्रदान करते रहेंगे। आप भी अपना आशीष दीजिये।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'बेटी, दिखता है, मेरी बातों का तुमने गलत अर्थ लगा लिया। अपनों से कुछ अधिक सत्य बात कही जाती है। मैं पंजाबी या गैर पंजाबी की बात नहीं लेता। मैं देश की बात लेता हूँ। जन-जन की बात कहनी पसन्द करता हूँ।'

कमला ने कहा—'पिताजी, इस देश का दुर्भाग्य है कि विभाजन के बाद, इस देश से अंग्रेजों के चले जाने के बाद, अनेक नये प्रश्न बन गये हैं। दिखता है, अंग्रेज तो गये, परन्तु इस देश की धरती पर छोड़े जहरीले कीड़े पनप रहे हैं और अपना विष फैला रहे हैं। यहाँ पर अब एक सवाल नहीं, बहुत पैदा हो गये हैं।'

पण्डितजी ने कहा—'सभी सवालों का सिरमौर प्रश्न रोटी और कपड़ा है। हमारी सरकार उसका प्रबन्ध करने में फेल रही है।'

कमला बोली—'अभी यह कहना भी असंगत है। मैं देखती हूँ कि इस देश का हर व्यक्ति सरकार के रास्ते में रोड़ा बना है। उसकी कठिनाइयाँ बढ़ा रहा है।' उसने कहा—'रमाबाबू सोचते होंगे कि मैंने उनके विरुद्ध बगावत की। परन्तु मैंने तो उस समय चाहा कि एक व्यक्ति का मोह छोड़कर, देश और समाज का भला चाहूँ। मैंने अपनी भावना के इसी कर्तव्य को निबाहा। इसको पूरा करने के लिए मैंने अपना क्या-कुछ खो दिया, उसे मैं जानती हूँ। मैंने जो हानि उठायी, निश्चय ही, वह इस जीवन में पूरी नहीं कर सकती। अब रमाबाबू को नहीं पा सकती। हम समीप नहीं हो सकते।' यह कहते हुए

कमला ने अपने स्वर पर झटका-सा खाया और कहा—'पिताजी, मैं इसकी चिन्ता भी नहीं करती। मैं अपने पैरों पर खड़ी हो गयी हूँ। मैं उस प्रान्त में जन्मी हूँ कि जहाँ की नारी अपने स्वत्व की रक्षा कर सकती है। किन्तु खेद मुझे इस बात का है कि लोग अपने स्वार्थ के लिए चिन्तित हैं। देश और जाति के जीवन का स्वार्थ किसी को नहीं है। हमारी सरकार इस समय शरणार्थियों पर आँख मूँदकर पैसा खर्च कर रही है। उनको प्रत्येक सहायता दे रही है। उन्हें मकान पहिले, रोटी पहिले। शरणार्थियों के समक्ष सरकार सभी के हितों को भूल गयी है। किन्तु देखते हैं आप, प्रत्येक पंजाबी आज सरकार के विरुद्ध है। हिन्दू जाति दूसरी दिशा की ओर देखती है। वही पुनारी बात सोचती है। महात्मा गांधी का अन्त भी इस दुर्भावनावश हुआ है। नेताओं को सरेआम गालियाँ दी जाती हैं। अवस्था यहाँ तक हो रही है कि शरणार्थियों को उन्हीं के भाई ठग रहे हैं। उन्हें मूर्ख बना रहे हैं। उनके लिए प्राप्त हुई सहायता में से बन्दर के समान पहिले अपनी बाँट कर रहे हैं। यही रमाबाबू ने किया।' उसी समय कमला ने साँस भरी और बोली—'समूचे देश की यही अवस्था है। हम जाति और देश का सम्मान नहीं करते। जो पाकिस्तान आज हमारा शत्रु है, हम चोरी-चोरी उसी से व्यापार करते हैं। सोने की सिल्लियाँ अपने घर में जमा करते हैं। सिख अपना स्वार्थ देखते हैं, हिन्दू अपना। ईसाई अपना, पारसी अपना। प्रान्तों के झगड़े तो आप देख ही रहे हैं। कुछ अन्य जातियाँ हैं कि जो आज भी इस देश को अपना देश नहीं मानतीं। यहाँ जाति और भाषा के नाम पर लोग बँटवारा करने पर तुले हैं। यह क्यों? इसलिए कि आज सरकार अपनी है। सभी स्वतन्त्र हैं। सभी के अपने-अपने मत हैं। अछूत आज अपना अलग ही अस्तित्व स्वीकार करते हैं। जब देर से हमने उनके साथ सहृदयता और सहयोग का बर्ताव नहीं किया, तो आज वह भी हमसे दूर खड़े होना चाहते हैं।'

पण्डितजी बोले—'यही तो समस्या है। मुझे भय लगता है। इस देश का सूर्य बादलों में छिपा है।'

कमला ने कहा—'न, पिताजी! इतनी समस्याएँ पैदा होने के बाद भी, मैं देखती हूँ, हमारा देश ऊपर उठेगा। जिस दिन भारत की रक्षा का शंख बजेगा, युद्ध का आवाहन होगा, तो देश का बच्चा-बच्चा भारतीय झण्डे के

नीचे खड़ा दिखायी देगा। हमारी नयी सन्तति बेहोश नहीं है। और की बात तो क्या कहूँ, मुझे उस पार से आये प्रत्येक प्राणी पर भरोसा है। हमारे बहादुर सिख, नौजवान हिन्दू—युवक, युवतियाँ—सभी भारतीय झण्डे को सलामी देते हैं। वे समय आने पर उस झण्डे की आत्म-रक्षा के लिए अपने सिर कटा सकते हैं।'

पण्डितजी ने आतुर हुए स्वर में कहा—'बेशक! बेशक! उस पार से आये व्यक्ति कभी पीछे नहीं रहेंगे। पंजाब ने सदा अपनी छाती पर बंदूक की गोलियाँ खायीं। हमारी वीराँगनाएँ भी हँसते-हँसते मौत के मुँह में चली गयीं।'

कमला बोली—'पिताजी, पंजाब इस देश का गौरव है। पंजाब का नाम आते ही, इस देश की नसों का खून दौड़ता है। अभिमान अनुभव किया जाता है।' वह कहने लगी—'और आप जिन भौतिक तत्वों की बात प्रायः कहा करते हैं, अब मैं उन्हें स्वीकार नहीं करती। यह ठीक है कि पंजाब की युवती और युवक सौन्दर्य प्रसाधनों से अधिक सज्जित हैं। परन्तु यह तो अपने पौरुष की बात है। हमारी सरला भी आज अपनी वेषभूषा को ऊँचाई पर ले गयी है। वह कीमती वस्त्र पहनने लगी है। सो, यह उसकी सामर्थ्य की बात है। वह इतना उपार्जित भी करती है। पंजाबी खाता है, तो कमाता है। उसके शरीर में बल है, तो वह अपना मार्ग प्रशस्त करने का भी अधिकार रखता है, उत्साह रखता है। वह जीवन का मर्म समझता है, उसे भोगना जानता है।'

पण्डितजी भी उत्साहित बनकर गया—'सगढ़ी सम्भाल जहाँ···पगड़ी सम्भालियो!'

कमला ने कहा—'वह कवि धन्य है कि जिसने पंजाब का यह मशहूर गीत बनाया।'

पण्डितजी बोले—'वह गुरु धन्य हैं कि जिन्होंने पंजाब के नाम को नव-जीव नऔर नव-जागरण प्रदान किया!'

कमला ने कहा—'दिल्ली का गुरुद्वारा शीशगंज जब मैं देखती हूँ, तो छाती पर घूँसा खाती हूँ कि हाय! यहीं पर गुरु के बच्चों को दीवार में चिनवा दिया था। पिताजी मैं सदा उस धरती को प्रणाम करती हूँ।'

पण्डितजी ने रस भर कर कहा—'बेटी, ऐसे बलिदान तो इस भारत-भूमि में बहुत हुए हैं। आज भी हो रहे हैं।'

कमला ने कहा—'इसीलिए यह भारत जीवित है। यह हमारा देश!'

उस समय पण्डित ज्ञाननाथ जी भी प्रसन्न थे। आल्हादित थे।

कमला बोली—'पिताजी, आप तो मेरे विवाह की बात कहते हैं, परन्तु सचाई यह है कि मेरा विवाह तो हो चुका है। आपने आशीष भी दे दिया है। मैंने अपना विवाह देश के साथ कर लिया है। मुझे इसमें जितना आनन्द आता है, वह अपरिसीम है, अपरिमित है, जिसका मैं शब्दों से वर्णन नहीं कर सकती। इतने समय में मैं किस-किस प्रकार के घरों में गयी हूँ, वहाँ से कैसा अमोल आशीष प्राप्त करके लौटी हूँ, सचमुच, उसकी तुलना राजमुकुट अथवा राजमहल के सुखों से भी नहीं की जा सकती। मैंने नितान्त कंगाल और दरिद्र बहिनों, भाइयों तथा माताओं के आशीष पाये हैं, पिता जी! मुझे दुःख होता है, जब सोचती हूँ, हाय! रमाबाबू ने जरा भी नहीं सोचा कि उन्होंने जो पैसा चुराकर अपने घर में रखा, वह उन मा-बहिनों के लिये था। वह उनके पेट का टुकड़ा था। वे ऐसा न करते, तो सचमुच अपना जीवन बड़ा ऊँचा बना पाते। रमाबाबू देश के अच्छे सेवक सिद्ध होते।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'बेटी, आदमी की जरा-सी भूल जिन्दगी भर परेशान रखती है। उसके जीवन की खाई खोद देती है। इसीलिए कहा गया है, कि लालच बुरी बला है।'

कमला ने कहा—'हमारी पार्टी महीने में दो बार गाँवों में जाती है। कभी-कभी अधिक बार जाती है। गाँवों की सफाई करना, स्त्री-पुरुषों को रहन-सहन का तरीका बताना हमारा मुख्य काम होता है। बीमारों को दवा दी जाती है। कोई अधिक बीमार होता है, तो शहर के डाक्टरों से इलाज कराया जाता है। हमने इस प्रकार के दो सौ डाक्टरों की फहरिस्त बना ली है कि जो हमारे द्वारा प्राप्त हुआ रोगी का उपचार मुफ्त करेंगे। वे डाक्टर इस नगर में हैं—बाहर हैं।'

पण्डित जी बोले—'बेटी, प्रणाली अच्छी है।'

कमला ने कहा—'पिता जी, पैसा नहीं। काम बहुत है। हमारा देश अत्यन्त दरिद्र है।'

पण्डित जी ने कहा—'यहाँ तो कम्युनिज्म फैलेगा। जीविकानिर्वाह का प्रश्न देर तक नहीं दबाया जा सकेगा।'

कमला ने कहा—'संस्था के अधिकारी मुझे अधिक पैसा लेने के लिये कहते हैं। वे मुझे सौ-दो-सौ रुपया प्रतिमास देना चाहते हैं। परन्तु मैं अभी पचास रुपया से अधिक नहीं लेना पसन्द करती। मेरी आवश्यकता भी अधिक नहीं है। यहाँ घर में आजकल सरला कमाती है, तो वह खर्च भी बढ़ा सकती है। बढ़ा रही है। मुझे इसमें आपत्ति नहीं। पैसा है, आता है, तो क्यों न अच्छा खाया जाय, अच्छा पहिना जाय। और सरला की जिन्दगी ही अब सुनहरी दुनिया में डूब गयी है। अब वह उसी दुनिया की बन गयी है। फिल्मी दुनिया या रईस-नवाबों की दुनिया में पैसा बहता है, उछाला जाता है।'

पण्डितजी बोले—'उसके साथ आदमी भी उछाला जाता है।'

कमला ने कहा—'पिताजी, इससे भय नहीं किया जा सकता। ऐसे डर कर घर में भी नहीं बैठा जा सकता।'

पिताजी ने फिर कहा—'पर बेटी, पैसा आये तो क्या यही उचित है कि उसका उपयोग गलत ढंग से किया जाय?'

कमला ने कहा—'पिताजी, गलत-सही का कोई पैमाना या नपैना नहीं है। आप कैसे कहेंगे कि उसका उपयोग गलत या सही है।'

ज्ञाननाथजी बोले—'सरला पैसा पाती है, तो अधिक खर्च करती है। सुन्दर वस्त्र पहनती है। सुन्दर शृंगार करती है।'

कमला सूखे भाव में मुसकरायी—'आज आपने भोजन खाया तो करेले और मटर का साग जरूर अच्छा लगा होगा। और आपको मालूम है कि इतने साग में नौकर दो रुपये डाल आया होगा। किसी समय दो रुपये का साग हमारे यहाँ कई समय काम आता था। जबकि आज केवल एक समय। तो यह क्यों है? इसीलिए न कि पैसा आता है। आपकी बेटी लाती है। मैं तो जब समझती कि आप वह साग न खाते। सरला द्वारा प्रसारित इस जीवन को पसन्द न करते। नौकर से काम न लेते।' उसने सांस भरी और कहा—'पिताजी, हाथी के खाने के दाँत और हैं, दिखाने के और! जीवन की वास्तविकता को समझना ही हमारा काम है। वस्तुस्थिति से काम लेना ही

बुद्धिमत्ता है।' उसने कहा—'इस विश्व में सभी प्रकार के लोग हैं। गरीब हैं, अमीर हैं। सभी देवता नहीं बन सकते, सभी राक्षस नहीं। कम्युनिज्म आयेगा, तो उसका स्वागत किया जायगा। और वह आयेगा कहाँ से, हमारे हृदयों से तो प्रस्फुटित होगा। नये जमाने की नयी भावना का हमारा प्रसाद मिलेगा, —शुभाशीष!

ज्ञाननाथ जी ने प्रसन्न बनकर कहा—'हाँ, शुभाशीष।'

उसी समय नौकर ने रेडियो खोला। गाने का अन्तिम चरण आया—'जय-जय प्यारा भारत देश!' और तभी पिता-पुत्री ने एक दूसरे की ओर देख कर हँस दिया।

: २६ :

नगर के एक पुराने मित्र के यहाँ से पण्डित ज्ञाननाथ को विवाह का निमन्त्रण पत्र मिला। वे मित्र पत्रकार थे। जाति से मुसलमान। निमन्त्रण पाकर पण्डितजी को आश्चर्य हुआ। जिसका कारण यह था कि वे मित्र निःसन्तान थे। सप्ताह भर पूर्व वे मिले, तो विवाह की कोई बात नहीं चली। वे देर से उनके अन्तरंग थे। संध्या समय जब अपनी दोनों पुत्रियों सहित पण्डितजी वहाँ पहुँचे, तो वे यह देखकर और चकित हुए कि वह विवाह एक शरणार्थी बाला का था। उस लड़की के माता-पिता झगड़े में मर चुके थे। लड़की को उन्होंने अपने एक मित्र के यहाँ रखा था। वहीं पर उसकी पढ़ाई का प्रबन्ध था। वे मुसलमान मित्र एक हिन्दू युवक से उसका विवाह कर रहे थे और स्वयं कन्यादान दे रहे थे। हिन्दुओं के यहाँ कन्यादान देने वाले माता-पिता उस दिन उपवास रखते हैं, तो वे मित्र भी अपनी बेगम सहित उस दिन सुबह से भूखे थे। जब पण्डित ज्ञाननाथ जी पहुँचे, तो तब तक नगर के अन्य बहुत से गण्य-मान्य व्यक्ति वहाँ आ उपस्थित हुए थे। पण्डितजी के मित्र ने जब सरला को बम्बई से लौट आती पाया, तो उन्होंने उसे बरबस पकड़ते हुए प्यार भरे शब्दों में कहा—'अब तू शैतान बन गयी है, बड़ी हो गयी है।'

सरला ने कहा—'चाचाजी, बच्चे शैतान ही ठीक रहते हैं। सीधे बच्चे मा-बाप से भला क्या पाते हैं।'

वह चाचाजी हँस दिये, सरला के सिर पर हाथ फेरने लगे।

सरला ने कहा—'चाचाजी, वह लड़की कौनसी है ?'

चाचा ने कहा—'ऊपर चाची के पास जा। बैठी होगी। दुलहन बनी होगी।'

सरला ने कहा—'उसके लिए मैं भी कुछ लाती। पर पहिले कुछ सूराग तो पाती। यह बात आपने पिताजी से भी छिपा रखी !'

वह बोले—'बेटी, ऐसे मामले ही नाजुक होते हैं। अब लड़की अपने घर जायेगी, तो सब बात अपने-आप खुलेगी।'

उसी समय एक अन्य पत्रकार वहाँ आये। वे बोले—'सरलादेवी का आज गाना न हुआ, तो इस विवाह का उत्सव क्या शोभनीय बनेगा !'

तुरन्त ही सरला ने कहा—'बम्बई में गला खराब हो गया। जुकाम भी रहने लगा।'

किन्तु उसके चाचा ने कहा—'नहीं, बेटी ! ऐसे अवसर पर तो तुम्हें जरूर गाना चाहिए। मुझे तो तेरा पता भी नहीं था। मैं पहिले ही पण्डितजी से कह देता।'

कमला ने कहा—'चाचा जी, सरला जरूर गायेगी। आपने जब इस प्रकार की भावना प्रदर्शित की, तो क्या हमारी ओर से इतनी भी न होगी।'

चाचा जी बोले—'बेटी, इस दुनिया में दोनों बातें साथ-साथ चलती हैं। मेल भी चलता है, झगड़ा भी होता है। इस धरती पर क्या कुछ नहीं होता। धरती माता की छाती बड़ी है, इन्सान सभी तरह के खेल-खेलता है।'

उसी समय बारात के बाजे का स्वर सुनाई दिया। जिसका स्वागत करने के लिए लोगों ने फूल-मालाओं को अपने हाथों में ले लिया। बारात आ गयी। अजीब बात थी लड़की की ओर से स्वागत के लिए जहाँ हिन्दू-मुसलमान उपस्थित थे, वहाँ बारात में भी लड़के की ओर से हिन्दू और मुसलमान बाराती थे। स्वागत सम्पन्न हुआ। विवाह मण्डप में लड़की को बुलाया गया। आर्य-समाज की रीति पर पाणिग्रहण संस्कार हो गया। बारात तथा अन्य

अभ्यागतों के लिए स्वल्पाहार का प्रबन्ध था। वह भी पूर्ण हुआ। इसके उपरान्त ही, उस मण्डप में सरला को गाने सुनाने के लिए कहा गया।

आरम्भ में सरला ने एक स्वागत गान गाया और बाद में एक भजन। स्वागत गीत का अर्थ था कि कलियाँ फूट चली हैं। भौंरा गुनगुन करता हुआ उनके चारों ओर घूमने लगा है। कलियों की पंखुड़ियाँ भी निकल आई हैं। बसन्त का आगमन है। खेतों में सरसों फूल रही है। किसान बालायें, आगन्तुक बसन्त का स्वागत करने के हेतु, यौवन के झोंके खाती हुई, उस बासंती बयार से अठखेलियाँ करती हुई, कामना कर रही हैं, पुकार कर रही हैं, आओ, प्यारे बसन्त! हमारे हृदयासन तुम्हारे लिए रिक्त हैं। हम तुम्हारे आगमन पर उत्फुल्ल हैं। हमारे हृदय-मन्दिर के कपाट तुम्हारे लिये खुले हैं। तुम बैठो। तुम सजो। तुम इस जीवन के मालिक बनो! तुम यशस्वी बनो! तभी हमारा जीवन है। उस अवस्था में ही हमारा ध्येय सार्थक होगा। जब अभी तक हमारा देश जीवित है तो तुम हमारे मन से राग, द्वेष और अहंकार मिटा दो। तुम ऐसे स्वत्व को भी हमारे हृदय से निकाल दो कि जिसमें दूसरों का हनन होता हो, दूसरों का पक्ष जाता हो। सरल हृदय हम, यह विराट प्रकृति का रूप, ये सुगन्ध कलियाँ, ये हमारे खेत, सभी तुम्हारा स्वागत करते हैं, ऐ बसन्त! तुम यशस्वी बनो। तुम दीर्घजीवी होओ।

बाद में सरला ने जो भजन गाया, वह सूरदास का था। गीत छोटा था, परन्तु जिस भावना और प्रदर्शन के साथ सरला ने उस गीत की आत्मा को उस मण्डप में सजाया, वह निःसन्देह, उन श्रोताओं के लिए अमूल्य और दर्शनीय था। उस छोटे से गीत में उसने लगभग आधा घण्टा लगा दिया। उसका प्रदर्शन इस प्रकार किया कि लोगों को लगा कि सचमुच, वह अपने सामने राधा को देखते हैं,—विरह की सतायी राधा को। अपने अन्तर के छुपे हुए सत्य कृष्ण की बाट जोहती हुई राधा को! दोनों ही गानों में बार-बार तालियाँ बजी थीं। श्रोताओं की आकांक्षा बढ़ती जाती थी। हालांकि, सरला नृत्य नहीं कर रही थी, तब भी वह बैठी हुई हाथ, मुँह और आँखों से भावों को बता रही थी। दर्शकों की इच्छा इस प्रकार भी पूरी हो रही थी। मानो उन्हें एक अलभ्य वस्तु मिल गयी थी।

जब गाना समाप्त हुआ, तो दर्शकों की माँग और आई। परन्तु पण्डित

ज्ञाननाथ के मित्र ने खड़े होकर कहा—'सरला बेटी, कल ही बाहर से लौटी हैं। स्वस्थ नहीं हैं। जितना भी इन्होंने गाया हमारे लिये वह भी अनुपम रहा, श्रेयस्कर रहा।' फिर उन्होंने कहा—'आपने मेरे निमन्त्रण पर पधारने का कष्ट किया, इसके लिए मैं आभारित हूँ।' इतना कहते हुए वे गम्भीर हुए और बोले—'मेरे द्वारा सम्पन्न इस विवाह और कन्यादान पर आप सभी चकित हुए होंगे। लेकिन मैं इसे आश्चर्य की बात नहीं मानता। मैं इसे इन्सान के इखलाक की एक छोटी-सी बात समझता हूँ। जिस कन्या को आप बधू के रूप में देखते हैं, यह मेरे एक मुसलमान दोस्त के हाथों में पड़ गयी थी। उन्होंने गुण्डों से इसकी रक्षा की थी। वे हजरत बाद में पाकिस्तान चले गये। इस कन्या को मुझे सौंप गये। मैं चाहता, तो इस लड़की को शरणार्थी कैम्प में भेज देता। परन्तु मेरे ज़मीर ने पुकार की, अगर यह तुम्हारी लड़की होती तो? ताज्जुब, यही सवाल मेरी बीवी ने मुझसे किया। मैंने इस सवाल के सामने अपना सिर झुकाया। लड़की को एक हिन्दू परिवार में रखा। यह आठवीं क्लास से पढ़ना छोड़कर आयी थी, यहाँ दसवीं पास की। मेरी इच्छा आगे पढ़ाने की थी। लेकिन मेरे घर में बैठी हुई बीवी साहिबा किसी और फिराक में लगीं। वे लड़की का विवाह करने की बात सोचतीं। यही मुझसे कहतीं। लाचारी से मैंने भी जमाने की और मुल्क की रफ्तार देखी। लड़का तलाश किया। ये दूल्हे साहब इसी साल बी. ए. कर चुके हैं। लड़की के भाग्य से ये भी पंजाबी हैं। मा-बाप इनके भी नहीं हैं। सरकार की एक अच्छी नौकरी में लगे हैं। आप सब दोनों को आशीष दीजिये।'

पण्डित ज्ञाननाथ जी ने खड़े होकर कहा—'मेरे मित्र लतीफ साहब और इनकी बेगम साहिबा ने कन्यादान देकर हम लोगों को भी यह मिठाई खाने का मौका दिया, इसके लिए हमारी ओर से इन दोनों को हजार बार शुक्रिया!' वह बोले—'भाई लतीफ साहब मेरे पुराने दोस्त हैं। हम दोनों ही बूढ़े हैं। लेकिन आपने इन्सानी इतिहास में जो नया अध्याय इस तरह जोड़ दिया है, आप लोगों की ओर से मैं एक बार फिर इनका शुक्रिया अदा करता हूँ। मुझे दुःख है कि आज हिन्दू मुसलमान का सवाल भूत की तरह हमारे सिर पर चढ़कर बोलता है, परन्तु मैं आपको यकीन दिलाता हूँ यह भूत एक दिन अपने-आप मर जायगा। इन्सान जिन्दा रहेगा। इन्सानियत रहेगी। लतीफ

साहब ने एक कन्या के साथ जो कुछ किया, उसे हमें हिन्दू मुसलमान की निगाह से न देखकर इन्सान की निगाह से देखना चाहिए। मेरी ख्वाहिश है कि खुदा आपको इसकी बख्शीश दे। वे मा-बाप जो इस लड़की को पाल-पोसकर चले गये, वे तो इसके जन्मदाता थे ही, उनकी आत्मा लतीफ साहब को दुआ भी देती होगी; परन्तु जिस उत्तरदायित्व को अनुभव कर आपने अपने को सच्चा मा-बाप सिद्ध किया, मैं कामना करता हूँ कि प्रत्येक नागरिक के मन में इस प्रकार की भावना का जन्म हो।'

घर की ओर लौटते हुए, रास्ते में कमला ने पिता और सरला को सुनाया—'लतीफ साहब ने दहेज भी अच्छा दिया। आपने देखा, पिताजी ?'

ज्ञाननाथ जी बोले—'मैंने दहेज नहीं देखा। मैं कुछ लोगों से बातें करता रहा।'

कमला ने कहा—'कई हजार का होगा। सब रेशमी साड़ियाँ थीं। सिंगर मशीन थी। जेवर थे। लड़के के लिए घड़ी, फाउन्टेनपेन, पलँग और उसका बिस्तरा भी शोभनीय था।'

सरला ने कहा—'जीजी, लड़की भी अच्छी थी। मेरी देखी-सुनी थी। मैं अन्दर गयी, तो चिपट गयी। वह रावलपिण्डी की थी।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'लतीफ मियाँ ने अच्छा किया। एक उदाहरण उपस्थित किया !'

घर आ गया। सरला अपने कमरे में जाकर कपड़े उतारने लगी। उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ ने कमला को सुनाया—'सचाई यह है, मैंने आज तक सरला का गाना नहीं सुना। नृत्य नहीं देखा। लेकिन आज जो गाना सुना, तो मैं स्वयं प्रभावित हुआ। आखिर सरला ने इतना बड़ा हुनर कैसे प्राप्त किया। लाहौर में मैंने तो कभी नहीं देखा। सुना नहीं।'

कमला ने मुसकराकर कहा—'सरला की तैयारी लाहौर से थी। स्कूल में इसने गाना और नृत्य की पढ़ाई ले रखी थी। मैं जानती थी। मा भी समझती थी। प्रायः घर में यह गाया करती थी।'

पण्डितजी बोले—'आज मुझे लगा, सरला अच्छी गायिका बनेगी।'

कमला ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'अच्छी बन गयी है। सर्व

श्रेष्ठ नहीं। पक्के गानों में अभी पारंगत नहीं है। वैसे रुपया सबसे अधिक प्राप्त करती है।'

उसी समय रूँ-रूँ करती हुई सरला भी उस कमरे में आ गयी। वह आते ही कमला के गले से चिपट गयी।

कमला ने कहा—'अरी, देख, देख ! मुझे बैठने दे !'

सरला ने कहा—'जीजी, बम्बई भी एक दर्शनीय शहर है। वहाँ का मालाबार हिल बड़ा शोभता है। दूर से कलकल करता हुआ तरंगित सागर कितना भला लगता है कि बस, वाह !'

ज्ञाननाथजी ने पूछा—'कहाँ ठहरी थी ? उस मलाबार हिल पर ?'

सरला ने कहा—'हाँ, पिताजी ! वहीं की एक शानदार कोठी में मेहमान बनायी गयी थी। वह एक राजा की कोठी थी। उस समय रानियां भी वहाँ थीं। राजा की दो युवा लड़कियाँ भी।'

कमला ने कहा—'तो तभी तू वहाँ पड़ी रही।'

'हाँ जीजी ! वहाँ शान्ति थी। चैन की साँस मिलती थी।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'उस वैभव में भी शांति है, मैं नहीं मानता। मुझे ऐसा अनुभव नहीं होता।'

कमला ने कहा—'शान्ति और चैन पाये से मिलते हैं। पड़े हुए नहीं मिलते।'

ज्ञाननाथजी कुर्सी पर बैठे थे। कमला और सरला पलँग पर। सरला पड़ी थी, कमला उठ बैठी थी। उसी समय सरला ने उठकर कहा—'जीजी, इस बार बम्बई जाकर एक बात देखी। उस राजा की रानियों और लड़कियों के पास सन्तोष की साँसें तो नहीं थीं। मैं अनुभव करती कि वे सब जीवन का सन्तोष पाने के लिए बेचैन थीं। जाने क्यों, वे मुझ पर भी ईर्षा करने लगी थीं। मुझे प्रायः घेरे रहतीं। और यह तो मैंने प्रत्यक्ष देखा कि पैसा पाकर, समाज की ऊँचाई पर बैठ कर, नदी में कटे हुए नाले के सदृश आदमी भी कट जाता है। समाज से दूर हो जाता है। वे वैभव की गोद में पली हुई नारियाँ क्या जीवन की वास्तविकता को समझती थीं,—कदापि नहीं।'

ज्ञाननाथजी बोले—'निःसन्देह, वे जीवन को नहीं जानती होंगी !'

सरला ने हँस कर कहा—'मैं एक दिन भुट्टा मँगा कर खाने लगी।

बाजार जा रही थी, रानी और राजा की दोनों लड़कियाँ साथ थीं। उन्हें भी खरीदारी करनी थी। मुझे साथ ले चली थीं। बाजार में सड़क के किनारे एक आदमी भुट्टा भून रहा था। मैंने ड्राइवर से गाड़ी रोकने को कहा। भुट्टा मँगाया तो रानी और उन लड़कियों ने आश्चर्य से कहा, यह क्या? मैंने हँस कर कहा—भुट्टा! मकई! लड़की ने फिर प्रश्न किया—यह भुट्टा क्या बेल पर लगता है, या पेड़ पर! किसी बड़े दरख्त पर होता है? सच, पिताजी! जी में तो मेरे आया कि उस जवान छोकरी के मुँह पर तमाचा मार दूँ। उससे कह दूँ, हाय, री बदकिस्मत! तुझे कुछ भी मालूम नहीं। देश की वस्तुओं का भी ज्ञान नहीं। गरीबी-अमीरी का पता नहीं!'

ज्ञाननाथजी बोले—'यह उसका दोष नहीं था। परम्परा का दोष था। उनके रहन-सहन का दोष था! उन्हें महलों के बाहर की दुनिया का कुछ पता नहीं।' उन्होंने कहा—'धन का यही सबसे बड़ा दोष है कि वह आदमी को 'नुमायशी' बना देता है। दुनिया की वास्तविकता से दूर दूर रखता है!'

सरला ने कहा—'उस एक भुट्टे में से जब आधा राजकुमारी को दिया, तो उसने बड़ा पसन्द किया। दूसरे दिन उस राजमहल में टोकरा भरे भुट्टे आये और सभी ने खाये।'

कमला ने कहा—'किसी के दर्द नहीं हुआ?'

'जीजी! दर्द क्या, वह टोकरा भर भुट्टे बात-की-बात में समाप्त हो गये। वे बड़े प्रेम से चर्वण किये गये।'

कमला बोली—राजा-रईसों के ढङ्ग ही जुदे होते हैं। जीवन को देखने और समझने के भाव भी जुदे।'

सरला ने कहा—'जीजी, सचाई तो यह है, ये राजा लोग स्वयं ही ऊँचाई पर जाकर निचाई की ओर नहीं देख पाते। वे ऐसा नहीं चाहते। पिता जी के कथनानुसार वे पैसा क्या पाते हैं, जीवन का श्राप पा जाते हैं। वे ऊपर से चमकीले बने हुए भी अन्दर से तड़पते हैं। निःसन्देह, वे जीवन के दास होते हैं।'

उस समय पण्डित ज्ञाननाथ की दृष्टि कहीं और थी। वह बाहर की ओर देख रहे थे, शायद आसमान की ओर! उस समय आसमान काला था।

निरा शून्य ! बस, केवल उस पर तारों का साम्राज्य था। उन तारों की चमकती हुई दुनिया में लीन बने हुए पण्डितजी अपनी पुत्रियों की बात सुन रहे थे । सरला जो कुछ कह रही थी, उसके एक-एक शब्द उनके कानों में जा रहे थे । वही शब्द उनके हृदय से टकराते थे ।

कमला ने कहा—'तुझे उन राजाजी ने भी कोई पुरस्कार दिया ?'

सरला ने कहा—'जो बीस हजार रुपया मुझे मिला, राजाजी का भी उसमें पाँच हजार था। वह रुपया कई व्यक्तियों ने दिया । इस बार जो पदक मिले हैं, वे भी कीमती हैं । सोने के हैं । जब मैं बम्बई से चली, तो राजाजी और उनकी लड़कियाँ स्टेशन तक आईं । राजा साहब अगले मास ही यहाँ आने वाले हैं । मुझे आज ही उन लड़कियों को पत्र लिखने थे । कल लिखूँगी । राजा साहब को भी एक पत्र दूँगी ।' वह बोली—'ताज्जुब है कि बम्बई इतना बड़ा व्यापारिक और बहु-धन्धी नगर बनकर भी, आमोद-प्रमोद की ओर अधिक देखता है । जब मैं स्टेशन आई और वहाँ से चली, तो कम-से-कम पचास व्यक्ति तो वहाँ उपस्थित थे । उनमें नारियाँ भी थीं। बम्बई की सात्विकता मुझे पसन्द आई । मुझे लगा कि वहाँ जीवन का भोग भी है, त्याग भी है । उस चमकीली दुनिया में चाँदी-सोने की जैसे बाढ़-सी आती दिखायी दी ।'

कमला ने कहा—'उस दुनिया में कितने खोते हैं, खपते हैं, तूने इसका अनुभव नहीं किया । और तू जिस भोग और त्याग की बात को कहती है, मैं समझती हूँ कि वहाँ त्याग का क्या काम ? वहाँ भोग ही दीखता होगा । वहाँ पैसा बहता है, तो वैभव को पाने का प्रतिद्वन्द्व और प्रतिस्पर्द्धा का नग्न रूप ही चहुँ ओर नाचता होगा । बता तो, तुझे वह नहीं दीखा ? तूने देखने का प्रयत्न नहीं किया ?'

सरला ने जैसे चौंककर कहा—'जीजी, मैं वहाँ बन्धन में थी । एक बड़े घर की मेहमान थी । उनके अदब-कायदों को पालन करने के लिए भी बाध्य थी । पैदल घूमती, स्वतन्त्र घूमती, तो कुछ समझ पाती । मैं तो एक राजा के महल में रही । मोटर में घूमी । कुछ स्थानों को छोड़कर मैं अन्यत्र कहीं नहीं गयी । एक सप्ताह तक तो मैं दावतों में व्यस्त रही । वे दावतें भी रईसों के यहाँ सम्पन्न हुईं । उनमें भी बड़े आदमी आये ।'

कमला ने हँसकर कहा—'अब तू बड़ों की गिनती में गिनी जाने लगी है। बहुत सा पैसा भी पा गयी है।'

सरला ने तब भी सरल भाव में कहा—'न, जीजी! सभी कुछ तुम्हारा है। पिताजी का आशीष है। अवसर और भाग्य की बात है कि मुझे यह मौका मिल गया।'

कमला ने कहा—'जब तेरे पास कला है, तो उसका आदर होना ही चाहिए। तुझे वह मिला है। यश मिला है, धन मिला है।'

सरला ने तभी साँस भरी—'पर जीजी! मेरे मन में जैसे कोई चोर डोलता है। वह मुझे डराता है। साँप की तरह से काटता है।'

पण्डितजी का मुँह उस समय भी आसमान की ओर था। कान सरला की बातों की ओर। बातें उनके भी पास थीं, कहने की इच्छा थी, परन्तु उस समय उन्हें मौन बने रहना ही उचित लगा। इसी में अपना और पुत्रियों का भला दिखायी दिया। क्योंकि उन्हें पता था कि सरला के मन के विपरीत यदि कुछ कहा जायगा, तो वह पसन्द नहीं करेगी। नाराज होगी। और जब से वह उपार्जित करने लगी है, तब से मानो स्वयं उनमें ऐसी हीनता आयी है कि सरला से जो कुछ कहा जाय, नाप-तोल कर कहा जाय! उसे नाराज करना किसी के हित में नहीं। उनके हित में नहीं। लेकिन जब सरला ने डरने की बात कही, तो उन्होंने आतुर भाव में उसकी ओर देखा और कहा—'क्यों बेटी! यह डरने की बात क्या?'

सरला बोली—'पिताजी, बात स्पष्ट है, मैंने जो रास्ता ग्रहण किया है, यह निरापद किसी अवस्था में नहीं है। इस रास्ते पर सभी ओर लुटेरे हैं,—नारी के लुटेरे! नारी-सौन्दर्य के चोर! और दुर्भाग्य से मैं नारी हूँ। सुनती हूँ कि मैं सुन्दरी भी हूँ। लोग मेरा गाना पसन्द करते हैं, इसका तो प्रमाण यह है कि मैं रुपया पाती हूँ। सम्मान पाती हूँ।'

आतुर बन कर ज्ञाननाथ जी बोले—'बेटी, यही मैं अनुभव करता हूँ। तेरी जीजी से कह भी चुका हूँ। तूने स्वयं बात छेड़ी है, तो कहता हूँ, इस चमकती हुई दुनिया में नारी का खून किया जाता है, उसका खून पिया जाता है। और यही बात मैं तुम्हारे और अपने सम्मान के विपरीत पाता हूँ।'

सरला ने कहा—'एक दिन राजा साहब मेरे कमरे में आये। नशे में चूर! मैं उस समय सोने की तैयारी में थी। सोने के कपड़े पहन चुकी थी। लेकिन जब मैंने उन्हें उस रूप में देखा, तो सच, पिताजी, मेरी आत्मा काँप गयी। हालाँकि मैंने सोचा था, इन्होंने कुछ कहा, तो जवाब दूँगी। किन्तु वे अभी अभी आये और बैठे ही थे कि तभी उनकी बड़ी लड़की उधर आ निकली। वह बैठ गयी, या कहिये मैंने बैठा ली। फिर तो एक-दो बात करके राजा साहब वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो गये। वे अपने कमरे में लौट गये।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'वहाँ तुम कुछ नहीं कर सकती थीं। वे तुम्हें मरवा सकते थे। किसी को खबर भी न होती। और तुम नर्तकी थीं,—गाने वाली; उस समाज में इसका मोल कितना है, वह तुम जानती होगी।'

सरला ने खिन्न स्वर में कहा—'मैं उसे भी समझती हूँ, पिताजी!'

'और तुम यह भी समझती हो कि किसकी पुत्री हो, कैसी भावना में पली हो!' नितान्त उद्विग्न स्वर में ज्ञाननाथ बोले।

जैसे रुके साँस के साथ सरला ने अपने पिता की ओर देखकर कहा—'मुझे उसका भी पता है, पिताजी!'

किन्तु ज्ञाननाथ जी ने फिर आहत हुए स्वर में कहा—'बस मुझे इतनी ही तुमसे बात कहनी है, बेटी!' वह बोले—'पैसा तो आता और जाता है। परन्तु सम्मान और चरित्र खोकर नर-नारी का समाज क्या श्रद्धा के साथ जीवित रह सकता है। मुझे तुम दोनों पुत्रियों पर अभिमान है। अभी तक मैंने तुम दोनों को अपना पुत्र समझा है।'

सरला पलंग से खड़ी हो गयी और जीवन में प्रथम बार वह कदाचित् अत्यन्त भावातिरेक में अपनी श्रद्धा को प्रकट करने के अभिप्राय से पिता के चरण पकड़ कर बोली—'प्राण रहते मैं आपके स्नेह की रक्षा करूँगी, पिताजी! आप भरोसा रखें!'

पण्डितजी के नेत्र भरे थे। वे जब गालों पर प्रवाहित हो आये थे। सरला की आँखें भी भर आई थीं। कमरे में प्रकाश था। परन्तु पलंग पर बैठी हुई, मौन बनी हुई कमला के आँसू भी उस गद्‌गद् भाव में झरझर करते हुए बाहर आ गये थे, वे उसके गालों पर फैल गये थे...मानो वे तीन धारायें बहती हुई त्रिवेणी का संगम बन गयी थीं...

: २७ :

पण्डित ज्ञाननाथ के लिए इससे अधिक गौरव की और क्या बात होगी कि उनकी दोनों पुत्रियों की कीर्ति सर्वत्र फैल रही थी। रमाकान्त ने जिस संस्था से अपना सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया, उससे पृथक होकर भी, वह घर में नहीं बैठा रहा। मित्रों और साथियों ने उसे फिर कर्म-क्षेत्र में खींच लिया। चूँकि रमाकान्त कर्मण्य था, कार्य-विधि को जानता था, इसलिए उसने अपनी खोयी हुई कीर्ति को पुनः स्थापित कर लिया। और यह सर्व-सिद्ध था कि जनता किसी के निजी मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती, वह अपने रास्ते पर चली जाती है। मानो किसी के द्वारा चलाई जाती है। उसे रास्ता बताने वाली भी कोई और शक्ति होती है।

उन्हीं दिनों देश में धारा सभाओं के चुनाव की चर्चा चली। उम्मीद-वार खड़े किये जाने लगे। कमला जिस संस्था की मंत्रिणी थी, वह राजनैतिक संस्था तो थी नहीं, इसलिए देश की विशिष्ट संस्था की ओर से एक क्षेत्र के लिए कमला का नाम चुना गया। उसी क्षेत्र से एक दूसरी राजनैतिक संस्था ने रमाकान्त को उम्मीदवार के पद पर खड़ा किया। जिस दिन उम्मीदवारों के नाम निश्चित होने की अन्तिम तिथि थी, तो उस दिन के प्रातः ही कमला कचहरी जाने के लिए जल्दी तैयार हुई। सरला भी वहाँ जाने के लिए उद्यत हुई। सचाई यह थी कि अपनी जीजी का नाम मेम्बरी की उम्मीदवारी में आता देखकर वह अतिशय प्रसन्न थी। किन्तु अजीब बात थी कि स्वयं कमला और पण्डित ज्ञाननाथ प्रसन्न नहीं थे। उन दोनों के मन में बात थी कि चुनाव-युद्ध में कीचड़ उछलेगी। समय की बरबादी अलग होगी। कमला समझती थी कि रमाबाबू की पार्टी पूर्ण रूप से निर्लज्जता का प्रदर्शन करेगी। कमला का एक यह भी मत था कि वह धारा-सभा में जाकर जन-हित का कोई उपयोगी काम भी न कर सकेगी। रमाकान्त के सामने उसकी जीत भी न होगी। इसलिए वह कचहरी में जाकर अपना नाम वापिस लेने की बात सोचती थी। पण्डित ज्ञाननाथ की भी यही राय थी। फलस्वरूप, जब नौकर ने प्रातः का जलपान लाकर रखा, तो पिता और जीजी को लक्ष करके सरला ने कहा,

रमाकान्त जिस इरादे पर खड़े हुए हैं, वह पूरा नहीं होगा। विजय जीजी की होगी।'

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'इस चुनाव-युद्ध में जीतने वाला भी हारता है, बेटी! यह अमीरों का सौदा है। हम गरीबों का नहीं।'

इतनी बात सुनकर सरला का माथा ठनक गया। उसे पहिले से शंका थी कि पिताजी इस चुनाव के विरुद्ध हैं। जीजी को अनुत्साहित कर रहे हैं। इसीलिए उसने उस समय स्पष्ट प्रतिरोध करना पसन्द किया। उनकी बात सुनते ही उसने कहा—'आखिर हार-जीत के अतिरिक्त इस जीवन में और क्या है, पिताजी! आप जीजी को उत्साहहीन मत बनाइये! चुनाव व्यय के लिए हमारे पास काफी रुपया है। आप घर में बैठे तमाशा देखिये। केवल आशीष दे दीजिये!'

ज्ञाननाथजी ने सरला की बात सुनी, तो वह क्षणिक अप्रतिभ बन गये। 'आप बैठे तमाशा देखिये' का अर्थ ही उन्होंने यह समझा कि इस सरला ने उन्हें मूर्ख समझा है, बेकार माना है। इसलिये वह रूक्ष स्वर में बोले—'हाँ, मुझे तुम लोगों के बीच में नहीं बोलना चाहिए। मुझे अपना कोई अधिकार भी नहीं समझना चाहिए!'

किन्तु पिताजी से वह खेदजनक बात सुनकर कमला भी चकित बन गयी। स्वयं सरला की बात उसे भी पसन्द नहीं आई। इसीलिए वह सरला की ओर देखकर बोली—'जो तेरे मन में आता है, कह देती है! कुछ भी नहीं सोचती! बड़ी हो गयी है, तो पिताजी का अस्तित्व आँखों में नहीं लाती!'

परन्तु सरला तो उस समय भी लड़ने के लिए बाध्य थी। वह मानो कटिबद्ध थी। तुरन्त बोली—'पिताजी, सदा ही ऐसी बात करते हैं। अनुत्साहित करते हैं। कोई पिता अपने बच्चों के बढ़ने से प्रसन्न होता है और हमारे पिताजी गम्भीर बनकर सोचने लगते हैं। आदर्श की बात उठाते हैं।'

कमला ने फिर अपने होंठ काटे—'जब तू इतना नहीं समझती तो शिकवा क्या है! इस चुनाव में कितनी कीचड़ उछलती है, इसका पता है! रमाकान्त किसी विशेष उद्देश्य से खड़ा किया गया है!'

तपाक से सरला ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'कीचड़ उछले तो

उछलने दो ! हमने कोई पाप नहीं किया ! हमारा जीवन तो समाज के चौराहे पर खड़ा है ! अगर उन्होंने ज्यादा बदतमीजी की, तो मैं गिरफ्तार करा दूँगी। बच्चू जेल में न सड़े, तो मैं अपना नाम बदल दूँगी !'

ज्ञाननाथ जी बोले—'मैं तुम्हें निरुत्साहित नहीं करता, बेटी ! कदम उठाने से पहिले सोच लो। कठिनाई समझ लो !'

सरला ने कहा—'वह हमने समझ ली है, पिताजी ! आप आशीष दीजिये ! जीजी को आगे बढ़ने का उत्साह प्रदान कीजिये !'

ज्ञाननाथ जी कहने वाले थे कि मैं भी पिता हूँ। हृदय रखता हूँ। मैं अपनी सन्तानों की कीर्ति को देखकर प्रसन्न होता हूँ किन्तु उसी समय वहाँ पर कुछ अन्य व्यक्ति आ गये। वे सब कमला को कचहरी ले चलने के लिए आये थे। उनमें नगर के एक प्रतिष्ठित वकील थे। पण्डित ज्ञाननाथ के परिचित एक *मुसलमान पत्रकार लतीफ साहब भी थे, जिनके यहाँ पिछले* दिनों लड़की की शादी में वे सब हो आये थे। उन्हें देखकर कमला ने कहा—'चाचाजी, आपने भी तकलीफ की ! मैं खुद ही आ जाती !'

चाचाजी बोले—'मुझे आना पड़ा। या यों कहो, बुलाया गया। मुझे कल ही पता चला, तुम चुनाव युद्ध से घबड़ा रही हो। पण्डित ज्ञाननाथजी भी पीछे कदम हटा रहे हैं।'

तुरन्त ही सरला ने कहा—'यह मैं नहीं होने दूँगी, चाचाजी !'

चाचाजी बोले—'शाबाश, बेटी !' उन्होंने कहा—'तुम तो जानती हो, यह चुनाव भी देश हित के लिए किया जा रहा है। देश भक्त धारा सभाओं में जायें, देश-हित का काम करें, यही हमारी तमन्ना है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'तो भाई, मुझे कब इन्कार है। कमला तुम्हारी है।'

वह बोले—'हाँ, हाँ, कमला मेरी बेटी है। यही कहने मैं आया था। सभी लोगों की राय है, रमाकान्त के सामने कमला का खड़ा होना ही उचित रहेगा। शरणार्थियों के वोट उस इलाके में अधिक हैं।'

सरला बोली—'वे वोट किधर जायेंगे, मुझे इसका पता है।'

उन व्यक्तियों में एक शरणार्थी सज्जन भी थे। वह बोले—'रमाकान्त ने यह चुनाव केवल हिन्दू बनकर जीतना पसन्द किया है। उन्होंने हिन्दू राज का नारा बुलन्द किया है।'

सरला ने कहा—'स्वार्थी व्यक्ति इसी प्रकार रंग बदलते हैं। इस आदमी का भला कोई भरोसा है।'

लतीफ साहब ने कहा—'आज हरेक हिन्दुस्तानी का यही तरीका है। कुछ दिन पहिले मुसलमानों में भी यह नहीं कहा जाता था कि कौन मुस्लिम-लीगी और कौन कांग्रेसी है। जाति के नाम पर मीठा घूँट पीना सभी को पसन्द आता है।'

सरला ने कहा—'चाचाजी, देशहित के लिए यह घूँट जहर का काम करता है।'

लतीफ मियाँ मुसकरा दिये—'बेटी भला हिन्दुस्तान ने इसे कभी सोचा है? इस घूँट को पीने को लिए हमने मा का गला तराशा है!'

उसी समय कमला ने नौकर को आदेश दिया, 'चाय और जलपान लाओ। जल्दी करो!'

आये हुए वकील साहब बोले—'समय हो रहा है।'

कमला ने सरला की ओर देखा—'तू जा! आप लोगों के लिए कुछ लिवा ला!'

सरला उठ खड़ी हुई, पाँच ही मिनट में चाय के प्याले और जलपान की तश्तरियाँ सभी व्यक्तियों के सामने आ गयीं।

चाय पीते हुए उस शरणार्थी सज्जन ने कहा—'जाति का सवाल उठाना अब हमारे लिए शोभनीय नहीं रहा। उस शराब को पीते-पीते यह देश तबाह हो गया।

लतीफ साहब ने तश्तरी से बरफी का टुकड़ा उठाया और कहा—'भाई, इस जातिवाद ने हमारा नाश कर दिया। हमें नंगा और भूखा तो मार दिया। अंग्रेजों ने हमारी इसी कमजोरी का भरपूर फायदा उठाया। हम इन्सान हैं, यही हमारी जाति है।'

सरला ने कहा—'चाचाजी, जातिवाद को छोड़ हमने एक और बड़ी कौम बना ली है। वह तो हमारा दिनरात गला घोंटती है। खून चूसती है।'

लतीफ साहब ने चश्मे से अपनी आँखें निकाल कर कहा—'बेशक! बेशक! बेटी यह तुमने ठीक कहा! वह कीड़ा हमारा खून चूस रहा है। ऊँच-नीच का भेद इन पैसे वालों ने ही पैदा किया है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'जातिवाद का महत्त्व भी सरमायेदारी की पथरीली दीवारों से घोषित किया गया है। इन दीवारों के अन्दर ही धर्म को विकृत किया गया है। जो धर्म झोपड़ियों में निर्मित किये गये, जन समाज के कल्याण के लिये बनाये गये, वे सरमायेदारी की छत्रछाया में जाकर नष्ट कर दिये गये, जातियों का पृथक्करण भी वहीं बना। वेदों का पढ़ना और पढ़ाना केवल ब्राह्मणों के हिस्से डाला गया। एक दिन आया कि उन ब्राह्मणों को भी पूर्णरूप से पतित बनाया गया। समाज का समस्त पाप उन निर्धन ब्राह्मणों को वहन करना पड़ा।'

कमला ने कहा—'ब्राह्मण भिखारी थे, तो उनका विवेक भी जाता रहा।'

लतीफ साहब ने कहा—'उठिये, चलिये!'

सरला ने ज्ञाननाथ जी की ओर देखकर कहा—'चलिये, पिता जी!'

पिता जी बोले—'मैं क्या करूँगा। लतीफ साहब हैं ही।'

कमला ने कहा—'आप भी चलिये।'

सब चल दिये। बाहर खड़ी हुई गाड़ी में सभी जाकर बैठे। जब गाड़ी कचहरी की ओर चली, तो लतीफ साहब ने ज्ञाननाथ जी के कान में कहा—'आप का पैसा खर्च नहीं होगा। सब बाहर का होगा।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'कमला स्वयं तैयार नहीं। इस दलदल में घुसने की उसकी हिम्मत नहीं।'

लतीफ मियाँ बोले—'मुझे पता है। इस बात को रात ही मुझसे कहा गया। मुझे और वकील साहब को इसीलिये आना पड़ा। कमला बिटिया की जीत निश्चित है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'इसका मुझे भी भरोसा है। मैंने दूर से ही इस बात का पता रखा है कि कमला का अपने समाज में कितना सम्मान है। इसने काम भी परिश्रम से किया है।'

लतीफ साहब बोले—'भाई, जवानी का खून ही जोश मारता है। अब हमारे तुम्हारे पास क्या रखा है।'

ज्ञाननाथ जी ने लतीफ मियाँ की ओर देखा और कहा—'अभी तुम्हारे आने से पहिले सरला मुझसे लड़ रही थी। चूँकि मैं इस चुनाव में विरुद्ध था, तो सरला समर्थक थी। वह लड़ने की बात कहती थी।'

लतीफ मियाँ ने कहा—'इस जवानी में सभी लड़ना पसन्द करते हैं। भला तेज पानी क्या रुका है ? दीवार और पर्वत तक को फोड़ देता है। जवानी का जोश आग का भी आलिंगन कर डालता है।'

कचहरी आ गयी। ज्ञाननाथ जी और लतीफ मियां आगे की सीट पर बैठे थे, तो वे फिर भी पीछे उतरे। नीचे उतर कर सरला ने दरवाजा खोला। उसी समय कुछ व्यक्ति उनके पास आ खड़े हुए। चूँकि उस दिन कचहरी में विशेष भीड़ थी, पुलिस भी विशेष रूप से तैनात थी, चारों ओर सरगर्मी थी। हरेक के मन में इस बात की आशंका थी कि किसका फार्म खारिज हो और किसका पास हो। लोग यह भी देखने के लिए उत्सुक थे कि कौन अपना नाम वापिस लेता है और कौन उस मैदान में डटे रहना चाहता है। कमला और सरला के निकट जो भीड़ थी, उसका एक कारण यह था कि वे दोनों अब नगर के लिए अपरिचित या अप्रसिद्ध नहीं थीं। और उनकी सुन्दरता सोने में जैसे सुहागे का काम करती थी, इसलिए उन्हें देख लेने की इच्छा वहाँ पर खड़े हुए लोगों में स्वाभाविक थी। उसी समय सरला ने कमला को बताया, कि वह जा रहे, रमाकान्त ! कमला ने देखा कि रमाकान्त अपने साथियों सहित अदालत के बरामदे की ओर जा रहा है। उसके साथियों में प्रायः वे ही लोग थे कि जिनके विरुद्ध वह प्रायः कमला से कहा करता था। ये नारकीय हैं, पुराने युग के प्रतीक ! उनके जीवन का कोई गौरव नहीं है...ध्येय नहीं !

लतीफ मियाँ ने कहा—'तुम दोनों बहिन अदालत के कमरे में बैठो। चलो। दिखता है, अभी मजिस्ट्रेट नहीं आया।'

दोनों बहिनें अदालत के कमरे की ओर चलीं। जब वे उस द्वार पर पहुँचीं, तो वहीं पर साथियों सहित रमाकान्त मिला। पण्डित ज्ञाननाथ जी को देखकर वह कुछ आगे बढ़ा और हाथ जोड़ कर नमस्ते की।

होंठों से मुसकराकर पण्डित जी ने नमस्ते का उत्तर दिया, साथ ही प्रश्न किया—'अच्छे हो, रमाकान्त जी ?'

रमाकान्त ने कहा—'जी, आपकी कृपा है।'

'पिताजी अच्छे हैं, स्वस्थ हैं ? माता जी भी ?'

'जी, दोनों ठीक हैं।'

सरला और कमला अदालत में पहुँच गयीं। वे दोनों पड़ी हुई कुर्सियों पर जा बैठीं। धीरे-धीरे कमरा भरने लगा। उसी समय मजिस्ट्रेट ने अपनी कुर्सी सुशोभित की। अदालत का काम आरम्भ हुआ। कमला का फार्म पहिले देखा गया। वह खड़ी हुई। मजिस्ट्रेट ने उसका नाम स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त रमाकान्त का नाम लिया गया। अदालत ने उसे भी मान लिया।

अदालत के कमरे से बाहर आकर, कुछ सहयोगियों ने कमला और सरला को घेर लिया। उनमें से अधिकांश ने अपना-अपना सहयोग देने का वचन दिया।

कमला ने कहा—'आप जानें! मुझे तो मारकूट कर बाँस पर चढ़ा दिया है।'

एक व्यक्ति ने जोर से कहा—'आप अवश्य सफल होंगी। आप की हार का अर्थ है देश की हार, जिसे हम स्वप्न में भी स्वीकार नहीं करते। संसार के समक्ष हम अपने उद्देश्य की हार नहीं मान सकते।'

उसी समय लतीफ मियाँ ने पास आकर कहा—'अच्छा पण्डितजी, आप मेरी गाड़ी में घर जाइये। मैं अभी रुकूँगा। मेरा नाम अभी देर में आयेगा।'

पण्डितजी ने कहा—'भाई, तुम तो पुराने खिलाड़ी हो। कमला के साथ तुम मुझे भी घसीट लाये हो!'

लतीफ मियाँ हँस दिये—'लड़ना ही मेरा काम...चलना ही मेरा काम! इस गीत को लड़के गाते हैं, आपने नहीं सुना! भई, मर जायेंगे, चले जायेंगे, इस दुनिया में जो लड़ाकू हैं, वही अपना नाम छोड़ जाते हैं। लड़ाकू मर्द के पीछे सभी चल पड़ते हैं।'

सरला ने कहा—'चाचाजी, आप हमारे यहाँ कभी नहीं आते!'

लतीफ मियाँ बोले—'बेटी, सिर पर बोझ बहुत रहता है। समय नहीं मिलता। अब आया करूँगा। कोई मकान मिला, तो तुम्हें अपने पास ही खींच लूँगा।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'भाई, तुमने तो सदा लड़ाई की है। मर्दगी दिखायी है!'

सुना, तो लतीफ मियाँ ने हँस दिया। उन्होंने उसी भाव में कमला और सरला की ओर लक्ष्य किया।

ज्ञाननाथ जी और उनकी पुत्रियाँ गाड़ी की ओर चलीं। लतीफ मियाँ भी चले। वह उन्हें गाड़ी में बैठाकर फिर अदालत की ओर मुड़ लिये। जब सभी घर आये, तो अपनी देर की रुकी हुई बात को लेकर, कमरे के फर्श पर बैठती हुई, कमला बोली—'मैं आज समझी कि आदमी बुराई को सदा ग्रहण करता है। मैंने जिस चुनाव-युद्ध को बुराई के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा, उसी को स्वयं भी ग्रहण कर लिया।'

ज्ञाननाथ जी ने हँस कर कहा—'आत्म-प्रतिष्ठा और आत्म-ज्ञापन के हेतु आदमी सभी कुछ करता है। जहर की भी घूँटें भर पाता है।'

इतनी देर में सरला भी अपनी साड़ी बदल कर दूसरी धोती पहन आई। पिता का बात उसने सुन ली। वह कुछ कहती कि तभी कमला ने कहा—'यही तो मैं भी अनुभव करती हूँ, पिताजी! सचमुच, मैं इस चुनाव—प्रतियोगिता को जन-सेवा का अंग नहीं मानती। जो लोग स्वार्थ-सिद्ध करते हैं, वही इस दलदल में फँसते हैं।'

सरला ने कहा—'न, जीजी! इस चुनाव से भी सेवा होती है। सरकार का काम जिनके हाथों में है, चुना हुआ मेम्बर वहाँ आवाज उठा सकता है। रोक सकता है कि फलाँ काम गलत हो रहा है।'

ज्ञाननाथ जी ने विष भरे ढंग से मुसकरा कर कहा—'बेटी, अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता है! सरकार का काम पार्टियों के हाथों में रहता है। और पार्टी का एक मेम्बर अपने साथियों के विरुद्ध आवाज नहीं लगा सकता। उसका विपरीत काम नियम विरुद्ध और विद्रोही समझा जाता है।' वह बोले—'बेटी, सरकार की कुर्सी पर बैठने वाले प्रायः अन्धे बन जाते हैं। प्रभुता के नशे में वह भी खो जाते हैं। इस देश की सरकार का यही हाल है। अभी तक तो यही दिखायी दिया है।'

कमला ने कहा—'यदि हमारी सरकार समझदार होती, तो अब तक देश में सुव्यवस्था और सम्पन्नता पैदा कर देती।' वह बोली—'पिछले दिनों चीन में वर्षा नहीं हुई। वहाँ की कम्युनिस्ट सरकार ने समस्त शिक्षणालय आदि बन्द करवा दिये। केवल अस्पताल बन्द नहीं हुए। वे सभी कुएँ खोदने में लगा दिये गये। यद्यपि, उस फसल में अनुपाततः अनाज कम हुआ। परन्तु इतना अवश्य हुआ कि भारत सरीखे मूर्ख देश को एक लाख टन चावल दे

दिया गया।' उसने कहा—'भारत ने सभी देशों से अन्न माँगा है। सभी ने दिया है। ऐसे देशों ने भी दिया है कि जहाँ की समस्त आबादी से यहाँ का एक छोटा-सा प्रान्त या जिला बनता है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'हमारे यहाँ बाबू अधिक हैं। हमारे मजदूर भी ऐशपरस्त हैं। रईसों का तो प्रश्न ही क्या! पैसा सभी को चाहिए।' वह कहने लगे—'जापान के जिन नगरों को अमेरिका के अणु-बमों ने ध्वस्त कर दिया, उन्हीं नगरों को जापानी जनता ने फिर जल्दी ही खड़ा किया। वहाँ की सरकार तो बजट ही बनाती रही, नक्शा बनाती रही, कि स्कूल के लड़कों, मजदूरों, अमीरों, स्त्री-पुरुषों ने मिलकर रुपया भी व्यय किया, अपने शरीर का श्रम भी दिया।' उन्होंने कहा, 'जापान में किसी भी रईस के यहाँ अधिक आडम्बर नहीं होता। नौकर भी प्रायः नहीं रखा जाता। यहाँ दफ्तर के एक क्लर्क के यहाँ भी नौकर मिलेगा। रईसों के यहाँ तो नौकरों की भीड़ मिलेगी। यहाँ हाथ से अपनी आवश्यकता पूर्ति करने का रिवाज मिट रहा है। पैसे का उपयोग यहाँ के समाज में हजार पीछे एक को आता है। हमने इस बात को भुला दिया है कि सन्तान और पैसा समाज का है,—उस पर देश का अधिकार है। हमने उन दोनों को अपना मान लिया है। इसी कारण उनका दुरुपयोग होता है।'

कमला ने साँस भरी—'आज तो यहाँ सभी कुछ भ्रष्ट दीखता है।'

सरला ने कहा—'जीजी, परतन्त्र देश के अन्दर इसी प्रकार भ्रष्टता का प्रसार होता है। मेरा विश्वास है, अब हमारा देश बढ़ेगा। नव-जागरण का सन्देश घर-घर में गुंजरित होगा।' वह बोली—'जिन देशों की कहानी आज उदाहरण के रूप में रखी जाती है, उनकी भ्रष्टता भी हमें मिलती है। जापान ने जीवन पाकर भी संसार को कुछ नहीं दिया। द्वेष, हिंसा और उपेक्षा का पाठ ही उससे मिला। चीन सरीखे शांत देश पर उसने वर्षों जुल्म किया। युद्ध की आग फैलायी। उसने सभी पास के देशों-उपदेशों को अपनी शक्ति का शिकार बनाना चाहा। बताइये कितना भ्रष्ट है वह देश! कितना हिंस्र! जैसे पिशाच!'

कमला बोली—'जापान युद्ध प्रिय और युद्ध-जन्य न होता, तो आज उसका अस्तित्व भी न होता।'

सरला ने कहा—'जीजी, तुम्हारा मत है कि युद्ध ने ही उसे जन्म दिया, जीवन दिया !'

कमला बोली—'उसका पुरुषार्थ और बल युद्ध द्वारा ही चमका, वह परिष्कृत हुआ !'

सरला ने कहा—'जिस बल ने दूसरों का जीवन छीन लिया, वह जितना जल्दी मिट जाये, तो अच्छा ! मैं नहीं जानती कि भारत ने कभी किसी देश पर हमला किया। यह आज भी जिन्दा है। अमर है।'

ज्ञाननाथ जी ने अपनी देर की चुप्पी तोड़ी—'हाँ—बेटी ! भारत जिन्दा है। जीवित है। इसका उद्देश्य आज भी अमर है। इसकी आज भी पुकार है—'जीओ और जीने दो।'

: २८ :

संसार के कोलाहल से दूर, अपने शान्त मन में, कमला एक बात लिये थी। वह सोचती थी कि आखिर वह कौनसी शक्ति है कि जो उसे रमाकान्त से लड़ा देने में समर्थ बनी। नहीं कहा जा सकता कि यह कमला के मन की दुर्बलता थी, अथवा किसी अकस्मात पाये हुए मोह की बात कि वह रमाकान्त से इतना मतभेद होने के बाद भी लड़ाई करने की बात नहीं सोचती थी। वह कहती, हम दोनों का रास्ता जुदा है। दृष्टिकोण जुदा है। फिर यह युद्ध क्यों ! इस प्रकार की, एक दूसरे के प्रति भर्त्सना क्यों ! किन्तु यह भी दैव की ही बात थी कि उनका युद्ध हो रहा था, होता जाता था। जब चुनाव का कार्य आरम्भ हुआ, तो रमाकान्त की ओर से पहिला पोस्टर निकला। उस पोस्टर से यह बताने का प्रयत्न किया गया कि रमाकान्त क्या है और उसके समक्ष जिस कमला को खड़ा किया है, उसका अस्तित्व क्या है। वह पोस्टर जब कमला के सामने आया, तो उसने उसे पढ़कर भी अपना मत नहीं दिया। उसके चुनाव कार्यालय में जो व्यक्ति काम करते थे, उनमें

से एक ने कहा—'बहिनजी, इसका जवाब देना चाहिए। हमारी ओर से भी पोस्टर निकलना चाहिए।'

कमला ने बात सुनी और मत नहीं दिया।

वह व्यक्ति फिर बोला—'इस पोस्टर से रमाकान्त ने अपने को बहुत बड़ा देशभक्त सिद्ध किया है।'

कमला ने कहा—'सभी ऐसा करते हैं। और तुम्हारी ओर से पोस्टर निकले, उसका भी तो यही अभिप्राय होगा कि रमाकान्त देशभक्त नहीं, मैं हूँ।' वह बोली—'भाई, देश-सेवा में भी क्या किसी का साझा है। रास्ता खुला है, जिसे चलना है, चले। किसी को पीछे धकेल देने से क्या फायदा?'

उसी दिन जब शाम को सरला और कमला की मुठभेड़ हुई, तो सरला ने कहा—'जीजी, रमाकान्त का पोस्टर देखा?'

जीजी ने हँसकर कहा—'हाँ, देखा था!'

रोष भाव में सरला ने कहा—'देखा, कितना कमीना है, धूर्त! अपने को बड़ा आदमी समझता है।'

कमला ने इतना सुना, तो घूरकर सरला की ओर देखा। उसने कहा—तुमने जिन शब्दों का प्रयोग किया, उनसे तुम्हारा मुँह शोभा नहीं पाता!'

इतनी बात सुनकर, सरला लजा गयी। बोली—'जीजी, मुझे क्षमा करना!'

जीजी ने कहा—'क्षमा की बात नहीं। मुझे तो कुछ कहा नहीं। लेकिन अपनी शिष्टता और स्वाभाविक व्यावहारिकता को त्यागना हमें नहीं शोभता।'

सरला ने कहा—'जीजी, इस चुनाव-युद्ध में सभी कुछ चलता है। लांछना, उपेक्षा और आक्षेपों का तो इसमें प्रमुख हाथ होता है।'

कमला ने रोष भरे भाव में कहा—'मैं ऐसा नहीं करूँगी। और क्यों नहीं करूँगी, इतना क्या मुझे भी बताना पड़ेगा!' वह बोली—'किसी के प्रति लांछना या उपेक्षा प्रगट करना वैसे भी सिद्धान्ततः इन्सानियत का काम नहीं। जो रमाकांत जन-सेवा की आड़ में पैसा उपार्जित कर सकता है, वह किसी के प्रति कटाक्षों के बाण भी छोड़ सकता है। अपने स्वार्थ के लिए ऐसा व्यक्ति खून भी कर सकता है! वह स्वार्थी है। दम्भी है! अब मैं यह भी समझी कि वह निर्लज्ज भी है।'

कमला की बात सुनकर, सरला मौन बन गयी। वह अपनी जीजी का रोष भी सहज भाव से अनुभव करने लगी। इसके अतिरिक्त जो सबसे महत्त्व-पूर्ण बात थी, वह यह कि उसके मन में तभी शंका हुई कि उसकी जीजी के अन्तर में अब भी रमाकांत के प्रति अनुराग है। यद्यपि वह प्रेम अब उदास हो गया है, मुर्झा गया है। परन्तु अभी उसमें प्राण है, जीवन है। अतएव अपनी जीजी के हृदय का वह चित्र देखकर, सरला को तब अनुभव हुआ कि निश्चय ही यह भी एक कारण था कि जीजी इस चुनाव-युद्ध में पड़ना नहीं चाहती थी। इस रास्ते से कटती थीं। तभी उसमें इच्छा आई कि जीजी से पूछे, तो क्या तुम्हें रमा बाबू से अब भी कोई आशा है। उनसे समझौता करने की इच्छा है। लेकिन वह छोटी बहिन थी, उसका इतना पूछना असंगत था, इसलिए वह मौन रह गयी। किन्तु जब उसने कमला के अन्तिम शब्दों पर ध्यान दिया, तो उसका यह विश्वास मिट गया। फिर उसने स्वतः ही मान लिया कि नहीं, उसकी जीजी के मन में रमाकांत के प्रति अनुराग नहीं, घृणा है, उपेक्षा है। परन्तु वह घृणा जितनी घिनौनी है, उतनी क्रूर नहीं है। उसकी जीजी न मदान्ध है, न बर्बर है, इसलिए कि नारी है। और नारी जब एक बार किसी पुरुष को प्यार करती है, तो उसे जीवन भर भूल नहीं पाती। परिस्थितिवश उसे छोड़ सकती है, उसका वध भी करा सकती है। किंतु उसकी स्मृति को,—उस बीते हुए अभिसार को अपने हृदय से मिटा नहीं सकती। वह मन में बोली, हाँ, यही जीजी का हाल है। परिस्थितियों ने इन्हें रमाबाबू से दूर तो कर दिया, दोनों को एक दूसरे के प्रति उपेक्षित भी बना लिया, लेकिन, उस पुरानी बात को क्या मिटाया जा सकेगा?

सरला को मौन देखकर, और अपनी ही बात में उलझी हुई समझ कर कमला ने कहा—'एक दिन रमाबाबू और हम अत्यन्त समीप हो चले थे। समय आया कि दूर हो गये। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि हम लोग मनु-ष्यता को त्याग दें। यह उनके लिये भी शोभनीय नहीं।'

सरला बोली—'जीजी, यह मनुष्य बड़ा दुर्गन्ध युक्त है, ईर्षालु है। मैंने जो कुछ कहा, उसके लिये तो मुझे दुःख है।'

कमला बोली—'बहिन, रमाबाबू क्या हैं, क्या नहीं, यह बात उनके देखने की है; मेरी-तुम्हारी नहीं। हम दोनों केवल यही देखें कि हम नारी

हैं। और नारी की लाज उघाड़ना पुरुष का स्वाभाविक कर्म है। इसी में उसको आनन्द आता है। वह नारी के वेग को रोक कर खिलखिलाता है, अपनी विजय मानता है! रमाबाबू भी पुरुष हैं, उनका भी यही गुण है।'

सरला ने रोष भरे शब्दों में कहा—'जीजी, मैं तुम्हारे स्थान पर होती, तो रमाबाबू का मुँह नोंच लेती!'

कमला सूखे भाव में मुसकरायी—'रोग की यह तो औषध नहीं थी। निदान भी नहीं।'

'जो हो, मैं ऐसे व्यक्ति को क्षमा नहीं कर सकती! तुम रास्ते में हो जीजी, इसलिए कुछ कह तो सकती नहीं। परन्तु इतनी बात मेरे मन में अवश्य उठती है कि रमाकान्त ने तुम्हें धोखा दिया है। तुम्हारा जीवन-तरु नोंच लिया है। ठंठल बना दिया है, जैसे निर्जीव कर दिया है।'

उसी समय कमला ने सरला की बात सुनी, तो उसकी ओर देखा। उसके गोरे और रक्तवर्ण मुँह पर रोष के कारण खून भी छलक आया था। वह रोष आँखों में स्पष्ट दिखायी दिया। उसी को लक्ष्य कर, वह फिर जैसे बनावटीपन के साथ, सरला को समझाने की नीयत से मुसकरायी। आँखों में हँसी। तदनन्तर वह बोली—'बहिन, इस दुनिया में जो कुछ प्राप्त होता है, भाग्य उसमें पहिले अपना काम करता है। रमाबाबू ने मुझे नहीं ठगा। उन्होंने समाज को ठगा, तो स्वयं भी अपने-आपको ठगा दिया। प्रत्येक मनुष्य की यही परिपाटी है। इसी शृंखला में बँधा हुआ यह इन्सान तकदीर के द्वार खटखटाता है...........वह जीवन भर अपने भाग्य को कोसता है। बताओ तुम्हीं, रमाकान्त ने मुझसे क्या लिया है? मैंने उन्हें क्या दिया? एक दिन सोचा था कि हम पति-पत्नी बनेंगे। परन्तु परिस्थिति आगे आई। उसने मुझे बताया कि हम-दोनों इस योग्य नहीं। शायद मैं ही ऐसी नहीं कि रमाबाबू की पत्नी बनूँ। और यह बात केवल इसीलिए तो मेरे मन में आई कि एक व्यक्ति यदि इतने हल्के स्तर पर उतर कर नारी के प्रति सोच सकता है कि वह एक रात मुसलमान के घर में रही, तो उससे फिर मिलन कैसा? वही व्यक्ति जब सेवा की आड़ में पैसा चुराता है, समाज को ठगता है, तब भी मैंने अनुभव किया कि वह अपने विचारों पर अजेय नहीं। ऐसा व्यक्ति निर्मम है। क्षुद्र है!'

उत्साहभरे स्वर में सरला बोली—'जीजी, तुमने ठीक सोचा ! बिलकुल ठीक !'

कमला ने फिर कहा—'लेकिन ऐसे व्यक्ति को जिसे मैंने एक दिन प्यार किया, प्यार देना पसन्द किया, अब मैं उसी के प्रति समाज के खुले चौराहे पर अनर्गल बकवास करूँ, उस पर कटाक्ष करूँ, यह मुझे नहीं शोभा देता। दुनिया कहे, तो कहे; पर यह तुम्हें भी अच्छा नहीं लगता। क्योंकि मेरे-तुम्हारे कहने की समानता दूर-दूर नहीं है। दोनों का अर्थ निकट है। हम बहिनें हैं।'

सरला ने कहा—'मैं इसका ध्यान रखूँगी, जीजी !'

कमला ने कहा—'वैसे भी मुझे इस चुनाव से अधिक उत्साह नहीं मिलता। मैं अपनी शक्ति भी अपरिमित नहीं पाती। मैं तो अपने जीवन के लिये एक छोटी-सी संकरी पगडण्डी ही बना लेना पसन्द करती हूँ, और वह मैंने बना ली है। उस पर मेरा चलना भी जारी है। तू तो कभी मेरे उस रास्ते पर चली नहीं। तूने कुछ देखा नहीं। तूने अपनी दुनिया ही दूसरी बना ली है।'

सरला उस समय फर्श पर पड़ी थी। उसी समय उसने कुछ और पास सरक कर अपना सिर कमला की गोद में रख दिया। कमला ने उसके सिर को सहलाना भी आरम्भ कर दिया। जब कमला ने अपनी बात कही, तो सरला बोली—'जीजी, मैं जिस रास्ते पर बढ़ गयी हूँ, उसकी गुरुता का मुझे पता है। मैं समझती हूँ कि कला की आड़ में मैं तमाशाई बन गयी हूँ। मैं स्वयं इसे अच्छा नहीं मानती। यह प्रश्न मेरे सामने जरूर था कि यदि घर के लिये कुछ पैसा उपार्जित करूँ, तो काम देगा, सो, देखती हूँ कि इसमें तो मुझे सफलता मिली। आगे की आशा भी जागरित हुई। परन्तु भविष्य के पर्दे में और क्या-कुछ छिपा है, इतना मैं नहीं जानती।'

सरला का सिर सहलाते हुए ही कमला बोली—'वह तूने जानने का प्रयत्न भी नहीं किया। वह अवसर अब आया है। तुझे अपना निर्णय कर लेना है। पिता जी को भी यही चिन्ता है।'

सरला ने कहा—'जीजी, मुझे पता है। मैं यह भी जानती हूँ कि पिताजी को मेरा काम नहीं रुचा। नारी का प्रदर्शन उन्हें पसन्द नहीं आता।'

कमला बोली—'इसकी चिन्ता मत करो। अपने पथ को प्रशस्त करो।'

सरला ने कहा—'मेरा काम चल पड़ा है। पैसा भी आने लगा है। अब मुझे अपने काम में लगाओ। कुछ काम बताओ।'

कमला ने कहा—'काम बहुत है। यह मानवीय सेवा का प्रश्न है। कभी भी कर सकती है। सेवा और त्याग की भावना क्या किसी से पाई जाती है। यह तो स्वतः ही अपने हृदय से प्रस्फुटित होती है।' वह बोली—'मुझे आज ही एक स्थान पर जाना है। तेरी इच्छा हो, तो चलना। इस चुनाव के कारण इधर कई दिनों से मेरा उधर जाना भी नहीं हुआ। वहाँ तू देखना कि मानव किस प्रकार अन्धेरे में पड़ा है, सड़ रहा है। मानव ही मानव की दया और सद्भावना की भीख माँग रहा है।'

उठकर सरला ने कहा—'मैं चलूँगी, जीजी! तुम्हारा काम कुछ अपने ऊपर लूँगी।'

उसी समय पहाड़ी नौकर ने आकर कहा—'बीबी जी, खाना तैयार है। ले आऊँ।'

सरला ने कहा—'पिता जी तो आये नहीं।'

कमला ने कहा—'वे देर में आयेंगे।' वह नौकर से बोली 'यहीं ला दे। हमें खिला दे।'

नौकर के जाने पर कमला ने कहा—'आज कांग्रेस की ओर से एक सभा होगी। मैं समझती हूँ कि उसमें मेरी प्रशंसा भी होगी। रमाकान्त के काले कारनामों का लेखा भी बाँचा जायेगा।'

सरला बोली—'तो तुम उस सभा में नहीं जाओगी?'

कमला बोली—'हम जहाँ चलेंगे, समय मिला, तो वहाँ से लौट कर, सभा में जा मिलेंगे।'

सरला बोली—'तुम न बोलोगी?'

कमला ने कहा—'मैं क्या कहूँगी! क्या अपनी तारीफ करूँगी? जनता जिसे वोट देगी, देगी! मेरे कहने से कोई वोट नहीं देगा।'

'पर जीजी, तुम्हारी क्या राय है, जीत किसकी होगी?'

कमला ने कहा—'पक्ष दोनों प्रबल हैं। कांग्रेस देश-सेवा के बल पर वोट माँगती है,—गाँधी के नामपर! और दूसरा पक्ष जाति-रक्षा के नाम पर वोट

माँगता है। साधारण समाज जाति और धर्म-रक्षा के प्रश्न को भी महत्व देता है।'

सरला ने कहा—'जीजी, जाति का प्रश्न उठाना इस समय क्या अच्छा है?'

कमला ने कहा—'अच्छा न भी हो, दूसरे पक्ष के लिए उसी का सहारा है। जातिवाद आज की दुनिया में भी प्रमुख प्रश्न बना है। यह नशा सभ्य लोगों को भी सताता है। अमेरिका में हब्शियों को क्या अभी स्वीकार किया गया है। अफ्रीका में भी काले और गोरों का मतभेद चल रहा है। युद्ध हो रहा है। खून हो रहा है। यह संसार बहुत से खानों में बँटा है।'

खाना आ गया। दोनों बहिनें खाने लगीं।

सरला ने कहा—'जीजी, ऐसे क्या विश्व कभी एकमत होगा! निश्चय ही, यह इन्सानी-जगत क्रूर और दम्भी ही बना रहेगा।'

कमला ने कहा—'संसार में पहिले भी युद्ध हुए हैं और आगे भी यह इन्सानी-समूह युद्ध-लिप्त रहेगा। शांति और क्रांति का समन्वय इसी प्रकार दिखायी देगा। स्वार्थ रहेगा, तो मनुष्य हिंस्र ही बनेगा।'

सरला ने पानी पिया और डकार लेकर कहा—'और यह स्वार्थ क्या कभी इस धरती से उठेगा?'

कमला ने स्वयं भी डकार ली और हँस कर कहा—'स्वार्थ नहीं, तो सेवा का भाव नहीं। हिंसा नहीं। अहिंसा नहीं। एक शब्द में कहूँ तो संसार की यह साज-सज्जा नहीं। इसलिये अमृत के साथ विष भी रहेगा।'

नौकर खाना लाया, तो कमला ने कहा—'बस, हमने खा लिया।'

वे दोनों खड़ी हुईं। कमला ने कहा—'तू धोती बदल ले। समय हो गया।'

सरला दूसरी ओर गयी और धोती बदल आई। दोनों बहिनें चलीं। मोहल्ले से बाहर जाकर तांगा लिया और वह उसमें बैठ गयीं। कई बाजार पार करके ताँगा एक गली की मोड़ पर रुका। कमला ने ताँगेवाले को पैसे देकर विदा कर दिया। दोनों उस गली में घुसीं। गली अन्धेरी थी। नालियों में सड़ांद उठ रही थी। वे दोनों एक मकान के द्वार पर पहुँचीं और अन्दर प्रविष्ट हो गयीं। सरला ने द्वार पर से ही देखा कि मकान

छोटा और पुराना था। उसमें सील भी अधिक थी। उस मकान की टट्टी दहलीज की आड़ में थी, उससे भी बदबू आ रही थी। एक अन्धेरी कोठरी के द्वार पर जाकर कमला ने आवाज दी—'अम्माजी !'

'कौन, कमलारानी ! तुम आ गयीं बेटी !' कहते हुए, कमर पकड़ कर एक वृद्धा उस कोठरी से बाहर आई। वह आकर फिर बोली—'मैं तो सोचती थी, तुमने हमें भुला दिया। बेटा ने कहा, हमने तुम्हें कष्ट भी बहुत दिया।'

कमला ने आतुर स्वर में कहा—'न, न, अम्माजी ! मुझे कोई कष्ट नहीं मिला। जब मेरा काम ही यह है, तो प्रश्न कैसा !' कहते हुए वह कोठरी के अन्दर प्रविष्ट हुई। उसने सरला से भी चले आने को कहा। वहाँ जाते ही, उसने बीमार की चारपाई के पास झुक कर प्रश्न किया—'कैसी तबीयत है, विनोद बाबू ?'

उस बीमार विनोदबाबू ने खखारा, साँस लिया—'दो दिन से कुछ ठीक है।'

'कुछ खाने को मिला ? कुछ लिया ?'

'दूध लिया। आज मा ने दलिया भी दिया।'

उसी समय सरला ने उस कोठरी पर दृष्टि डाली। बीमार की चारपाई से कुछ परे मिट्टी का दिया टिमटिमा रहा था। उस कोठरी में पीछे की ओर एक रोशनदान था, उसी से उस दीये का धुआँ बाहर जा रहा था। फिर भी कुछ वहाँ रुक रहा था। वह सड़ाँद पैदा कर रहा था। कोठरी में सील की दुर्गंध थी। सामान संक्षिप्त। बीमार की चारपाई के पास जो चटाई बिछी थी, निश्चय ही, वह मा की शैया थी। तब सरला ने बीमार पर दृष्टि डाली। वह अभी युवक था। देखने में सुन्दर भी लगता था। इस प्रकार जब सरला ने सभी कुछ देखकर, उस वृद्धा मा को लक्ष्य किया, उसके श्वेत बालों को देखा, तो उसमें और दया पैदा हुई। उसने साँस भरी और कमला की ओर देखकर प्रश्न किया—'जीजी, इन्हें क्या रोग है ?' वह बोली—'मकान भी अच्छा नहीं है। दुर्गन्ध भरा है। बीमार के लिये यह स्थान क्या ठीक है !'

कमला ने कहा—'जब आदमी का समय खराब आता है, तो सभी कुछ बिगड़ जाता है। यह विनोदबाबू एम० ए० पास हैं। यह इनकी मा हैं।' वह बोली—

'एक दिन इनके पास सभी कुछ था। लाखों रुपया था। यह एक देश-भक्त पति का पत्नी हैं। इनके पति देश के लिए जीवन-भर जेल में रहे और उसी में मर गये। अंग्रेजी सरकार ने इनका सभी कुछ हड़प लिया था। नंगा और भूखा कर दिया था। परन्तु पत्नी भी हो तो ऐसी। पति को देश-सेवा से नहीं रोका। पीसने पीसकर पुत्र को पढ़ाया। समर्थ हुआ। नौकरी पर लग गया। दैव की बात कि पिछले दिनों ये विनोद बाबू अपनी माता जी को तीर्थ-यात्रा के लिए ले गये। वहाँ से लौटे, तो पाया कि चोर सभी कुछ ले गये। बर्तन तक ले गये। वह दुर्भाग्य यहाँ तक बढ़ा कि विनोद बाबू की नौकरी भी छूट गयी। इस नगर में आये थे कि नौकरी करेंगे, कुछ भी काम करेंगे, परन्तु बीमार पड़ गये। मा के पास जो कुछ था, वह पुत्र की बीमारी में लगा दिया। डाक्टरों ने कह दिया कि तपेदिक है। परन्तु रोग भुखमरी और बेकारी का था। वही ज्वर बन रहा था। भाग्य से अब ठीक हैं। इसी सप्ताह मुझे इनका पता चला। दो दिन यहाँ आई। सोचती हूँ, इनका यह मकान छूट जाये। कहीं काम मिल जाये।'

सरला ने प्रश्न किया—'क्या पञ्जाबी हैं?'

कमला बोली—'न, यू० पी० के वासी हैं।' वह तब बीमार की ओर देखकर बोली—'आप चिन्ता न करें। स्वास्थ्य लाभ करें। आपने यहाँ पर जिन मित्रों के नाम बताये, उनमें से एक-दो से मैंने स्वयं भी ज्ञात किया। उन लोगों ने आपके पिता जी की प्रशंसा में भी बहुत कुछ कहा। निश्चय ही आप जीवन में आई हुई इस आँधी को पार कर जायँगे। मैं विश्वास करती हूँ कि इन दस-पन्द्रह दिनों में ही इस मकान को छोड़ देंगे।'

विनोद बाबू की मा ने कहा—'बेटी, इस विनोद के पिता ने हजारों रुपया लोगों की सहायता पर दिया। लेकिन उन्होंने जिन लोगों को ऋण दिया, उन्होंने भी एक पैसा नहीं दिया। यह विनोद भी ऐसा निकला कि किसी के समक्ष अपनी अवस्था बताने के लिए तैयार नहीं हुआ। लोगों ने मुझसे कहा कि स्वतन्त्र देश की सरकार है, उससे कुछ कहा जाय! परन्तु इसने तो उसे भी स्वीकार नहीं किया।' वह बोली—'बेटी, यह जाने कैसा है, रत्ती-पाव अपने पिता के आचरण करता है। पिछले वर्ष ही एक व्यक्ति आये। वह पैसेवाले थे। अपनी पुत्री का विवाह इससे करना चाहते थे।

उन्होंने कहा, मैं तुम्हें पढ़ने के लिए विलायत भेज दूँगा। शर्त्त यह है कि तुम्हें मेरे कहने पर चलना पड़ेगा। तो इस भले आदमी ने उनकी बात सुनते ही, प्रस्ताव ठुकरा दिया। उनसे साफ कह दिया, मैं तुम्हारी लड़की से विवाह नहीं कर सकता। मैं गरीब, अमीर पिता की पुत्री को पत्नी बनाकर, जीवन भर के लिए उसका और तुम्हारा चिर दास बनना पसन्द नहीं करता। ऐसा सम्बन्ध अपने लिये यह हितकर नहीं मानता।'

इतना सुनते ही, सरला ने कहा—'खूब! बहुत अच्छा किया।' वह वृद्धा की ओर देखकर बोली—'अम्माजी, आपके पुत्र ने अपनी और तुम्हारी परेशानी को बचा लिया। अपने सम्मान का महत्व समझाने का प्रयत्न किया।'

विनोदबाबू ने कहा—'मा, इन्हें बैठाओ। कहो।'

सरला ने कहा—'न, न, हम आराम से हैं।'

विनोद ने कठिनाई से कहा—'यहाँ सड़ाँद है।'

सरला ने कहा—'हाँ, वह है। पर मकान है, तो आदमी ही यहाँ रहते हैं। आप रहते हैं।'

विनोद की मा ने कहा—'बेटी किले सरीखे मकान थे। अपने शहर में वे एक ही थे। आज भी एक में कोतवाली खुली है। एक में जजी है। कई बंगले भी थे। सरकार ने सभी जब्त कर लिये।'

कमला ने सांस भरी—'अम्माजी, वह भी समय था। तब देश के दुर्दिन थे। उस आँधी में जाने कितने उड़ गये थे।'

अम्माजी बोलीं—'बेटी, विनोद के पिता ने तो दुर्दिनों को पुकारा था। बुलाया था। कमी क्या थी।'

कमला ने कहा—'फिर उनके जीवन का उद्देश्य कहाँ पूरा हो सकता था। स्वतन्त्रता के इतिहास में उनका नाम—'

विनोदबाबू ने कहा—'मेरे पिताजी ने जो-कुछ किया, पुण्य का काम किया! मनुष्य बनकर, उन्होंने अन्याय के समक्ष सिर नहीं झुकाया। वह मरे, तो उनकी आत्मा को देवत्व प्राप्त हुआ।'

सरला ने कहा—'निःसन्देह, उनका महान त्याग हुआ! देश उनका ऋणी बना।'

उसी समय कमला ने अपना बटुआ खोला और उसमें से दस रुपये का

नोट निकाल कर विनोद की मा को दिया और कहा—'मैं कल नहीं तो परसों फिर आऊँगी। मैं आजकल व्यस्त हूँ।'

नोट देखकर, अम्माजी बोलीं—'बेटी—'

कमला ने कहा—'देखिए, मैंने उस दिन कहा था, मेरा यही काम है। संस्था की ओर से मुझे यही ड्यूटी मिली है। आज तो आपने मुझे कोई काम नहीं बताया। ये रुपये लेकर अपना काम चलाइये, चिन्तित मत बनिये। विनोदबाबू स्वस्थ हों, किसी काम पर हों, तो सहर्ष उन्हें वापिस करा दीजिये। ये फिर किसी और के काम आयेंगे।'

विनोद ने कहा—'बहिनजी, विवशता जरूर है। परन्तु यह दीनता भी मन को खिलती है। सहायता पर जीने की अपेक्षा मुझे मौत प्यारी लगती है।'

कमला ने कहा—'विनोद बाबू, आप सामाजिक प्राणी हैं। समाज का आप पर अधिकार है। उसको आप से कुछ आशाएँ हैं। उसका आप का कोई समझौता है। इसलिए यदि वह आप के ऐसे कठिन समय पर कुछ काम आता है, आपकी मदद करता है, तो केवल इसलिए कि मानवीय कर्तव्य के अतिरिक्त उसका आप से स्वार्थ है। सम्बन्ध है।'

विनोद की मा ने सरला की ओर संकेत किया—'ये कौन ?'

कमला ने कहा—'यह सरला है। मेरी छोटी बहिन !'

वृद्धा ने हर्षित बनकर कहा—'अच्छा, अच्छा, तुम जीती रहो, बेटी ! तुम्हारी आयु बड़ी हो ! धन्य हैं, तुम्हारी वह मा, जिसने तुम्हें पैदा किया। ऐसे विचारों से सुशोभित किया।'

कमला ने कहा—'अच्छा, नमस्ते।'

सरला ने भी कहा—'अम्माजी नमस्ते !'

विनोद ने दोनों को हाथ जोड़ दिये। दोनों वहाँ से चल दीं। मकान से बाहर जाकर, सरला ने जैसे खुली साँस ली। वह तभी आकाश की ओर देखकर, मन पर झटका-सा खाती हुई, कमला से बोली—'सच, जीजी ! अत्यन्त रहस्य की गुत्थी है, यह जीवन ! इन्सान का जीवन ! विनोद बाबू और वह उनकी मा को देखा, तो मन बरबस ही उनके चरणों में झुक गया। काश, मैं इनकी सेवा कर पाती ! मैं भी तुम्हारे समान बन पाती !'

कमला ने हँस कर कहा—'द्वार बन्द नहीं है !' और वह तभी अत्यन्त गम्भीर बनकर बोली—'इस विश्व में,—इस इन्सानों की बस्ती में—क्या कुछ नहीं दीखता ! वह भी दीखता है, जो नारी कल्पना में नहीं आता...... आ नहीं सकता !'

सरला ने फिर अपना मत तो नहीं दिया, परन्तु उसने अनायास समझा कि उसका जीवन तुच्छ है,—तिनके के समान; जो आँधी के एक ही झोंके में कहीं भी उड़ सकता है,—मिट सकता है ।

: २६ :

बीमार के पास से चल कर दोनों बहिनें उस आयोजित सभा में पहुँच गयी थीं; जो चुनाव-आन्दोलन के लिए एक पार्टी की ओर से की जा रही थी । सभा के अध्यक्ष ने कमला से बोलने के लिये कहा । जब वह खड़ी हुई तो उपस्थित जनता ने तालियाँ बजाकर उसका स्वागत किया । कमला ने कहा—'आपकी ये तालियाँ मुझे सूचना दे रही हैं कि आपका सरल स्नेह मुझे प्राप्त है । किन्तु इतना मेरा निवेदन है कि इस समाज के क्षेत्र में आपसे प्राप्त आशीष का बहुधा दुरुपयोग भी किया जाता है । इसलिए आप मुझे जो कुछ दें, सोच कर दें, परख कर दें । जिस चुनाव के लिए यह सभा की गयी है, मैं अनुभव करती हूँ कि आपसे यह कहने की क्षमता नहीं रखती कि आप मुझे वोट दें । इसका निर्णय करना तो स्वयं आपका काम है । वोट आपकी वस्तु है ।' वह बोली—'अभी एक सज्जन ने रमाकान्त जी के विषय में कुछ कहा है । उन्हें समाज का चोर भी बताया है । इस विषय में मेरा निजी मत यह है कि यदि ऐसा न कहा जाता, तो उचित था । एक व्यक्ति के प्रति न्याय भी होता । कौन व्यक्ति कैसा है, क्या है, इसे परखना स्वयं जनता का काम है ।' इतना कहने के बाद ही कमला बैठ गयी । लोगों में चर्चा चली, लड़की समझदार है । किसी ने कहा—'गम्भीर है ।' एक बोला—'बाप ने बेटी को अपने अनुरूप बनाया है ।'

एक और सज्जन के बोलने के बाद सभा समाप्त हो गयी। पिता के साथ जब दोनों बहिनें घर आईं, तो सरला ने कहा—'जीजी, तुमने अच्छा कहा। थोड़ा भी कहा।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'यही उचित था। सभापति ने भी उसे सराहा। आज की सभा के प्रधान वक्ता सरकार के खाद्य मन्त्री थे। वे बोल कर चले गये थे।'

नौकर पण्डित जी के लिए भोजन ले आया। दोनों पुत्रियाँ वहीं बैठी रहीं। ज्ञाननाथ जी बोले—'तुम सो जाओ, बेटी! मैं अभी अखबार पढ़ूँगा। कुछ पत्र भी लिखूँगा। अशफाक मियाँ का भी पत्र आया है। वह रूस पहुँच गया है।'

कमला ने कहा—'वह मस्त है। घूम रहा है।'

सरला ने कहा—'अशफाक मियाँ का दृष्टिकोण सीधा और साफ है।'

कमला बोली—'भाग्य भी उसका साथ दे रहा है।'

पिता ने भोजन समाप्त किया, तो दोनों पुत्रियाँ उठ खड़ी हुईं। वे अपने कमरे में चली गयीं। जब वे कपड़े बदल कर अपने बिस्तरों पर पड़ गयीं, तो तभी सरला ने कमला की ओर देखकर कहा—'जीजी, मुझे विनोदबाबू और उनकी माता का ध्यान अब भी बना है। उस गन्दगी से निकालने में क्या हमारी सहायता उन्हें नहीं मिल सकती? उन मा-बेटों को देखकर मेरे मन पर अजीब प्रभाव पड़ा।'

कमला ने कहा—'तूने तो अभी एक ही परिवार की दशा देखी, मैं तो नित्य ही इससे भी गिरी हुई दुर्दशाओं को जाकर देखती हूँ।'

सरला ने खिन्न स्वर में कहा—'सचमुच!' वह बोली—'जीजी, इस पैसे ने आदमी को दास बना दिया है। झिंझोड़ दिया है!'

कमला बोली—'ऐसे भी बहुत हैं कि जिनके परिवारों को अन्न नहीं; स्त्रियों को लाज ढाँकने के लिए वस्त्र नहीं; बैठने के लिए मकान नहीं।' उसने कहा—'इस देश सरीखी दुर्दशा सम्भवतः संसार के किसी भाग में नहीं। यहाँ के लोग पेट भरने के लिए पत्ते खाते हैं, घास खाते हैं। स्त्री-पुरुष शरीर की लाज ढकने के लिए वृक्षों की छाल से काम लेते हैं।'

सरला ने कहा—'इन बड़े नगरों के प्रकाश में यह नहीं दिखायी देता।'

कमला ने कहा—'यह तो ठीक है। परन्तु इस प्रकाश के नीचे ही अँधेरा है। करुणा है। चीत्कार है!

उसी समय सरला ने सांस भरी और कहा—'विनोद बाबू की मा का चेहरा इस बात को व्यक्त कर रहा था कि वह कभी किसी ऊँचे परिवार की नारी रही होंगी। बीमार विनोद बाबू के मुँह पर भी आत्म-सम्मान का भाव था।'

कमला ने कहा—'मा ने बेटे को एम० ए० कराया। बेटे ने मजदूरी करते हुए ही डी० लिट् कर लिया। उसका खराब समय आ गया है। परंतु वह अपनी इच्छा पूरी करेगा। वह प्रोफेसर बनेगा। एक दिन कहता था, मैं समाज के लड़कों में नये विचार भरूँगा। मैं यही काम करूँगा। मैं पैसा उपार्जित करने की परिपाटी पर नहीं चलूँगा।'

सरला ने कहा—मेरा सादर प्रणाम है, ऐसे पुरुष को! ऐसी मा को।' वह बोली—'पर जीजी, तुम्हें उनका कैसे पता चला?'

जीजी ने कहा—'सभा के एक सदस्य ने बताया था। वह उसी मोहल्ले में रहता था।'

सरला ने कहा—'जीजी, यह तो बड़े पुण्य का काम है। जीवन का भगीरथ प्रयत्न है।'

कमला ने फिर अपना मत नहीं दिया। उसने बत्ती का स्विच दबा दिया। कमरे में अँधेरा हो गया।

लेकिन जब दूसरा दिन हुआ, प्रातः की चाय पीकर जब सरला बाजार चली, तो सदा की भाँति उसके हाथ में लटकता हुआ बटुआ था। आज उसका रेडियो पर भी प्रोग्राम था। किन्तु उस समय वह सीधी विनोद बाबू के घर पहुँची। जाते ही उसने उनका कुशल-क्षेम पूछा! उसकी मा ने कहा—'बेटी, तुम्हारी बड़ी बहिन देवी है। दो दिन आकर वह मेरे विनोद की अपने हाथों से सेवा कर गयी है। कमर और पैरों में तेल मल गयी है। पैरों में इसके पीड़ा थी, तो उन्हें दबाकर गयी है।' वह बोली—'आप देवी का आभार हम पर जीवन भर रहेगा। मेरा विनोद उनका ऋणी बना रहेगा!'

सरला ने कहा—'माता जी, मेरी बहिन साधारण नारी नहीं है। उन्होंने ऊँचाई की ओर देखना सीखा है। जीवन की भावनाओं से ही उनका सम्बन्ध

रहा है। और यह सब हमारे पिता की देन है। हम दो पुत्रियाँ ही उनकी सम्पत्ति हैं।'

विनोद ने कहा—'मैं आपके पिताजी के दर्शन करूँगा।'

सरला ने कहा—'आप पूर्ण स्वस्थ हो लीजिये। कोई सेवा मेरे लिये हो, तो बतलाइये !'

विनोद ने कहा—'बहिन, यही क्या कम है कि तुम आई हो। विपत्ति में इस प्रकार का सहारा भी बहुत होता है। इन्सान को बल मिलता है।'

सरला खड़ी हो गयी। वह चली तो बोली—'मैं कल जीजी के साथ आई, तो यहाँ से अजीब मन लिये लौटी। इसीलिए आज फिर आई।' उसने नमस्ते की और लौट पड़ी।

जब दोपहर को वह घर पहुँची, तो कमला वहाँ थी। कुछ और व्यक्ति भी थे। चुनाव-प्रचार पर चर्चा थी। सरला अपने कमरे में चली गयी। कुछ देर बाद, आगन्तुकों को बिदाकर जब वह सरला के पास पहुँची, तो छूटते ही सरला ने कहा—'जीजी, मैं प्रातः यहाँ से सीधी विनोद के पास गयी थी। वहाँ मेरी कुछ इच्छा हुई कि उन्हें कुछ रुपये दूँ, परन्तु वे क्या समझें इसलिए मौन बनी रही।'

कमला ने कहा—'तूने रुपये नहीं दिये, दिखाये नहीं, यह अच्छा किया। वे रुपये न लेते। मेरी बात और थी। मैं संस्था की ओर से गयी थी। वह रुपया वे लौटा सकेंगे, यह बात भी वहाँ आई थी। अब तक उन्हें पचास रुपया दिया है, सभा में उसका हिसाब लिखा है।'

सरला ने कहा—'जीजी, मैं कुछ देती, तो वह उसके लिये अधिकारी भी थे।'

कमला ने कहा—'इसे कोई नहीं मानता। विनोद का सम्मान भी इसे पसन्द न करता।' वह बोली—'उन्होंने पहिले दिन ही मुझसे कहा था, यह रुपया धोखा है, लालच है।'

सरला ने इतना सुना और सूखे भाव में मुसकरा दिया।

किन्तु किसी ने ठीक ही कहा है कि किसी का भाग्य देखा नहीं जाता, समझा भी नहीं जा सकता। अतएव, जब एक सप्ताह बाद विनोद चँगे हो

गये, तो उन्होंने सर्व प्रथम काम यह किया कि कमला के घर आये। उनके पिता के दर्शन किये। उसी समय उन्होंने जेब से एक लिफाफा निकालकर दोनों बहिनों के सामने रखा और बताया—'भारत सरकार ने मनोविज्ञान तथा दर्शन का अध्ययन करने के लिए मुझे योरोप भेजने का निश्चय किया है। समस्त व्यय भी सरकार ने देना स्वीकार किया है।'

लिफाफे के उस पत्र को पढ़कर और सुनकर, कमला ने कहा—'आपको बधाई, विनोदबाबू! चलिये, आपको भी जीवन का शुभाशीष मिल गया।'

विनोद ने कहा—'शुभाशीष तो तब समझिये, जब मैं देश और समाज के कुछ काम आ सका।'

उत्साह भाव में सरला ने कहा—'आप जरूर सफल होंगे।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'मुझे सरला बेटी से मालूम हुआ कि किस प्रकार कमला ने तुम्हें सहयोग दिया।'

विनोद ने कहा—'सहयोग ही नहीं, मुझे जीवन प्रदान किया।'

कमला बोली—'विनोदबाबू, मेरा यही कर्तव्य था।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'जब एक काम सिर पर लिया है, तो उसे निभाना अवश्य था।'

सरला ने कहा—'तो आप कब जायेंगे?'

विनोद ने कहा—'अगले मास।'

सरला ने फिर कहा—'आपको कुछ तैयारी भी करनी होगी। कपड़े बनवाने होंगे।'

'वह पैसा मुझे सरकार से मिलेगा।' विनोद ने कहा।

तभी कमला ने विनोद की ओर देखा, तनिक मुसकराई और कहा—'लगन और पौरुष आदमी का साथ देते हैं। अब तो आपने समझा।'

विनोद ने कहा—'इसका मुझे भी भरोसा था। तभी मैं अपनी लगन में लगा था।'

ज्ञाननाथजी बोले—'सचमुच, जिन परिस्थितियों में आपने पढ़ा, वह बड़ा काम था। आपकी अध्यवसायिकता का ज्वलन्त उदाहरण भी सिद्ध हुआ।'

विनोद ने कहा—'पण्डितजी, यह सब मेरी माताजी का प्रसाद था। उन्होंने ही मुझे बल दिया।'

सरला बोली—'अब वे कहाँ रहेंगी ?'

विनोद ने कहा—'चाहे घर, चाहे यहाँ। खर्च मैं भेजता रहूँगा। मैं अपने व्यय से बचाकर उन्हें भेजूँगा। दो वर्ष मुझे वहाँ लगेगा।'

सरला ने प्रश्न किया—'तो आप योरोप जायेंगे, अमेरिका भी ?'

विनोद ने बताया—'हाँ, ६ मास का कोर्स अमेरिका में पूरा करूँगा। मैं वहाँ के सभी देशों की अध्ययन प्रणाली समझूँगा।'

उसी समय नौकर चाय लाया। कमला ने कहा—'अरे, कुछ मिठाई भी ला।'

सरला ने कहा—'आप चाय पियेंगे या दूध ?'

विनोद ने कहा—'मैं भी चाय पियूँगा।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'भाई, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना।' ऊँचाई की ओर देखना।'

सरला ने हँस कर कहा—'अब हवाई जहाज में उड़ेंगे, आसमान की ओर देखेंगे।'

उसी प्रकार विनोदबाबू ने हँस कर कहा—'आसमान में उड़ने वाला धरती की ओर देखता है। धरती के ऊपर ही उसका जीवन और मृत्यु डोलती है।'

नौकर मिठाई ले आया। सरला ने विनोद को लक्ष करके कहा—'खाइये !'

विनोद ने ज्ञाननाथ जी से कहा—'आप लीजिये, पण्डितजी !'

उसी समय सरला ने चाय बनायी। सभी को एक-एक कप दी।

तदुपरान्त विनोद ने कहा—मैं अब नित्य ही यहाँ आऊँगा। यहाँ चाय और मिठाई तो पा सकूँगा !' और वह तभी कमला को लक्ष्य करके बोला—'आपके चुनाव की क्या स्थिति है ? मैंने सुना है, आप गीत गानेवाली हैं। रमाकान्त से मैं एक बार मिला। आदमी अच्छा लगा। वह गलत पार्टी की ओर से खड़ा हुआ, यह भी भला नहीं रहा। अब सुनता हूँ उनके प्रचार का ढंग भी अशोभनीय बन गया है। बात सच ही है, अच्छा आदमी भी स्वार्थ वश अच्छा नहीं रहता। युद्ध-लिप्त मनुष्य अपना विवेक भी नष्ट कर देता है।'

सरला ने कहा—'भाई जी, रमाकान्त बाबू एक दिन हमारे अधिक निकट रहे हैं। पूर्व परिचित हैं।'

विनोद ने कहा—'हाँ यह मैंने सुना कि वे भी एक दिन इस नगर में शरणार्थी के रूप में आये। इसी प्रकार आप भी आये।' वह बोला—'बहिन, इस संसार में सभी शरणार्थी हैं। मैं तो महाभारत से पूर्व काल तक की परम्परा को देखता हूँ, तो इन्सान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागा पाता हूँ। संसार में मनुष्य का पतन करने के लिए कई प्रकार की प्रणालियाँ प्रचलित हैं। कुछ प्रकृति की ओर से, कुछ मनुष्य की ओर से! युद्ध उन प्रणालियों में प्रमुख है। यह प्रायः होता है। घरों में होता है, जातियों में होता है और देशों में होता है। इस युद्धाग्नि में आदमी की सदा आहुति दी गयी है। किन्तु प्रलय हो, महामारी हो, पृथ्वी का कम्पन हो, इन सबका तो आदमी शिकार बन ही जाता है लेकिन जाति और देशों का उत्थान और पतन हमारी अपनी स्वार्थान्धता पर अधिक निर्भर है।' वह कहने लगा—'पण्डितजी, इन झगड़ों का केवल एक ही अर्थ है,—धरती का मोह,—धरती पर अधिकार, झूठी लिप्सा! देशों के समान जातियों के झगड़े का भी यही अर्थ है! मनुष्य की ओर से यह प्रकृति का परिहास है। उसकी अपेक्षा है। भला बताइये, आज तक इस धरती पर किसी ने स्वामित्व प्राप्त किया है! धरती ने सभी को अपने गर्भ में छुपा लिया है!'

विनोद से इतनी बात सुन दोनों पुत्रियाँ मौन थीं। वे उनकी आकृति पर निगाह लगाये हुई थीं। ज्ञाननाथ जी गम्भीर थे।

उसी समय विनोद ने फिर कहा—'जो शरणार्थी यहाँ आ गये हैं, उन्हें और समूचे देश को उस बीते हुए काण्ड से यह सबक लेना चाहिए कि धरती का मोह करना भूल है। पूँजी का यह दुरुपयोग नहीं कि उसे ईंट-गारे पर व्यय किया जाय। मेरा मत है, उसे इन्सान को ऊँचा उठाने के लिये खर्च किया जाय। सभी ने देखा कि जिन्हें पत्नी, पुत्र तथा स्वजनों से मोह था, उन्हें सबको छोड़ना पड़ा। जिस धन और जायदाद से सम्बन्ध था, उसे भी त्यागना पड़ा। बहुतों के प्राण उन्हीं के लिये गये। और इस अवस्था का अन्त कोई है नहीं। मनुष्य का रुकना नहीं। कहीं थकना नहीं। तब क्या हो? इस समस्या का कैसे अन्त हो? आपने यह भी देखा कि जो शरणार्थी यहाँ आये, यहाँ वालों ने उसे भली दृष्टि से नहीं देखा। क्योंकि उनकी पूँजी में, उनके व्यापार में, उनके मकान में, उनकी दुकान में, यहाँ तक कि उनके

रास्ते में शरणार्थी आये। रुकावटें पैदा करने लगे। लोगों के आराम में, उनकी सहूलियत में बाधा पड़ी, तो उन्होंने अच्छा नहीं अनुभव किया कि ये शरणार्थी क्यों आये! हालांकि, सबने देखा कि उनकी जाति के विशिष्ट अंग बनकर ही शरणार्थी उखड़े, मिटे और मरे। परन्तु यहाँ के हिन्दुओं पर उसका क्या प्रभाव पड़ा? इसलिए मेरा मत है कि पूँजी है, उसका सहयोग है, उपभोग भी है, तो आदमी, आदमी से दूर रहना चाहेगा। वह अपने स्वार्थ को झुकने देना पसन्द न करेगा। इसीलिए, यह शरणार्थी समस्या आज की नहीं है, युग-युगों की है, परम्परागत है। इन्सान के स्वार्थ की पराकाष्ठा है। प्रकृति विवश करती है, मनुष्य को मारती है, परन्तु मनुष्य, मनुष्य को उखाड़ता है। उसके बनाये हुए घरों से भगाता है। और इन सबका हेतु एक है, जमी हुई पूँजी पर अधिकार करना। बने हुए घरों के मालिक बनना। निर्बल और बलवान का यह युद्ध सदा हुआ है। जब-जब मनुष्य जानवर बना है, क्रूर बना है, तो उसने प्रहार किये हैं, हमले किये हैं। बर्बर और हिंस्र जातियाँ इसी प्रकार आगे बढ़ी हैं। जो मकानदार हैं, पूँजीपति हैं वे सभ्य हैं, किन्तु वे असभ्य लोग उन पर सदा विजयी बने हैं। और सभ्यों का जो सबसे बड़ा दोष है, वह है शोषण! स्वार्थमय जीवन। इसलिए, उनमें एकता भी नहीं। तारतम्य नहीं। सद्भाव नहीं। ऐसी अवस्था में वे सन्दिग्ध जमातें सदा भयभीत रहती हैं। एक-दूसरे को सन्देह की निगाह से देखती हैं। इसीलिए उनका जीवन दूभर है। वैभवपूर्ण प्रासाद में बैठकर भी वे दया और मनुष्य-कृपा के मोहताज हैं। उनके जीवन-तत्व सर्वथा नष्ट हो चुके हैं। वे गलित कुष्ठ के रोगी बन चुके हैं। जीवन सड़ रहा है, परन्तु वे उसे प्यार करते हैं। उस पर सोने-चाँदी की चादर डालते हैं,—वे बेचारे! वे निर्मम! इन्सानियत के कलंक......'

उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ ने साँस भरी और कहा—'आपको धन्यवाद विनोदबाबू! आप अनुभवी हैं। सार्थक हैं।'

विनोद ने कमला की ओर देखकर कहा—'मैं आपका बच्चा हूँ। आप से आशीष पाने आया हूँ।'

गद्गद् भाव में पण्डितजी बोले—'भगवान तुम्हारी मदद करे। वह तुम्हें यशस्वी बनाये।'

बिनोद खड़े हो गये। दोनों बहिनें भी खड़ी हो गयीं। जब वह चले, तो बहिनें द्वार तक पहुँचाने गयीं। वहीं द्वार पर, सरला ने कहा—'आपने बहुत कुछ कहा ! ठीक ही कहा।'

विनोद ने कहा—'बहिन, मैं जीवन का अनुभव देखता हूँ।'

किन्तु उस समय कमला मौन थी। वह जाने कितने आतुर और ममता भरे नेत्रों से विनोद को देख रही थी। जब विनोद चले, तो वह तनिक चौंकी और बोली—'तो आप कल आयेंगे।'

विनोदबाबू ने चलते-चलते रुक कर कहा—'हाँ, हाँ जरूर !'

: ३० :

पण्डित ज्ञाननाथजी यद्यपि किसी विशेष कार्य में संलग्न नहीं थे, परन्तु उनके विचार पहिले से अधिक ठोस और चमत्कारक बन रहे थे। कदाचित यही कारण था कि वे जल्दी ही सर्वाधिक प्रिय नागरिक समझे जाने लगे। चुनाव-युद्ध में उन्होंने प्रायः सभी सभाओं में भाषण दिये। हालाँकि वे किसी भी प्रकार के चुनाव-चक्र में पड़ने के विरुद्ध थे, परन्तु जब उन्हीं की पुत्री को उस प्रतियोगिता का एक अंग बना दिया गया, तो वे इच्छा करके भी मौन नहीं रह सके। उस समय समस्त देश के वे तत्त्व कि जो सारवान थे, चुनाव-कार्य में लगाये गये। प्रत्येक समुदाय के नेता और कार्यकर्ता कार्य-रत हुए। ऐसी अवस्थामें पण्डितजी घर में बैठे रहते, यह स्वाभाविक नहीं था। उचित भी नहीं। किन्तु इस प्रकार कार्य-रत रहने का परिणाम यह हुआ कि उनके शत्रु बढ़ गये। जाति और धर्म के नारे कुछ चुनाव-पार्टियों के विशेष आधार थे, इसलिए जब पण्डितजी ने उन्हीं के विरोध में भाषण दिये, तो वे लोगों की दृष्टि में काँटे के समान चुभ गये। लोग उन पर आवाजें कसने लगे। एक दिन जब वे सभा से भाषण करके लौट रहे थे, तो रास्ते की एक भीड़ ने उन्हें घेर लिया। किसी ने कीचड़ उछाली, किसी ने पत्थर। यदि उस

अवसर पर पुलिस न आ जाती, तो एक बड़ा काण्ड घट जाता। पण्डितजी को सुरक्षा के साथ घर पहुँचा दिया गया। लेकिन उस घटना का उनके मन पर जो प्रभाव पड़ा, वह अत्यन्त घातक था। वे शरीर से घायल नहीं बने, परन्तु मन उनका अवश्य चुटीला हो गया। उस दिन उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा कि इस देश का भाग्य अन्धेरे में है। जाति का पथ कँटीला है, पथरीला है। उस जाति के शरीर पर जो पुराना और सड़ा हुआ लबादा है, उसके प्रति इतना मोह है कि वह नहीं छोड़ा जाता। वह स्वयं पहनने वाले को सड़ने का अनुभव नहीं कराता। और स्थिति यह कि वह नया युग, नयी परम्पराएँ उस जाति को नया वस्त्र देना चाहतीं। नया रास्ता बताना चाहतीं। किन्तु जाति को यह स्वीकार नहीं था। फलस्वरूप, पण्डित ज्ञाननाथ सोचते, हाय! ऐसा दुर्भाग्य है इस देश की महान जाति का! इसका इतना पतन हुआ है! इतनी निर्मम बनी! ऐसी पाषाण!

निःसन्देह, उस वृद्ध के मन में अत्यन्त पीड़ा थी। वह पीड़ा कसक रही थी, वेदना से पूरित थी। पण्डितजी का मन और प्राण इस बात के लिए चेष्टित था कि जाति का उत्थान हो। विषाक्त बने हुए विचारों का अन्त हो। किन्तु अवस्था और थी। वह दयनीय थी। नितान्त निर्मम थी। पुराने विचार, पुराने संस्कार रूढ़िगत बन चुके थे। वे विषैले बनकर खून में मिल गये थे। उनका प्रभाव तेज था। बाहरी हवा का जाति के शरीर पर प्रभाव नहीं पड़ता था। उस दिन जिन व्यक्तियों ने पण्डितजी को घेरा, उन पर कीचड़ उछाली, पत्थर फेंके, वे प्रायः सभी शिक्षित थे। नौजवान थे। उस पार के थे। पण्डितजी को उन्होंने गालियाँ दीं। जाति और धर्म-द्रोही कहा। किन्तु अचरज की बात यह कि ज्ञाननाथजी उस समय भी जैसे उन सभी युवकों के चारों ओर पीछे छोड़ी हुई झगड़ों में सुलगती आग के सदृश, उठती अग्नि-शिखायें देख रहे थे। उस आग में उन युवकों को जलता हुआ पा रहे थे। और यह भी कैसी अचरज की बात कि वे उस पार के युवक अपने बल और शौर्य के साथ उस आग का सामना कर रहे थे। अपने को उससे बचा रहे थे। अतएव पण्डितजी उन लोगों के प्रति सहृदय थे, भावुक थे। उन्होंने नहीं चाहा कि उन युवकों से कुछ कहें। उनके जोश को ठण्डा होने दें। क्योंकि जाति का जोश ठण्डा करना उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। बस, खेद

इतना था कि वह जोश विपरीत था, अनुचित था। अन्यथा, उन युवकों का तेज, शौर्य, याद आते ही उनके हृदय में एक अजीब प्रकार का हर्षोद्भाव उत्पन्न करता था।

उसी समय एक युवक ने कहा—'तुम्हें शर्म नहीं आती! जाति के विरुद्ध चलते हो जिस संस्था ने हमें पददलित कराया, उसी के पृष्ठपोषक बने हो! तुम हमारी धरती के मुँह पर कालिख फेरते हो!'

एक अन्य व्यक्ति ने कहा—'जिस संस्था के तुम पोषक हो, वह दूसरी जाति की समर्थक है। और उस जाति ने हमारा नाश किया है। हमें इस बनवास अवस्था में डाल दिया है। हमें रावी के इस पार फेंक दिया है!'

सम्भव था कि पण्डितजी कुछ कहते, उन्हें समझाते, परन्तु उसी समय तो उन पर कीचड़ और पत्थर आये। उनके कान में 'मारो-मारो' के शब्द भी पड़े तभी पुलिस आ गयी। वह उन्हें लांछित बनने और मारे जाने का अवसर नहीं देगी। किन्तु जब पण्डित ज्ञाननाथ का मन घायल हो गया, वह पीड़ा से भर गया, तो उसी अशान्त अवस्था में उन्होंने कहा, जो देश उस पुनीत संन्यासी और कर्मयोगी का खून कर सकता है, वह सभी कुछ कर सकता है। पेड़ पर चढ़ा हुआ मूर्ख व्यक्ति उसी पेड़ की जड़ काटने की कल्पना करता है। किन्तु इतना भर कहने से पण्डितजी के मन को सन्तोष नहीं था। कुछ व्यक्तियों ने उन्हें लांछित और अपमानित किया। यह दुर्भाव भी शनैः शनैः उनके मन और मस्तिष्क से निकल गया। लेकिन जिस जाति ने उस दिवङ्गत आत्मा को लुप्त किया, अन्य स्वर्गीय भारत के प्रहरियों का अन्त किया, भला ऐसी जाति के प्रति वे क्या प्रतिरोध करें! उससे किस प्रकार कहें कि उसने अपने जीवन संस्कारों को गलत रास्ते पर डाल दिया है। वह रूढ़िवाद रूपी सर्प उसका प्राण डस रहा है। हाय! उस वृद्ध ब्राह्मण के लिए कितनी विवशता की बात थी कि वह जाति का उत्थान चाहता था। वह अपने प्रान्त का तेज जीवित देखना पसन्द करता था। वह व्यक्ति सोचता, जाति का गौरव ही देश का गौरव है। देश में वीर पैदा होंगे, नौजवान तेज-पुञ्ज बनेंगे, तो भारत को बल मिलेगा। इसका मस्तक विश्व के समक्ष ऊँचा रहेगा। जिस पंजाब की बात बार-बार उनसे कही जाती, जो स्वतः उनके मन में भी हिलोरें लेती, मानो रावी की प्रबल और तेजमयी और तेजमयी धार उनके

अन्तर में भी प्रवाहित होती, उसे पखारती। वे उसी से प्रभावित हुए, गर्वीले हुए, अपने देश के लिए और अपने प्रान्त की भावना के लिए अपना सर्वस्व दे देने को प्रस्तुत थे। अपने को विसर्जित करने पर तुले थे। वे पसन्द करते कि रावी के किनारे जायें। उससे कहें, ऐ रावी! तेरी लहरें अभी तक लहरा रही हैं। तरंगित हैं। पर मैं तुझसे दूर हो गया। याद है तुझको, तेरे ही किनारे पर तेरे अनेक बच्चों के शव आये। तेरे ही किनारे पर भारतीय स्वतन्त्रता का गीत गाया गया था। पंजाबी बालाओं ने, पंजाबी युवकों ने, पंजाब के गुरुओं ने तेरे ही किनारे पर तेरे ही जल का आचमन लेकर भारत-माता का यशोगान किया था। और तू इतने बलिदान पाकर भी, इतना रक्त-प्रवाह अपने अन्तर में समेट कर भी अनिश्चित है, अनिर्णीत है, असद्भाव्य है! मा, रावी! ले, तू मुझको भी समेट ले अपने उदर में! मुझे भी डस ले! और तू सोचती है कि इतना रक्त पीकर भी जब तेरी प्यास नहीं बुझी, अपने बच्चों को आशीष नहीं दे सकी, उन्हें अपने से दूर करके भी तटस्थ बनी रही तो तू जीवित रहेगी! तेरी जिह्वा पहिले के समान लपलपाती रहेगी! न, मा! वह त्यागमयी भावना अब तुझे न मिलेगी। तेरी जाति अयोग्य और अपनों के प्रति असमर्थ है तो क्या, बलिदान देने की चिर परम्परा उसमें आज भी जीवित है। इसीलिये वह आज भी है। यह महान बल मानो जन्म से ही तेरे बच्चों को सौगात में मिला है। वह बलिदान इन्हें जीवन देता रहा है। मा, रावी! तूने तो सदा ही पंजाब की भूमि को पखारा है। बता तू, कहाँ-कहाँ पंजाबी पुरुष और बाला का खून विसर्जित नहीं किया गया। उस खून ने तेरी वन्दना नहीं की! मा, सदियाँ बीत गयीं, युगों-पर-युग चले गये, तेरे बच्चों का बलिदान नहीं रुका, नहीं घटा! अब भी हजारों का खून बह गया। वह खून तेरी धारा में मिल गया। वह धरती की प्यास बुझाने में समर्थ हो गया। देखा तूने, कैसा तमाशा हुआ! कैसा चमत्कार हुआ! हजारों नारियों के बलिदान! हजारों बच्चों के खून! हजारों युवक-युवतियों का देह-त्याग! मा, वे तेरे बच्चे अपनी माताओं से बिछुड़ गये! पति, पत्नियों से! भाई-भाई से! जो बचे हैं, वे भी क्या जीवन भोगते हैं! नर्क में पड़े हैं। जीवन के साधनों से दूर हो गये हैं। स्त्रीत्व का माप नहीं। जीवन की अनुभूति का कहीं निशान नहीं। क्योंकि सब उखड़े हुए हैं न! अव्यवस्थित

हैं ! अनिश्चित हैं । भला देख तो कैसा दयनीय जीवन है...मानो पाषाण है, जीवन ! परन्तु मा, इस नर-नारी के समाज ने सर्वस्व खोकर भी, अभी अपने को नहीं खोया है । देश और जाति का सम्मान रखने के हेतु बलिदानों का अभाव नहीं रहा है । त्याग बोल रहा है । पंजाब का बच्चा-बच्चा तेरी पुकार कर रहा है !

एक दिन जब इसी प्रकार के उद्गार पण्डित ज्ञाननाथ के मन में उठ रहे थे, तो वह सन्ध्या का समय था । वे बिस्तर पर पड़े थे । कुछ अस्वस्थ थे । दोनों पुत्रियाँ बाहर गयी थीं । नौकर रसोई घर में था । जब पुत्रियाँ आईं, उन्होंने कमरे की बत्तियाँ जलाईं, तो पिता की ओर देखते ही, कमला ने एकाएक कहा—'यह क्या पिता जी ! आप रो रहे हैं ।'

किन्तु ज्ञाननाथ जी तो सचमुच ही विह्वल थे । आँखों के आँसू उनके वृद्ध मुँह पर बह रहे थे । जब पुत्री ने उन्हें टँकोरा तो वे इतने विचलित हुए कि फुफक कर रो पड़े ।

पास आकर कमला ने उनके सिर पर हाथ रखा । उसने कहा—'कोई बात भी ! क्या कोई नयी बात !'

उसी समय सरला भी कमरे में आ गयी । उस समय दोनों बहिनें एक पार्टी से आई थीं । वहाँ सरला का गाना था, नृत्य था । इसलिए सरला थकी थी । आराम करना चाहती थी । परन्तु जब पिताजी के कमरे में आकर जीजी को उनके पलंग पर बैठी देखा, और पिता को विह्वल पाया तो वह स्वयं भी चकित रह गयी । अपनी बात भूल गयी ।

तभी ज्ञाननाथ जी ने कहा—'बेटी, भला मेरे पास अब क्या बात है ! मैं अभी उस बीती बात को नहीं भूला हूँ । मैं अब भी याद करता हूँ तो सोचता हूँ, इस जाति को जीवन कैसे मिलेगा ! यह भी सन्देह है कि क्या नहीं मिलेगा !' वह बोले, 'मैं अभी रावी को याद करता रहा । उस पार का वैभव और बलिदानों का इतिहास भी मेरी आँखों में घूमता रहा । सोचता हूँ, जिस जाति में इतना बल हो, त्याग का ऐसा उत्साह हो, जहाँ सिर कटाने वालों की ऐसी अपार भीड़ हो, वहाँ फिर इतना पतन क्यों ! ऐसा व्यभिचार क्यों !'

इसी बीच में कमला ने अपनी साड़ी के छोर से पिता के आँसू पोंछ

दिये थे। अब वे आँखें साफ थीं। किन्तु जब सरला ने भी उनकी रोती हुई आँखें देख लीं, बातें भी सुन लीं, तो वह छूटते ही बोली—'पिताजी, एक बार आप ही कहते थे कि धन का संचित करना और है, उपयोग करना और! हमारी जाति के पास शक्ति तो है, बलिदान की भावना भी है, परन्तु उसका उपयोग कहाँ और कैसे किया जाय, इसे नहीं समझा गया।'

कमला बोली—'जिस नैतिक पतन की कहानी हम आये दिन सुनती हैं, वह भी हमारा सिर घुमाती है। उद्दण्डता और उच्छृंखलता हमारे जीवन की बपौती बन गयी है। लगता है कि समाज की शर्म उड़ गयी है। आज कोई बहू-बेटी बाजार में निकले, तो उसे देखने वालों की भीड़ लग जाती है। आवाजकशी होती है।' उसने अपने स्वर पर झटका खाया और कहा—'पिताजी, जिस जाति का चरित्र अच्छा नहीं; वह जाति न उठ सकती है, न चल सकती है। हमारे पतन का यही प्रधान कारण है। अंग्रेजों ने रावी पार के आदमी से अधिक काम लिया, उसे अधिक रुपया दिया। किन्तु अंग्रेज बनिया भी था, इसलिए उसने जिस प्रान्त में अधिक रुपया दिया, वहीं पर सौन्दर्य-वृद्धि की सामग्रियों का बाजार भी सजाया। वह वहाँ पर मीना 'बाजार भी लगाने समर्थ हो गया। उसने जाति का खून भी लिया, चरित्र भी लिया। देखने में पंजाब के व्यक्ति लम्बे-चौड़े और बलिष्ठ अवश्य हुए, परन्तु उनका जो जीवन-तत्व था, वह तो अंग्रेज रूपी जोंक ने चूस लिया।' वह कहने लगी—'पिताजी, मुझे कहते भी शर्म आती है कि इस नगर में जो चकले हैं, वेश्यालय हैं, वे समाज की बहिन-बेटियों से सजाये गये हैं। उनका उपयोग भी इसी दुर्नीति के आधार पर होता है।'

सरला ने कहा—'हम असंस्कृत बन गये हैं। निर्लज्ज हो गये हैं। आये दिन लूट और नारी-ठगी के समाचार मिलते हैं।'

ज्ञाननाथजी बोले—'बेटी, यही प्रश्न मेरे समक्ष है। क्या इसका कहीं ठिकाना है?'

कमला ने कहा—'वह है। दूर नहीं है। हमारे देश का शासन अभी बुद्धिवादियों के हाथों में नहीं है। पुलिस भ्रष्ट है। शिक्षा निकम्मी है' वह बोली—'अगली सन्तति जब उठेगी, तो उसके पास यह बुराई नहीं होगी।'

उसी समय नौकर ने कुछ पत्र कमला को दिये। उनमें एक पत्र अशफाक

का था। उसे खोल कर पढ़ा, तो अपनी यात्रा का उल्लेख करने के साथ, उसने लिखा था, 'मैंने सरला का चित्र एक पत्र में छपा देखा। वह अखबार अपने पास रख लिया है।'

सरला ने कहा—'मुझे इसका नहीं पता। किस पत्र में छपा?'

कमला ने कहा—'यह नहीं लिखा। बाहिरी पत्र में छपा होगा।'

ज्ञाननाथजी बोले—'नारी के रूप से पत्र भी अपने को सजाते हैं।'

कमला ने कहा—'सौन्दर्य के चाहक इन्सानी-जगत के सभी तत्व होते हैं।' वह बोली—'किन्तु उस सौन्दर्य को देखकर हममें विकार पैदा हो, यह उचित नहीं लगता।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'बेटी, यह सम्भव भी नहीं। स्त्री सदा ही पुरुष के आकर्षण की वस्तु रही है। मानो यह एक परिपाटी है, जो परम्परागत चली आई है।'

तुरन्त ही कमला बोली—'पिताजी, मैं इसे अशुभ नहीं मानती। नारी पर सौन्दर्य है, तो वह जरूर देखा जायगा। परन्तु उसके प्रति क्रूरता का प्रदर्शन हो, मनुष्य उद्दण्ड हो, यही हीनता है, कायरता है। वैसे स्त्री के लिए पुरुषों ने युद्ध किये हैं, स्त्री को चुरा कर ले गये हैं—आदि कथाएँ आज भी इतिहास में प्रचलित हैं। रुक्मणी-हरण, सीता-हरण आदि चर्चाएँ भले ही लोग गौरव के साथ चित्रित करें, परन्तु मैं तो इसे मनुष्य की निर्लज्जता मानती हूँ। मैं समझती हूँ, हमारे पुरखों ने जो परम्परा प्रचलित की, वह आज भी जीवित है। आज भी कृष्ण और रावण हैं। अन्तर इतना है कि कृष्ण भगवान बने, रावण राक्षस! यह भी कहा जाता है कि एक स्वेच्छा से भागी, एक अनिच्छा से! परन्तु जो भी हो, दोष दोनों का है। भगवान का भी और राक्षस का भी। पृथ्वीराज चौहान ने जिस संयोगिता का हरण किया, उसे भी नारी इच्छा के रूप में लिया है।' वह अपने स्वर पर जोर देकर बोली—'पिताजी, इस पुरुष ने नारी को सर्वत्र बदनाम किया है। स्वार्थी मनुष्य नारी का शोषण करता रहा है।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'नारी ने अपना सांस्कृतिक रूप मिटा दिया। अपना जीवन भी हीन बना लिया।'

सहमति भाव में कमला बोली—आप ठीक कहते हैं। नारी ने अपने

को पुरुष के उपभोग की वस्तु समझा। स्वयं को भोग की सड़ी हुई नाली बना दिया।'

सरला उस समय अशफाक मियाँ का पत्र पढ़ने में लगी थी। अशफाक ने उस पत्र में उसका विशेष रूप उल्लेख किया था। पत्र से यह भी स्पष्ट लगा कि वह सरला के प्रति अत्यन्त सरल और सद्भाव्य है। उसकी कीर्ति के प्रति सजग है। और स्वयं सरला अभी तक उसके लिए उपेक्षित थी, उदासीन थी। अतएव, पत्र की उस आत्मा को पाकर सरला को अच्छा लगा। अशफाक उसे अनायास ही याद हो आया। किन्तु जब उसने जीजी की बात सुनी, तो उसने अपनी कुर्सी पिताजी के पलंग के पास खींच ली। बात सुनते ही बोली—'जीजी, इसमें नारी का दोष कम है। पुरुष ने ही इसे विवश किया।'

कमला ने अक्षुण्ण भाव में कहा—'नहीं, नहीं। हमें अपनी कमजोरी को समझ लेना चाहिए। आज जागृति का युग है। पुरानी बातें जा रही हैं, नयी आ रही हैं। 'आज भी नारी ने जिस प्रकार अपने को सजाया है, अपने को आकर्षण का केन्द्र बनाया है, तो यह क्यों! इसीलिए न कि नारी स्वभाव की कोमल है। इसका स्वभाव ही यह है कि सजे! पुरुष के लिए आकर्षण की वस्तु बने! और मैं कहती हूँ, यही आत्म-हीनता है। नारी की जड़ता है। पुरुष किस बात को देखकर प्रसन्न होता है, नारी ने उन्हीं का आयोजन और विकास किया है। पुरुष यहाँ तक उद्दण्ड बना कि कवियों ने नारी के अंग-अंग का बखान कर डाला। सुराहीदार गर्दन, कजरारे नैन, पतली कमर,—आदि! आदि!! मैं पूछती हूँ यह नारी के शरीर का प्रदर्शन नहीं, तो क्या है। और पुरुष इसी से आनन्द लेता है। विश्व का साहित्य प्रेमी और प्रेमिका की सीमा में बँधा है। मेघदूत का काव्य विश्व-साहित्य की वस्तु है। मैं माने लेती हूँ कि इन्सानी-समाज को कोई आकर्षण चाहिए। साहित्य में कल्पना और मधुरता चाहिए! परन्तु कली और भौंरे का संगम कराते हुए ही, मनुष्य ने स्त्री और पुरुष का संगम भी प्रदर्शित किया, मैं इसे निर्लज्जता मानती हूँ। और स्वयं नारी इससे उत्साहित हुई। वह अपने जीवन की आध्यात्मिक परम्परा भूल गयी। वह सजने में लग गयी। अपना प्रदर्शन करने लगी। पुरुष को अपने हाव-भाव दिखाने लगी। बता तो, आज की

बाजार में क्या दीखता है। प्रदर्शनी में लोग क्या देखने जाते हैं। क्या दुकानें ? प्रदर्शन की वस्तुएँ ! मैं कहती हूँ लोग वहाँ भी सजी हुई नारियों को देखने जाते हैं ! और तभी नारियाँ लुटी जाती हैं। वह पुरुष की कामाग्नि का लावा भड़काती हैं। स्वयं भी उस आग से खेलती हैं। उर्दू के शायरों ने सुरा और सुन्दरी के बखान में ही अपनी शायरी का चमत्कार दिखाना पसन्द किया !'

उस समय ज्ञाननाथजी उठकर बैठ गये थे। वे गम्भीर थे। पुत्रियों से जो विचार चला, वे उसे अनावश्यक भी नहीं मानते थे। अतएव जब कमला ने अपनी बात समाप्त की, तो वह यह देखकर प्रसन्न हुए कि कमला के मन का तेज मुँह पर भी आ गया है। उसकी आँखों में रोष दिखायी दिया ! उस तेजोमयी युवती को लक्ष्य करके ही उन्होंने सरला की ओर देखा और कहा—'हाँ, बेटी ! नारी का दोष भी कम नहीं है !' वह बोले—'मैं यह भी मानता हूँ कि पुरुष ने ही नारी को इस अवस्था में डाला है। दोष पुरुष का अधिक है।'

कमला बोली—'पिताजी, नारी ने भुला दिया है कि वह मा है। बहिन है। पत्नी है।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'सचमुच ! निःसन्देह !'

कमला ने फिर कहा—'और जब नारी ने इतना भुला दिया, अपना गुरुत्व स्वयं ही आँखों से ओझल कर दिया, तो फिर पुरुष क्यों बख्शता। उसका यह लम्पटता पूर्ण व्यवहार रहा कि नारी को बहिन कहता रहा और उसे ठगने के प्रयत्न भी करता है।'

ज्ञाननाथ जी ने अपने सूखे होंठों पर जीभ फेर कर कहा—'यह सचाई है ! मनुष्य की धूर्तता सर्वविदित है।'

कमला बोली—'पुरुष इतना हिमाकत भरा बना कि एक पुरुष हजार-हजार स्त्रियों का स्वामी बन गया। दो-चार रखने का तो आज भी दस्तूर है। राजाओं के यहाँ सौ-दो-सौ मिलती हैं। मैं कहती हूँ नारी ने इस बात को क्यों स्वीकार किया ! सचाई है, नारी ने अपने अस्तित्व का अर्थ कभी भी नहीं समझा। वैसे स्थिति यह है कि यदि किसी घर की स्त्री मर जाती है, तो उस घर का चिराग गुल हो जाता है। समूची व्यवस्था बिगड़ जाती है।

मेरा आज भी यह मत है कि नारी ठीक हो, सच्चरित्र हो, प्रेरणामयी हो, कुशल हो, तो वह घर भूखा रह कर भी जीवित रहता है। वहाँ स्वर्ग दिखायी देता है। उस घर के बच्चे योग्य बनते हैं। आज तो हमारी स्त्रियों को इस बात का ज्ञान नहीं कि बच्चे कैसे हों, उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार हो। वैसे कहने को सभी घर हैं। परन्तु मेरी दृष्टि में अधिकांश कूड़ी के ढ़ेर हैं,—निकम्मे! वहाँ भोग और प्रमाद की सड़ाँद उठती है। अविचार और पाप उन घरों से ही प्रस्फुटित होकर समाज में फैलता है। बच्चा पहिले मा की सीख ग्रहण करता है।' वह बोली—'मैंने अब तक करीब पाँच हजार घरों को देखा है। शायद ही उनमें से दो-चार सभ्य और सुशिक्षत पाये हों। उन घरों की अधिष्ठात्रियों को योग्य देखा हो।'

सरला ने पूछा—'कोई घर नहीं मिला? ऐसी कोई नारी नहीं?' उसने कहा—'आज तो शिक्षा भी है।'

कमला ने कहा—'ऐसी शिक्षा का क्या अर्थ, जो घर चलाना न सिखाती हो। पढ़ी स्त्रियाँ भी एक समस्या है। वे घर का काम नहीं करती। बे-पढ़ी नारी मेहनत तो करती है। पढ़ी हुई सौन्दर्य को बढ़ाती है। घर का खर्च बढ़ाती है। वह अपने पति के सामने नित-नयी समस्याएँ पैदा करती हैं। इस आर्थिक संघर्ष के युग में भला यह बात शोभती है! आज तो आवश्यकता इस बात की है कि घर का प्रत्येक व्यक्ति काम में लगे। इस आर्थिक कष्ट को मिटाये। परन्तु बाबूजी की बबुआइन भला हाथ से काम कर सकती हैं! वहाँ मेहरी बरतन माँजने को चाहिए। बच्चों को खिलाने के लिए नौकर चाहिए। होता यह है कि बाबूजी की जो आमदनी होती है, वह कुछ बहूजी की साड़ियों पर व्यय होती है, जबान के चटकारों पर खर्च होती है और शेष घर में लग जाती है। वह कमाई पन्द्रह दिन से अधिक नहीं चलती। फिर ऋण पर बात आती है। यों उस बेचारे बाबू की जिन्दगी कशमकश में बीतती है। एक अजीब तरह की मोहताजी, दीनता उस कामी के जीवन से झाँकती है। मैं कहती हूँ, बताइये, ऐसा जीवन क्या देश के काम आ सकता है! उससे जाति और धर्म का भला हो सकता है! ऐसे परिवार के बच्चे निहायत निकम्मे होते हैं। वह उस युवक के प्रति आकांक्षित होती हैं, जो उनका भावी पति है, जिसके हाथों में वह अपना जीवन सौंपना चाहती हैं। मेरा

मत है, लड़कियों से इस प्रकार की भावना का पैदा करना ही गलत है। गुड्डे-गुड़ियों का खेल खिलाना क्या अच्छा है! और बहुधा कहा जाता है कि इससे लड़कियों को कोमल भावना मिलती है। मैं कहती हूँ यह तनिक भी आवश्यक नहीं। हमें दुर्गा चाहिए, हमें वीर नारी चाहिए। ऐसी नारी का पुत्र कठोर होगा, चरित्रवान बनेगा।'

सरला ने कहा—'जीजी, यह सब पुरुष का काम है। वह नहीं सोचता।'

कमला ने कहा—'वह नहीं सोचेगा। वह तो अपना स्वार्थ पूरा करेगा। पुरुष जन्मान्ध है। विषय लोलुप है। उसको दिशा बताना भी नारी का काम है। नारी को समझाना है कि उसने अपने उदर से राम पैदा किये, बुद्ध पैदा किये, कृष्ण पैदा किये।'

उपहास के भाव में सरला बोली—'और वह नारी यह भी तो सोचे कि उसके समाज ने रावण सरीखे राक्षस भी पैदा किये!'

स्वर पर जोर देकर कमला ने कहा—'निःसन्देह! वह सभी कुछ सोचे। उस पर बहुत बोझ है। नारी जगत कीली है कि जिस पर वह खड़ा है।'

ज्ञाननाथ जी उस समय मुसकरा रहे थे। सरला की ओर देख रहे थे।

कमला ने कहा—'यह तो हँसती है। अभी जीवन में कहाँ आई है। आयेगी तो समझेगी कि जीजी का कहना कितना संगत था। अपनी कमजोरी और भूल को समझ लेना अपने तईं सुविधा की बात है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'मेरा भी यही मत है। नारी को अधिक सजग और चेतनामय बनना है। इसी में देश का भला है। जिस भ्रष्टता का व्यापार हम देखते हैं, वह नारी की ढील का ही कारण है। पुरुष की ढीढता को इस नारी ने प्रोत्साहन दिया है।'

सरला ने कहा—'पिताजी, पेट में भूख लगी है। जीजी का व्याख्यान क्या कभी रुकता है। यही आपको सूझता है। दिखता है, आप दोनों ने समाज को बदलने का बीड़ा उठा लिया है। और मैं कहती हूँ, समय आयेगा, तो सब बदल जायेगा।'

ज्ञाननाथ जी ने हँस कर कहा—'हाँ, बेटी! तूने भी ठीक कहा। समय आयेगा तो बदलेगा।'

कमला ने कहा—'प्रयत्न तो करना ही पड़ेगा। रोटी का टुकड़ा स्वतः ही अपने-आप मुँह में नहीं आ जायेगा।'

सरला ने इतना सुना और पिता की ओर देख खिलखिला कर हँस दिया। उस समय, बरबस, कमला ने भी मुसकरा दिया।'

: ३१ :

आँधी के समान विनोदकुमार कमला के मानस में प्रवेश करने में समर्थ बन गया। जिस मोहल्ले में पण्डित ज्ञाननाथ रहते थे, वहीं पर विनोदबाबू को भी एक छोटा-सा मकान मिल गया। उसकी योरोप-यात्रा की तैयारी प्रायः पूर्ण हो गयी। उस तैयारी में कपड़े थे, दो-तीन बक्स थे और किताबें थीं। किन्तु जितनी भी सामग्री खरीदी गयी, या तो वह कमला ने खरीदी, अथवा साथ गयी। एक दिन विनोदकुमार ने कमला को सुनाया कि जीवन के संस्कार भी प्रबल होते हैं। अपरिचित ही परिचित बनते हैं।

कमला ने उस बात का सीधा अर्थ लेकर कहा—'जीवन का व्यापार इसी प्रकार चलता है। मैं भी पुनर्जीवन को मानती हूँ। संस्कार हजारों कोस पर बैठे हुए व्यक्ति को निकट खींच लाते हैं।'

उसी समय अनुरक्त भाव में विनोदबाबू ने कहा—'तुमने मुझे जीवन दिया है, कमलारानी!'

कमला बोली—'इस भाषा का प्रयोग आदमी प्रायः करता है। हम अपना कर्म देखते चलें, चलना है, तो साथ-साथ चलते चलें, यही क्या पर्याप्त नहीं।'

'मैं इसी को श्रेष्ठ मानता हूँ, कमला देवी!'—विनोदबाबू ने कहा—'परन्तु इतना पाना भी क्या आसान है! दुर्भाग्य का लेखा मैंने अपने जीवन में देखा है। वासना और प्रमाद मेरे जीवन से नहीं मिला। कदाचित उसने मुझे उपयुक्त नहीं पाया। मुझे ऐसा अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ। तुम मिली

हो, तो सोचता हूँ मेरे किस जन्म के शाश्वत भावों का पुरस्कार ही मुझे इस रूप में प्राप्त हो गया है। सचमुच मैं गौरवान्वित बना हूँ। तुमसे बल प्राप्त कर सका हूँ।' उसी समय उसने बताया कि निरन्तर के जीवन-युद्ध में परास्त होने वाला व्यक्ति उठ नहीं सकता। उसका आत्म-बल भी चला जाता है! परन्तु तुमसे मुझे वह भी प्राप्त हुआ।'

आँखों से हँसकर कमला बोली—'लेकिन अब आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भाग्य के झरोखे से सूर्य चमक रहा है। योरोप से लौटकर आपके जीवन का स्तर ऊँचा हो जायगा। सम्मान मिलेगा। धन भी प्राप्त होगा।'

बलात् विनोदबाबू के मुँह से निकल गया—'वहाँ से लौटकर तुम न मिलीं, दूर चली गयीं, तो क्या मुझे सुख मिलेगा! तब तो यह जीवन भी अच्छा नहीं लगेगा।'

कमला अपने मधुर होंठो में मुसकरायी—'तो आप समझते हैं, इस कमला का जीवन क्या टिका रहेगा!'

विनोदबाबू ने कहा—'लेकिन मेरा विश्वास तो यही कहेगा! मुझे भरोसा रहेगा।'

और जब, एक दिन प्रातः में विनोदकुमार योरोप के लिये चले तो हवाई जहाज के अड्डे पर उसके साथ मा थी, कमला के अतिरिक्त सरला और पण्डित ज्ञाननाथ थे। जब वह जहाज में बैठने चला तो अपनी मा और पण्डितजी के चरण छुये। कमला ने उसके गले में हार डाल दिया और कहा—'विश्वास रखना, मैं प्रतीक्षा करूँगी।'

उसी समय दूसरा हार सरला ने डाला और कहा—'आपकी मधुर स्मृति मैं क्या भूल सकूँगी।'

जहाज की ओर जाते हुए विनोदबाबू ने कहा—'मेरी मा का ध्यान रखियेगा। चुनाव का परिणाम भी भेजियेगा।'

वह जहाज पर चढ़ गया। जहाज ने उड़ान भरी और वह पल भर में आकाश में चला गया।

सरला ने तभी अपनी जीजी की भरी हुई आँखें देखीं और रोती हुई विनोदबाबू की मा को लक्ष्य कर उसने कमला से कहा—'जीजी, घर चलो। विनोदबाबू की मा को समझाओ।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'मा जी, तुम्हारा पुत्र होनहार है। अब भाग्य उसका साथ दे रहा है।'

मा बोली—'पण्डितजी, सब आपका आशीष है।'

वे सभी नगर की ओर लौटे। रास्ते में सरला ने कहा—'मा जी, आप हमारे यहाँ ही रहें, तो कैसा!'

मा ने कहा—'न, बेटी! मेरा इसी प्रकार रहना ठीक है। वैसे, तुम्हारा सहारा तो है ही।'

रास्ते भर कमला मौन रही। इसे सरला ने अनुभव किया, पण्डित ज्ञाननाथ ने भी। जब वह घर आये तो अपने कमरे में जाकर उन्होंने अकेली सरला को सुनाया—'दिखता है, कमला बिटिया ने अपना रास्ता चुन लिया है।'

सरला ने बात समझ ली। बोली—'पिताजी, इस रास्ते को सुरक्षित और साफ करने में जीजी ने कम प्रयत्न नहीं किया।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'विनोदबाबू—'

'हाँ, पिताजी! विनोदबाबू मर रहे थे। जीवन की सड़ाँद भरी दलदल में फँसे थे। जीजी ने उद्धार किया। इनके लिये बहुत श्रम किया।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'विनोदबाबू सरीखे सुपात्र मुझे कम देखने को मिले हैं।'

सरला ने कहा—'हमारी जीजी का जीवन भी अब निखर गया है। जो भी इन्हें पत्नी के रूप में ग्रहण करेगा, वह सफल होगा।'

ज्ञाननाथ जी ने जैसे याचना के स्वर में कहा—'बेटी, तुम्हीं पुत्री हो, मेरे तुम्हीं पुत्र! तुम दोनों को सुखी देखकर मेरा प्रस्थान करना इस जिन्दगी से दूर जाना, मेरे लिए सन्तोष का विषय रहेगा।,

सरला ने कहा—'पिताजी, मैं तो जीजी के ऊपर निर्भर हूँ। वह जैसा कहेगी, वही करूँगी।'

ज्ञाननाथजी ने आतुर हुए स्वर में कहा—'हाँ, बेटी! मेरी यही चाह है।' तभी वह बोले—'कमला बेटी को आज कुछ दुःख हुआ है। तुमने देखा, उसके मन का ममत्व आँखों में उतर आया था।

सरला ने कहा—'हाँ, पिताजी ! मैंने जीजी की भरी हुई आँखें देखीं। सुगमता से अनुभव किया कि जीजी उन आँसुओं को दिखाना नहीं चाहती। जब उसने आँखें पोंछीं, तो तब भी मुँह मोड़कर साड़ी के छोर में उन आँसुओं को ले लिया था।'

ज्ञाननाथजी ने गद्‌गद् स्वर में कहा—'मेरी बिटिया !'

सरला बोली—'रात भी जीजी ने खाना नहीं खाया। मैंने कहा, तो सिर दर्द का बहाना कर दिया।'

पण्डितजी ने हर्षित बनकर कहा—'बिलकुल अपनी मा का स्वभाव पाया है, तेरी जीजी ने। वैसी ही ममता और प्यार।' वह बोले—'तेरी जीजी अब घर की वस्तु नहीं रही। सार्वजनिक निधि बन गयी है। परन्तु नारी का कोमल मन, नारी की आत्मा का निवास तेरी जीजी के अन्तर में पूर्णरूप से जागरित हुआ है। मेरी बिटिया का मन तनिक भी तो कठोर नहीं बना।'

सरला ने कहा—'पिताजी, मुझे पता है, विनोद्‌बाबू की तैयारी में सभी कुछ जीजी ने किया। बक्सों में सामान तक जीजी ने लगाया। और तो और आज सुबह तक विनोद्‌बाबू कपड़े पहनने लगे, तो हमारी जीजी ने ही उनके कोट का कालर सीधा किया, नकटाई को अपने हाथों से बाँधा। विनोद्‌बाबू को क्या कभी कोट-पैण्ट पहनने का अवसर मिला। उन्होंने साफ ही कह दिया, मैं कुछ नहीं जानता ! सच, पिताजी ! ऐसा सरल, सहृदय और दम्भहीन युवक मैंने भी आज तक नहीं देखा ! वह मा धन्य है कि जिसने ऐसा पुत्र अपनी कोख से प्रदान किया।'

ज्ञाननाथजी बोले—'इनके पिता भी महान थे। मैंने देखे तो नहीं परन्तु उनके साम्राज्य-द्रोही विचार और समाचार अखबारों में निकलते थे। वे सच्चे देशभक्त थे।'

सरला ने बाहर आसमान की ओर देखते हुए कहा—'महान पिता के महान पुत्र !'

'भगवान यशस्वी बनाये, समृद्धि प्रदान करे, विनोद्‌बाबू को !' ज्ञाननाथ जी ने कहा। और तभी वह सरला को लक्ष्य करके बोले—'तुम अपनी जीजी के पास जाओ, बेटी ! देखो क्या कर रही है।'

सरला ने कहा—'जीजी प्रातः कहती थी, आज बहुत काम है। उन्हें

अपनी संस्था की ओर से भी कहीं जाना है। चुनाव का समय भी आ गया है।' वह बोली—'पिताजी, सुनती हूँ, रमाकान्त का जोर बढ़ रहा है। हिन्दूपन और पंजाबीपन इस चुनाव में काम आने वाला है।'

ज्ञाननाथ जी ने गम्भीर भाव में कहा—'यही इस देश का दुर्भाग्य है। लोगों ने भाईवाद, भतीजावाद तक इस चुनाव में अपनाया है। जाति और धर्म का तो प्रश्न ही क्या! इसका बोलबाला सर्वत्र दीखता है।'

सरला ने चिन्तित स्वर में कहा—'तो जीजी का जीतना कठिन है?'

उसी स्वर में ज्ञाननाथ जी बोले—'मुझे यही दीखता है।'

सरला ने कहा—'सुनती हूँ, रमाकान्त की ओर से पैसा लगाया जा रहा है। वोटरों को पैसा बाँटा जायेगा।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'यह भी सम्भव है!'

सरला ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'तो वोट हम भी खरीद सकते हैं, पिताजी!'

पिताजी ने अपनी पुत्री की ओर देखा। तदन्तर ही उन्होंने कहा—'ऐसा पाप तुम भी करने का विचार रखती हो, बिटिया! न, न, यह तो समाज-द्रोह है। उस पवित्र वोट का अपमान है, जो सरकार ने अधिकार के रूप में जनता को दिया है।' वह बोले—'वोट खरीदकर जो व्यक्ति धारा-सभाओं में जायेंगे, वह वहाँ पर कुछ नहीं कर सकेंगे।'

सरला ने उद्विग्न स्वर में कहा—'पिताजी, जीजी की विजय होनी चाहिए। मेरी यही इच्छा है। हमारा सभी रुपया उसमें लगाया जा सकता है।'

ज्ञाननाथ जी मुसकराये और कहा—'तुझे इतनी चिन्ता है और तेरी जीजी ने अपनी संस्था के काम को छोड़ चुनाव-कार्य में तनिक भी सहयोग नहीं दिया। इसके साथियों की यही शिकायत है।'

सरला ने कहा—'पिताजी, जीजी का काम अत्यन्त कठिन है। दुर्बोध है। जीजी ने जनता-जनार्दन की सेवा में अपने को लगा रखा है। मुझे जीजी के काम का पता है। आज-कल जीजी जिन घरों में जाती हैं, मैं भी उनमें गयी हूँ। उन बीमारों की सेवा करना, जीजी का पहिला कर्तव्य है। भला कर्तव्य है। भला चुनाव उसके समक्ष क्या है!'

ज्ञाननाथ जी बोले—'बेटी, मैं जानता हूँ। मुझे यह भी पता है कि इन दिनों विनोदकुमार ने भी उसके काम में योग दिया है।'

सरला ने कहा—'हे राम! ऐसी दुर्दशा है, इन्सान की! जीवित ही मर रहा है, इन्सान! यह मैंने अभी देखा।' वह बोली—'परसों की बात है, एक विधवा बेचारी के बच्चा हुआ। जिस पुरुष से सम्बन्ध था, वह भाग गया। मुँह छिपा गया। जीजी न पहुँचती, तो जरूर वह स्त्री आत्मघात कर लेती। परन्तु उसको समझाया। उसने कोई बात नहीं की, यह भी जीजी ने बताया। उसके भोजन की व्यवस्था की। दो दिन का जच्चा था, भूखी थी, जीजी के पहुँचने पर उसे शांति मिली! और पिताजी, जब मैंने उसे जाकर देखा, कठिनाई से उन्नीस-बीस वर्ष की होगी। बड़ी सुन्दर! पड़ोसियों ने कहा कि उसका जेठ ही यह दुष्कर्म कर गया। जवानी की आँधी में उड़ती हुई नारी को भ्रष्ट-दिशा पर पटक गया!'

पण्डितजी ने खिन्न स्वर में कहा—'पाप बढ़ गया है। पौरुष और आत्म-बल चला गया है। सर्वत्र यही दीखता है।'

सरला ने कुण्ठित हुए स्वर में कहा—'दुराचारी पुरुष नारी की विवशता का लाभ उठाते हैं। जब वे पीछे हटते हैं, तो क्यों न उन्हें गोली से मार दिया जाय!'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'बेटी, किस-किसको मारोगी, गोली? आज तुमने जेठ की बात कही, कल स्वसुर की बात सुनोगी। भाई, चाचा, ताऊ यहाँ तक कि स्वयं पिता की निर्लज्जता भी इस समाज की अँधियारी में भटकती पाओगी। इस नारी का सभी दुरुपयोग करते हैं, सभी इसकी बोटियाँ चबा जाना चाहते हैं। कुत्ते के समान इसकी हड्डियाँ कट्-कट् करके खाते हैं,—इस समाज के भ्रष्ट लोग!'

सरला ने कहा—'पिताजी, समाज का पाप ऊपर से चलता है, नीचे से नहीं।'

ज्ञाननाथजी ने तुरन्त ही कहा—'निःसन्देह! हत्याओं का चमत्कार ऊपर के राजप्रासादों में अधिक होता है। वासना का कसैला और सड़ाँदपूर्ण पतनाला भी वहीं से बहकर नीचे आता है। वह निचाई पर आकर फैलता है। परिणाम यह होता है कि साधारण समाज उस बदबू से प्रभावित होता

है। निर्लज्ज बनता है। इसीलिए तो मजदूर स्त्रियों का चरित्र बाजार में झूटे पड़े चाँट के पत्तों के समान समझा जाता है। उस चरित्र को कोई भी अपने पैरों से मसलने की इच्छा रखता है। कामुक पुरुष जीवन का आध्यात्मिक पहलू ग्रहण नहीं करता। वह अपने-पराये को भोगना पसन्द करता है। उसका उद्देश्य ही यह है, खाओ, पियो और मौज मारो!'

सरला ने कहा—'पिताजी, एक दिन जब मैं बाजार से घर की ओर आ रही थी, रास्ते में एक युवा स्त्री बैठी थी। लोगों की भीड़ उसके पास थी। वह खून से लथ-पथ थी। मैंने सुना, वह किसी व्यक्ति द्वारा भगाई गयी। अनेक व्यक्तियों ने उसे सताया!' उसी समय वह रुकी और अपने स्वर में अधीरता लेकर बोली—'पर हाय रे मनुष्य! इतना निर्लज्ज, नारी के प्रति इतना उपेक्षित कि वहाँ पर खड़े शिक्षित और अशिक्षित, उस नारी की असहायता को लक्ष्य करके ही-ही करके हँस रहे थे और अपने वे क्रूर दाँत निपोर रहे थे।' उसने कहा—'पिताजी, मेरे मन में आया कि ईंट उठाऊँ और उनके दाँतों पर दे मारूँ! उनको सुनाकर कहूँ—बेशर्म कहीं के! यह भी तुम्हारी बहिन है! यह भी नारी है! तुम्हारे घर की बहिन-बेटी होती, तो क्या!'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'ऐसी घटनायें तो इस धरती पर नित्य घटती हैं, बिटिया! सर्वत्र ऐसा ही काण्ड घटता है।'

सरला ने कहा—'अच्छा होता कि वे कायर पुरुष उस नारी को मार देते। उसका अन्त कर देते। कम-से-कम उसका उपहास तो न करते।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'यह भी एक बड़ी दुर्बोध समस्या है कि पुरुष नारी से जीवन पाकर भी, इसी के प्रति उद्दण्ड रहा है। हमारे पुरखों का श्राप आज भी उसी प्रकार फैल रहा है।'

सरला बोली—'और नारी को देवी कहा जाता है। इस देश को नारी-पूजक बताया गया है।'

कड़ुवे भाव में ज्ञाननाथ जी मुसकराये—'बेटी, ऋषियों के वाक्यों में तो यही लिखा है। परन्तु संसार के भोगों में लिप्त हुआ मनुष्य क्या उस अमर वाक्य को मान सका है! न, कभी नहीं! राजा ने भी नारी को ठगा, मजदूर ने भी ठगा। जो मध्यम वर्ग है, उसका तो प्रश्न ही क्या, उसका कहीं भी किनारा नहीं है। बुद्धिवाद के इस युग में यह भी एक समस्या बनी कि नारी

का किस प्रकार उद्धार किया जाय परन्तु भाषणों और लेखों द्वारा ही यह कार्य-क्रम रहा। व्यवहार में किसी ने भी स्वीकार नहीं किया। पुरुष नारी के प्रति आज भी क्रूर और बर्बर दीखता है। अवस्था यह हो गयी है कि अब पुरुष भी नारी द्वारा ठगा जाता है। दोष दोनों का है। दोनों का अस्तित्व खो गया है। वासनापूर्ण जीवन बिताना ही आज के नर-नारी समाज का लक्ष्य बना है।'

उसी समय नौकर उस कमरे में आया। सरला ने कहा—'जीजी क्या कर रही हैं ?'

उसने बताया—'बड़ी बीबीजी बाहर गयी हैं। देर से गयी हैं।'

'कुछ कह गयीं ?'—सरला ने कहा।

'कह गयी थीं, खाना बन जाये, तो मेरे लिये रख देना। पिताजी को और छोटी बीबीजी को खिला देना।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'इन दिनों कमला का स्वास्थ्य भी गिर रहा है। मैं जानता हूँ उसे मानसिक सन्ताप भी रहा। रमाकान्त ने उसे परेशानी का पुरस्कार प्रदान किया।'

नौकर चला गया। सरला ने कहा—'पिताजी, रमाकान्त अच्छा नहीं निकला।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'उसे अच्छा निकलना भी नहीं था। सूदखोर और कृपण ब्राह्मण का पुत्र कैसे अच्छा होता !' उन्होंने कहा—'बेटी माता-पिता का स्वभाव, उनका आचरण सन्तान के जीवन में बड़ा काम करता है। यही पुरस्कार रमाकान्त को मिला। वह पढ़ा, अच्छी संगत में रहा, परन्तु उसके खून में मिला संस्कारों का प्रभाव एक दिन बोल पड़ा। उसने रमाकान्त की साधना पर पानी फेर दिया।'

उसी समय सरला ने गम्भीर बनकर कहा—'पिताजी, यह भी एक समस्या है कि जिस पुरुष से नारी सम्बन्ध जोड़ती है, उसे जीवन भर का साथी चुनती है; वह तनिक भी विपरीत रहा, तो जिन्दगी का हर्ष जाता रहा। उस नारी की कल्पनाओं का किला ढह गया। और बहुधा यही होता है। विपरीत स्वभाव के मिलकर ही, घरों में झगड़ा खड़ा होता है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'यह सच है! और जब से जातिवाद तथा रूढ़िवाद का प्रश्न चला है; समाज की विभिन्न रेखायें खिच गयी हैं, तो उनके अन्दर डोलता हुआ यह नर-नारी का समाज दुःखी है। मा-बापों को अपनी कन्याओं के लिए योग्य वर नहीं मिलते। गोत्र-सगोत्र का प्रश्न भी लोगों ने खड़ा कर दिया है।'

सरला ने कहा—'पिताजी, मुझे मुसलमानों की परम्परा पसन्द आती है। दूध को छोड़कर वह अपने घरों में ही सम्बन्ध कर सकते हैं। प्रायः लड़के-लड़कियाँ एक-दूसरे को निकट से देखलेते हैं, समझ लेते हैं। इस प्रकार उनकी पूँजी भी घर में रहती है। बाहर नहीं जाती।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'हाँ, बेटी! प्रथा तो अच्छी है। परन्तु झगड़े वहाँ भी खड़े होते हैं। पूँजी का प्रश्न उन्हें भी सताता है। जमाई अपने ससुर से बँटबारा करता है। विवाह होते ही वह साझीदार बन जाता है। हिन्दुओं के यहाँ यह प्रथा नहीं। मुसलमानों में तो जमाई अपने साले का, स्वसुर का या साढ़ू का खून तक कर डालता है। हिन्दू लोग अपनी लड़की को दूर देते हैं,—कन्यादान करते हैं।'

सरला ने कहा—'यह भी गलत है। कन्यादान क्यों की जाती है, क्या जानवर है—कन्या, कि जिसका घेवड़ा पकड़कर दूसरे के हाथ में दे दिया।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'बेटी, कन्या का विवाह करना किसी भी गृहस्थ के लिए एक बड़ा यज्ञ है। हिन्दू आज तक यही मानते हैं। जिसका अर्थ है, दूसरे गृहस्थ को एक महान वस्तु की भेंट! उस कन्या से वह दूसरा घर उजागर हो गया। उस कन्या से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह महान होगा। देश, जाति और धर्म का उद्धारक होगा। इसीलिए कन्यादान महान दान माना गया है,—अक्षत दान समझा गया है!'

उसी समय कमला लौट आई। उसके मुँह पर पसीने की बूँदें थीं। थकान भी थी।'

देखकर सरला ने कहा—'तुम आ गयीं, जीजी! मैं सोचती थी, तुम आओगी, तो मैं तभी खाऊँगी। कहाँ गयी थीं?'

कमला बोली—'यहाँ से दूर गयी थी। कल ही एक व्यक्ति मर गया। वह अपनी पत्नी और चार बच्चे छोड़ गया। वह तो गया, पर उस औरत को

निरावलम्ब कर गया। उसी को आज कुछ काम दिया। पन्द्रह दिन के लिए उसका खाने का प्रबन्ध भी किया गया।'

सरला ने कहा—'बड़ा लम्बा काम है,—व्ययसाध्य !'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—साधना सच्ची हो, तो सभी-कुछ पूर्ण होता है।'

कमला ने कहा—'संस्था के पास पैसा नहीं। फिर भी काम चल रहा है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'हाँ, हाँ, क्यों नहीं चलेगा ?' वह बोले—अब भोजन की सुध लो, बेटी ! बारह बज गये, और कमलारानी, अब कुछ समय चुनाव-कार्य की ओर भी दो।'

कमला ने कहा—'मुझे उत्साह नहीं है, पिताजी ! फिर भी समय दूँगी ! आज से लगूँगी !'

सरला ने कहा—'एक सप्ताह तो है। जाने विजय किसके भाग्य में है।'

किन्तु कमला ने अपना मत नहीं दिया,—उसने बात को रोक लिया।

: ३२ :

अशफाक मियाँ का पत्र आया कि वह लौट रहा है। उसी पत्र में उसने लिखा कि एक रूसी चित्रकार ने मेरे पास सरला का चित्र देखा, तो उसने उसे अपनी कूँची से और सजा दिया। बड़ा भी कर दिया। उस चित्रकार ने कहा कि मेरी ओर से तुम्हें यही भेंट है। और मैंने उस भेंट को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

वह पत्र जब सरला ने देखा, तो मन में हँसी। उसे एक बार फिर अशफाक मियाँ का ध्यान आया।

उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा—'अशफाक सरीखा युवक भी मुझे कम दिखायी दिया। अपनी धुन का पक्का है। यह घूमना भी उसके लिए वरदान सिद्ध हुआ। इस बीच में उसने अखबारों में भी बहुत लिखा। हजरत

ने भारतीय अखबारों में अपने पर्यटन का पूरा-पूरा ब्योरा दिया। वह बाहर जाकर चुप नहीं बैठा। अपना प्रचार बराबर करता रहा।'

कमला ने कहा—'आज का व्यक्ति इसी प्रकार आगे बढ़ता है। जो व्यक्ति आगे बढ़ कर स्वयं अपना परिचय देते हैं, इस जीवन-पथ पर सफल बनते हैं।'

ज्ञाननाथजी ने बात सुन ली। वह उनके मन में भी उतर गयी। परन्तु एकाएक उन्होंने अपना मत नहीं दिया।

सरला ने कहा—'सभी ऐसा नहीं करते। यह स्वयं-सिद्ध की परिपाटी इसलिए भी अच्छी नहीं कि कर्मण्य और साधक काम करते हैं, अपना प्रचार नहीं करते। और जो बोलते अधिक हैं, वे प्रायः साधकों के रास्ते में तो बाधा डालते ही हैं, देश और समाज के लिए भी अहितकर सिद्ध होते हैं। जिस दुकान में माल नहीं होता, उसकी वस्तुओं में वास्तविकता भी नहीं होती, उसका प्रचार अधिक किया जाता है। उस दुकान का बाहरी रूप भी अधिक परिष्कृत बनाया जाता है।'

ज्ञाननाथजी हँसे—'नहीं बेटी! अपनी असलियत का रूप सभी को बताना पड़ता है।'

सरला ने कुण्ठित स्वर में कहा—'पिताजी, वास्तविकता नहीं छिपती! कौआ क्या कभी हंसों में छिपा है!'

पिता के साथ कमला भी हँस पड़ी—'अशफाक मियाँ के लिये तेरे मन में क्या है! वह तो तेरा चित्र बनवा कर ला रहा है। रूस से ला रहा है।'

जल्दी से सरला ने कहा—'तुम यह क्यों सोचती हो जीजी, कि मैं अशफाक मियाँ के लिये मन में कुछ रखती हूँ। उसकी उपेक्षा करती हूँ।'

पिता ने उस बात पर पर्दा डालना चाहा और कहा—'हाँ, हाँ, यदि किसी के लिये कुछ कहा जाय, विपरीत मत दिया जाय, तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि उस व्यक्ति विशेष से कोई उपेक्षा है। उसके लिए अरुचि है। अशफाक मियाँ के लिए सरला के मन में कोई बात है, मैं नहीं मानता।'

सरला ने कहा—'मैं अशफाक मियाँ को भला आदमी मानती हूँ।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'वह भला भी है। हजारों में नेक है।'

कमला बोली—'उसे इस बात की लगन है कि देश के लिये काम करे।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'अशफाक मियाँ अपना घर इसी उद्देश्य से छोड़ा कि उस बार की एकाएक उसकी कार्यवाही को सहन नहीं करेगी। वह विस्तृत क्षेत्र चाहता था। इन्सान की खिदमत करने की बात सोचता था।'

कमला ने कहा—'अशफाक मियाँ का दृष्टिकोण विस्तृत है। उनकी इच्छाएँ भी बलवती हैं।'

उसी समय सरला के मन में बात आई कि क्या ही अच्छा होता कि यह इन्सान एक ही मजहब और कर्म का मानने वाला होता। वह तब कमरे के बाहर आसमान की ओर देख रही थी। उसने मन में कहा, कहने को संसार एक कुटुम्ब है। सभी के स्वार्थ एक-दूसरे से बँधे हैं। एक देश दूसरे देश पर निर्भर है। यही जाति और उपजातियों की बात है। उसने अपने मन पर झटका खाया और कहा—हाय! बुरा हो उन लोगों का कि जिन्होंने संसार को एक ही समस्या में बाँध कर पृथक-पृथक रास्ते पर डाल दिया है। जुदे-जुदे धर्म और पन्थ बना दिये हैं। जातियों के रूप-भेद और रंग-भेद कर दिये हैं।

तभी ज्ञाननाथ जी कह रहे थे—'मैं हिन्दू और मुसलमान में इतना अन्तर देखता हूँ कि हिन्दू कुछ करने के साथ अपना स्वार्थ देखता है। स्वार्थ मुसलमान का भी है, परन्तु जब वह इन्सान की खिदमत का सबक पढ़ता है, तो आँख मूँद कर उसके लिए अपने को आग में झोंक देता है।'

कमला ने कहा—'यही मेरा मत है। मुसलमान दुश्मन भी अच्छा, दोस्त भी अच्छा!'

पण्डित जी बोले—'मुसलमान का इखलाक ऊँचा है। हिन्दू घरानों में जिस बे अदबी से बातें की जाती हैं, मुसलमान घर में उसका निशान नहीं मिलता। मुसलमान खाविंद भी अपनी बीबी से शाईस्तगी से गुफ्तगू करता है।'

कमला बोली—'हिन्दुओं ने मुसलमानों की बुराई ली, अच्छाई ग्रहण नहीं की।'

पण्डितजी विषाक्तभाव से मुसकरा दिये—'हिन्दुओं ने कहीं से भी अच्छापन नहीं लिया। अपने घर से बाहर इन्होंने नहीं देखा। अहंभाव सदा

ही इन्हें पीछे धकेलता रहा। इसी का कारण है कि हिन्दुत्व स्वयं मृत्यु और जीवन के भवँर में पड़ गया।'

सरला ने कहा—'पिताजी, बताइये, क्या आज भी हमारे पास हिंदुत्व है! इतनी सदियाँ गुजरने पर, इतने भूचाल इस देश पर आये तो क्या हमारा अस्तित्व जीवित है। मैं अनुभव करती हूँ कि हम न हिन्दू हैं, न मुसलमान हैं,—खिचड़ी हैं!'

कमला हँसी—'तो क्या हम दोगले हैं!'

किन्तु सरला ने उस हँसी को लक्ष्य करके भी, गम्भीर स्वर में कहा—जीजी, हम क्या हैं, यह तो मैं नहीं जानती। परन्तु हमारी नस्ल अवश्य खराब है।'

कमला ने कहा—'आज तो संसार की प्रमुख जातियों का यही हाल है। रक्त सभी का दूषित है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'रक्त शुद्ध नहीं रहता। देर तक वह विशुद्ध नहीं रखा जा सकता।'

कमला ने कहा'—मैंने ऐसे अनेक मुसलमान देखे कि जिन्हें हिन्दू-ग्रन्थ पढ़ने का शौक रहा। भला यह क्यों रहा? बात साफ है, उनके पुरखे हिन्दू रहे होंगे।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'ऐसा तो अधिकांश में हुआ।'

सरला बोली—'धर्म-परिवर्तन की भी परिपाटी भी अच्छी नहीं। जाने क्यों इस परम्परा को आश्रय दिया गया।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'जातियों के बढ़ने का यही मार्ग है। इस प्रणाली का जन्म देर से हुआ है।' वह बोले—'आज उन लोगों के समक्ष एक समस्या है कि जो जाति को नहीं मानते। मान लो कि एक जाति की लड़की दूसरी जाति के लड़के से विवाह करे, तो तब उनकी सन्तानों का निकास किस जाति से माना जायगा। आज तो यही परम्परा है कि पुरुष की जाति पर ही सन्तान की जाति निर्भर होती है। परन्तु हो सकता है कि आगे लड़की इस बात को स्वीकार न करे। वह अपनी जाति को महत्व दे। फिर मतभेद बढ़ेगा। लिंग-भेद का झगड़ा चलेगा। और यदि लड़की अपनी जाति छोड़ती है, तो यह भी उसकी जाति द्वारा अच्छा नहीं समझा जाता।'

कमला ने हँस कर कहा—'ऐसे लोगों की पृथक जाति हो,—वह जाति-हीन जमात हो,—केवल इंसानी जमात !'

पण्डितजी ने कहा—'बेटी, यह व्यावहारिक नहीं। अभी इससे मान्यता भी प्राप्त नहीं।'

सरला ने कहा—'यह लिंग-भेद जिस दिन मिटेगा, उसी दिन परिवारों को सुख मिलेगा।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'लिंग-भेद तो रहेगा। अभी अवश्य रहेगा। जातियों का अस्तित्व भी दिखायी देगा।'

सरला ने कहा—'इस प्रकार नारी का अस्तित्व मान्य नहीं होगा। वह वह यदि दूसरी जाति के पुरुष से विवाह करेगी, तो उसका अपनी जाति से अस्तित्व मिट जायेगा। आपके कथन के अनुरूप उसके बच्चों का नाम और धर्म भी बदल जायगा।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'निःसन्देह ! और कोई रास्ता नहीं।'

सरला ने उद्विग्न बनकर कहा—'यही असंगत है। नारी का अपमान है।'

कमला ने कहा—'समाज के समस्त कानून पुरुष द्वारा बनाये गये हैं। उनमें नारी का कोई अधिकार नहीं है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'नारी ने कभी भी अपने अधिकार की माँग नहीं की। उस समय ऐसी आवश्यकता भी नहीं थी। नारी ने स्वयं ही अपनी काया और आत्मा पुरुष के हाथों अर्पित कर दी थी। वह पूर्ण रूप से समर्पित थी। पुरुष को पाकर, वह पीछे नहीं देखती थी। अपना आगे का पथ ही प्रशस्त करना पसन्द करती थी और इसी में उस नारी की महानता थी।'

कमला बोली—'अजीब बात है कि आज नारी अधिकार की मांग करती है, परन्तु अपने-आप हल्की भी प्रगट होती है। आज की नारी समानता के अधिकार माँगती है।'

सरला ने कहा—आज के युग की यही पुकार है। नारी ने अपने को सर्वाधिक योग्य भी साबित किया है। समाज के सभी कार्यों में नारी ने योग दिया है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'ऐसा कल भी था। नारी की वीरता, नारी की

धीरता और कौशल की कहानियों से विश्व का इतिहास भरा है। भारत भी ऐसी नारियों को जन्म देकर गौरवान्वित है।'

तपाक से सरला ने कहा—'और तब भी नारी का कोई अधिकार नहीं? नारी के लिए प्रकाश नहीं। उसका पथ प्रशस्त नहीं!'

पण्डितजी बोले—'बेटी, पुरुष की यही हीनता है।'

सरला वहाँ से उठ चली। कमला ने कहा—'अरी आज कहीं जाना है?—न जाना हो, तो मेरे साथ चलना। अभी तो धूप है। चार बजे जाना है।'

सरला बोली—'आज मेरा कोई प्रोग्राम नहीं। मैं पढ़ती हूँ, जब जाना हो, तो मुझे ले लेना।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'आज की सभा बड़ी होगी। अन्तिम भी। फिर कोई प्रदर्शन नहीं होगा। सुना है, चुनाव के दिन पुलिस का भी विशेष प्रबन्ध रहेगा।'

सरला चली गयी। कमला बोली—'सुनती हूँ, चुनाव के समय झगड़ा होने का अन्देशा रहेगा।'

पण्डितजी ने कहा—'पुलिस को भी आशंका है।' वह बोले—'परन्तु झगड़ा नहीं होगा। कोई भी व्यक्ति नयी मुसीबत अपने सिर पर नहीं लेगा।'

कमला ने कहा—'जो व्यक्ति झगड़ा कराते हैं, वह क्या पकड़े जाते हैं? उस समय तो दूसरे ही पुलिस के हाथों पड़ते हैं।' यह कहते हुए वह उठ खड़ी हुई। वह सीधी सरला के निकट पहुँच गयी। उसे देखते ही सरला ने कहा—'जीजी, रामू कहता है कि उसे एक महीने की छुट्टी मिल जाय। उसे घर से पत्र मिला है। अपना गौना करने जाना है।'

सुनकर कमला हँस दी—'गौना तो जरूर होना चाहिए। दो प्राणियों की इच्छा नहीं मारनी चाहिए।'

'लेकिन यहाँ कौन रोटी बनायेगा? घर का काम कैसे होगा?' सरला ने कहा।

कमला बोली—'यह काम भी चलेगा। रामू किसी को ले आये, तो सुगम रहेगा।'

'मैंने भी यही कहा है। रामू इसी सप्ताह जाने वाला है।'

उसी समय रामू आ गया। गठीला, जवान। अपने काम में चुस्त। विश्वासपात्र देखकर कमला ने कहा—'अरे, तेरा गौना है, रामू?'

रामू ने सकुचाकर कहा—'हाँ, बीबीजी!'

'अच्छा, जाना। किसी आदमी को ढूँढ ले, तो हमें भी आसान रहेगा।'

रामू ने कहा—'मैं आज ही जाऊँगा। अपनी तरफ के आदमियों से बात करूँगा।' वह चला गया।

तभी कमला ने कहा—'पेट के लिये आदमी क्या-क्या नहीं करता। यह रामू भी अपने मा-बापों से दूर पड़ा है। बीबी आयेगी, तो उसे भी क्या अभी रख सकेगा।'

सरला ने कहा—'जीजी, पैसे पर आदमी बिका है।'

उसी समय कमला ने सरला के सिरहाने अशफाक का पत्र देखा। उसने समझ लिया कि सरला ने दोबार पढ़ा। यहाँ आकर पढ़ा। तभी उसने कहा—'काश, यह अशफाक मुसलमान न होता!'

सरला ने बात सुन ली। किन्तु किताब की ओर से मुँह नहीं हटाया।

कमला ने फिर कहा—'अजीब परेशानी है। अपने निकट अच्छे आदमी नहीं। और जो दूर हैं, दूसरी जाति के हैं, उनसे सम्बन्ध की आज्ञा समाज की नहीं।'

तभी सरला ने किताब से मुँह हटाकर कहा—'समाज यदि कुएँ में गिरने को कहे, तो क्यों गिरा जाय! अपनी इच्छा पर हमारा अधिकार है।'

कमलाने उदास भाव में कहा—'बहिन, अधिकार तो है। पर वह निभता कहाँ है!'

सरला बोली—'जीजी, यह तो अपने मन की बात है।'

कमला ने अपने मन में उठती हुई बात कह डाली—'मेरा वश चलता, तो तेरा अशफाक से विवाह कराती। पिताजी से कहती।'

सुनकर सरला ने अपना मत नहीं दिया। उसने फिर किताब की ओर मुँह कर लिया।

कमला बोली—'हम बहुत पीछे हैं। दुनिया भाग रही है और हम रेंग रहे हैं।'

सरला बोली—'यदि स्थिति रही, तो हम मर जाने वाले हैं।'

कमला ने कहा—'और अभी क्या जीवित हैं। मरों से बद्तर हैं।' यह कहते हुए कमला अपने बिस्तर पर पड़ गयी। वह कुछ ही देर में सो गयी। किन्तु अपने बिस्तर पर पड़ी हुई सरला किताब पढ़ रही थी। जीजी से उसने जिस अशफाक की बात सुनी, तो वह अभी उसके मस्तिष्क में थी। किताब हाथ में थी, किन्तु उस किताब के पेज पर छपी हुई शब्दों की छायामात्र ही तब दृष्टि के सामने रह गयी। और सरला के मन में आया, जीजी ने जो कुछ कहा है वह क्या सचमुच होनेवाली बात है! अशफाक मियाँ की बात। वह अशफाक जो सदा हँसता हुआ आया, हँसाता हुआ गया। कितना अल्हड़! कितना मस्त! जैसे चिन्ता का उसके पास निशान नहीं। निचाई की ओर देखना उसका काम नहीं। वह मुसलमान नहीं, हिन्दू नहीं। वह इंसान है। वह लड़का है। वह युवक है। तभी, मानो बलात् सरला ने कहा—ऐसा व्यक्ति कवि होता है, कलाकार बनता है। वह संसार के दरिया में गोता मारता है, तो खाली हाथ नहीं लौटता। कोई-न-कोई मोती से भरा सीप उस सागर की गहराई से उठा लाता है। हाँ, अशफाक बड़ा आदमी है। उसने अपना घर छोड़ा, देश छोड़ा। उसने मा का प्यार भी छोड़ दिया। सच कैसा है अशफाक! मैंने आज तक नहीं समझा। वह शहर से नहीं देखा। उसे नहीं खोजा। उसे पाने का प्रयत्न भी नहीं किया।

अपने मन की उसी अवस्था में सरला को नींद आ गयी। वह सो गयी। दोनों बहिनें देर तक सोती रहीं। दोनों में से एक भी नहीं जागी। जब सन्ध्या आई, तो पण्डित जी ने आकर आवाज दी। कमला जाग गयी। वह बोले—'भाई, उन्हें सभा में जाना है। सरला को भी ले जाना है। उसे जगाओ।'

कमला ने आवाज दी—'अरी, सरला! ओ......'

सरला ने कहा—'हूँ।'

'उठ, न! देख, सन्ध्या आ गयी। सूरज छिप गया।'

सरला ने आँख खोली। वह कुछ देर आँख खोले ही पड़ी रही। कमला मुँह धोने गयी। सरला उठ गयी। वह मन में बोली—'अजीब बात थी कि अशफाक लौट आया। सपने में आ गया। वह लजा गयी। उसके मुँह पर परवस ही लाली दौड़ गयी। इतने में कमला मुँह धोकर आई, तो सरला भी गुसलखाने

की ओर चली। अपने बाल ठीक कर कमला ने धोती बदली। वह तैयार हो गयी। उसी समय रामू ने आकर कहा—'बीबी जी विनोद बाबू की मा ने कहा है, उनसे मिल लो, तो अच्छा है। आज उन्हें हल्का बुखार भी था।'

कमला ने कहा—'लौटूँगी, तो हो आऊँगी।'

कमरे में लौटकर सरला बोली—'जीजी, बड़ी गहरी नींद आई—सच!'

कमला ने कहा—'रात देर में सोयी थी, प्रातः भी जल्दी उठी।'

सरला बोली—'जीजी, नींद आती है, तो सुख मिलता है। कभी-कभी तो जागती अवस्था का कहा सुना भी नींद में सपना बन जाता है।'

कमला ने इतना सुना और सरला की ओर देखकर मुसकरा दिया।

सरला ने कहा—'जीजी, मैं अभी तैयार होती हूँ। धोती बदलती हूँ।'

कमला बोली—'आज मुझे अपने काम से भी जाना था। पर सभा का समय हो गया। वहाँ न जाऊँगी, तो लोग कहेंगे, मगरूर लड़की है। चुनाव जीतना चाहती है और घर पर आराम करती है। वह बोली भला मैं कैसे बताऊँ कि घर पर बैठने की क्या मुझे फुरसत मिलती है। कभी-कभी तो रोटी भी नहीं मिलती।'

उसी समय ज्ञाननाथ जी अपने कमरे से तैयार होकर आये। पुत्रियों को तैयार देखकर, वह द्वार की ओर चले। सरला ने एक नयी साड़ी पहन ली थी। वह उस पर फब रही थी। कमला ने उसकी ओर देखा, तो हँस दिया।

यही देखकर, सरला ने प्रश्न किया—'जीजी, क्यों?'

जल्दी से द्वार की ओर जाते हुए कमला ने कह दिया—'कुछ नहीं, री कुछ नहीं।'

सरला बोली—'तुम न बताओ, मैं तो समझ गयी।'

कमला ने कहा—'तो फिर क्यों पूछती है। बात पक्की करना चाहती है! तुझ पर यह साड़ी क्या, कोई भी साड़ी अच्छी लगती है।'

नीचे उतर कर, ज्ञाननाथ जी ने रास्ते की ओर इशारा करते हुए कहा—'हमारी दिशा वह है,—उस ओर!'

सरला ने कहा—'पिता जी हम आप के साथ हैं। कहाँ जाना है, उसका भी आपको पता है।'

: ३२ :

चुनाव का वह दिन आ गया कि जिसकी लोग देर से प्रतीक्षा में थे। कई मास से उसी का चर्चा थी। उन दिनों नगर की यह अवस्था थी कि जहाँ भी चार व्यक्ति मिल जाते, तो चुनाव-चर्चा में ही वह अपने को डुबा देते। मानो उन दिनों लोगों के मनोरंजन का केवल चुनाव प्रकरण ही आधार बना था। उससे यह भी अनुभव होता कि जन-साधारण देश में घटने वाली किसी भी घटना के प्रति कितना सजग है और संलग्न है। किन्तु बहुधा देखा यह गया कि वही लोग इस प्रकार की चर्चा में अधिक संलग्न होते कि जिनके पास समय होता। बाजार और मोहल्लों में एकत्र होने वाले व्यक्ति निःसन्देह, इस प्रकार बैठ कर बातें करते कि मानो प्रस्तुत विषय केवल उन्हीं से सम्बन्धित था। परन्तु वे तो निठल्ले होते, अपना समय व्यतीत करने के लिए उस प्रकार के तर्क-वितर्क में मन और मस्तिष्क को लगाते। भारत सरीखे बहुसंख्यकी देश में इस प्रकार के व्यक्ति किस आधार पर अपना समय व्यर्थ खोते, यह एक विचारणीय विषय था। सचमुच, ऐसे लोगों की दृष्टि से जीवन का उत्तरदायित्व प्रायः नष्ट हो चुका था। लगता कि उनके पास भोजन और जीवनोपयोगी साधनों की प्रचुरता है। और देश गरीब था—रोटियों का मोहताज? यदि सरकार का नियन्त्रक विभाग ऐसे व्यक्तियों की तालिका बनाकर, उन्हें काम दे पाता, तो इससे भी देश का कल्याण होता। ऐसे व्यक्तियों से जो सबसे अधिक अकल्याण की सम्भावना प्रगट होती, वह यह कि वे अनुपयुक्त विचारों का प्रदर्शन करते और लोगों को बरगलाते! इस प्रकार के लोगों के लिये किसी प्रकार के दण्ड की व्यवस्था होती तो समाज का कोई भला हो सकता था।

अस्तु, जब चुनाव का दिन आया, तो प्रातः से ही पोलिंग स्टेशनों पर लोगों की भीड़ एकत्र होने लगी। उसमें वोट देने वाले भी थे, दर्शक भी। यद्यपि चुनाव-चिह्न अनेक प्रकार के थे। विभिन्न विचारों के व्यक्ति उस चुनाव-क्षेत्र में उतरे हुए थे परन्तु प्रधानतः दो ही विचार उस क्षेत्र में अपना काम कर रहे थे। एक ओर देश की प्रमुख संस्था थी, जो प्रधान रूप से चुनाव लड़ रही थी, दूसरी ओर वे लोग थे, जो उस संस्था से होड़ करने के लिये

कटिबद्ध थे। क्योंकि उनकी दृष्टि से उस संस्था के व्यक्ति अकर्मण्य और भ्रष्ट हो चुके थे। वे देश को गलत दिशा की ओर ले जा रहे थे। परिणामतः नगर में तनाव था। पुलिस का विशेष प्रबन्ध था। सरकार के बड़े अधिकारियों का भी नगर में चक्कर लग रहा था। सम्भावना थी कि नगर में झगड़ा हो जायगा। हिन्दुओं का उस बड़ी शक्ति से टकराव होगा। परन्तु दोपहर होने तक कोई बड़ा झगड़ा नहीं हुआ। पोलिंग का काम व्यवस्था से चलता रहा। बातों-बातों में छोटी-मोटी तेजा-तुर्शी के समाचार सब ओर से आये, किन्तु कहीं कोई आदमी मर गया, कोई पिट गया, ऐसा कहीं से भी नहीं सुनाई दिया।

पण्डित ज्ञाननाथ के साथ उनकी दोनों पुत्रियाँ प्रातः से ही पोलिंग स्टेशनों पर पहुँच गयी थीं। उन्होंने अपने चुनाव-क्षेत्र की गति-विधि का अवलोकन किया। यद्यपि कमला के उत्साह में कोई वृद्धि नहीं दिखायी दी, परन्तु सरला ने उस दिन का पूरा समय चुनाव-कार्य के लिये लगा दिया। उसका उत्साह भी दर्शनीय था। अपने किसी भी साथी कार्यकर्ता से उसने अपने को पीछे नहीं रखा। घर-घर जाकर उसने अलख जगायी। लोगों को वोट देने के लिए उत्साहित किया।

संध्या आ गयी। चुनाव का कार्य समाप्त हो गया। लोगों ने पण्डित ज्ञाननाथ और उनकी पुत्रियों को घेर कर कहा—'आप विजयी हुए। कमला देवी को रमाकान्त से वोट अधिक मिले हैं।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'भाई, यह सब आपके ही परिश्रम का फल है। कमला को आप लोगों ने ही खड़ा किया।'

सरला ने कहा—'सत्य की विजय होती है।'

भीड़ में से किसी व्यक्ति ने आवाज लगायी—'महात्मा गांधी की जय!'

दूसरी ओर से आवाज उठी—'जवाहर लाल की जय!'

किन्तु उसी समय दूसरे कैम्प में रमाकान्त भी लोगों के बीच में खड़ा था। एक नौजवान ने अपनी तेज वाणी में कहा—'मैं सौ रुपये की शर्त लगाता हूँ, रमाबाबू जीत गये!'

दूसरे व्यक्ति ने कहा—'हिन्दू-धर्म की हार नहीं हो सकती! न्याय का पलड़ा ऊँचा रहेगा।'

तभी एक व्यक्ति ने रमाबाबू के समक्ष आकर कहा—'मैं कहता हूँ आप दो हजार वोटों से जीतेंगे।'

दूसरे व्यक्ति ने कहा--'नहीं, चार हजार से ! कई पोलिंगों पर हमारा जोर अधिक रहा है। हमारे कई सौ वोटों को वापिस जाना पड़ा। शरणार्थियों ने एक वोट भी कांग्रेस को नहीं दिया।'

तभी तक अन्य व्यक्ति ने कहा—'नहीं भाई ? ऐसा न सोचना। शरणार्थियों ने भी कांग्रेस को वोट दिया है। मुसलमानों का वोट तुमको नहीं मिला।'

'तो शरणार्थियों का कितना वोट कांग्रेस को मिला ?'

'बीस प्रतिशत ! पचास प्रतिशत यहाँ के हिन्दुओं ने दिया होगा।'

उसी समय एक शरणार्थी युवक ने क्षोभपूर्ण स्वर में कहा—'हाँ, भाई, यहाँ के हिन्दुओं की हमारी क्या चिन्ता ! उनसे हमारा मेल क्या ! कांग्रेस ने उनको आजादी दिलवायी, हमारे घरों का दीपक बुझा दिया। यहाँ के लोग मौज से जिंदगी बिताते हैं। हम शरणार्थी जिन्दगी का दुर्भाग्य सिर पर उठाये फिरते हैं।'

तभी कहा गया—'जिसके पैर फटी न बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।'

रमाकांत ने कहा—'यहाँ के लोगों पर मुसीबत पड़ती, तब पता चलता।'

आवाज आई—'यहाँ के निवासी हिन्दू नहीं हैं। गद्दार हैं। जाति और धर्म द्रोही हैं।'

उसी समय एक वृद्ध ने रमाकांत के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—'बेटा, तुम जीत गये !'

रमाकांत ने उत्साह भाव में कहा—'बाबाजी, आप का आशीष है !'

वृद्ध ने कहा—'वृद्ध पण्डित ज्ञाननाथ भी आज जगह-जगह फिरा। मेरे पास गया।'

एक नौजवान ने पूछा--'तो बाबाजी, आपने क्या कहा ? अपना वोट दिया ?'

बाबा ने कहा--'मैंने तो उस पण्डित से कहा, भाई, हिन्दू साँस ले रहे हैं, इन्हें जीने दो। कांग्रेस ने हमारा नाश तो कर दिया। घर छूट गये, रोजगार छूट गये।'

नौजवान ने कहा—'वाह, बाबाजी! आपने ठीक कहा। बस, इतनी कसर रही, उस बूढ़े को अपने घर से धक्का भी दे देना था।'

दूसरे ने कहा—'गटर में जा पड़ता।'

तीसरा बोला—'कम्बख्त मर ही जाता!'

एक व्यक्ति बोला—'बूढ़ा बड़ा चतुर है। एक लड़की को नाचने वाली बना दिया है। वह कमाती है। बाप खाता है।'

'बेशर्म है! निर्लज्ज!'

'अजी, बड़ी बहिन को देखो, लीडरानी बन गयी है। सुनते हैं, दोनों बहिनें बड़े-बड़े लीडरों के पास आती-जाती हैं।'

'जी, राजा महाराजाओं के पास। रईसों से नीचे के लोग क्या उनकी आँखों में आते हैं।'

'रुपया इसी रास्ते से आता है। जीवन का आनन्द भी इसी प्रकार पाया जाता है।'

'वाह-वाह! क्या बात कही!'

'अजी—बूढ़े के पास ये दो ऐसे तीर हैं कि जिधर छोड़े जाते हैं, क्या खाली लौटते हैं। वे अपना काम करते हैं।'

ही-ही और हो-हो के साथ वह वार्ता समाप्त हो गयी। लोग घरों को चल दिये। दूसरी ओर पण्डित ज्ञाननाथ और उनकी पुत्रियाँ भी घर पहुँच गयीं। वे सभी थके थे। पड़ गये। उसी समय सरला ने कमला को संबोधित करते हुए कहा—'जीजी, यह चुनाव का कार्य भी गन्दा है। मैंने आज ही समझा कि आदमी अपनी छोटी-सी शराफत भी छोड़ देता है।'

कमला ने कहा—'तूने आज समझा। मुझे तो इसका देर से पता था। लाहौर में एक चुनाव-युद्ध को मैंने अपनी आँखों से देखा। पुरखों के दोष इस चुनाव में दिखाये जाते हैं। बड़े भद्दे आक्षेप होते हैं।'

सरला ने कहा—'मैं आज एक मोहल्ले से निकली। कुछ कांग्रेसी मेरे साथ थे। तभी कुछ नौजवानों ने आक्षेप किये। भद्दे शब्द भी इस्तेमाल किये। आश्चर्य कि वहीं पर रमाकान्त खड़े थे। वे मुँह पर रूमाल रखे हँस रहे थे। अवसर निकट था कि झगड़ा हो जाता। परन्तु उसी समय एक थानेदार उधर आ गया। वे नौजवान खिसक गये। जब उससे कहा गया,

तो रमाकान्त ने कहा, मैं उन व्यक्तियों को नहीं जानता। परन्तु वे सभी पंजाबी थे। पढ़े-लिखे थे।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'अच्छा हुआ बेटी, तुमने कुछ नहीं कहा। पढ़ा-लिखा होकर भी आदमी अच्छा नहीं बनता। आज यही दीखता है। रमाकांत के व्यक्तियों ने जिस प्रकार के शब्दों का व्यवहार किया, उनमें से अधिकांश को मैंने भी सुना। और तो क्या, उन्होंने तुम दोनों को वेश्या तक बता दिया। मुझे तुम्हारी कमाई खाने वाला ठहरा दिया।'

कमला ने कहा—'मैं इसीलिए इस चुनाव से उदास रही हूँ। साधारण शिष्टता भी जो समाज छोड़ सकता है, मुझे उसके पास जाना भी पसन्द नहीं आता!'

सरला ने कहा—'पर जीजी, मुसीबत तो यह है, रहना इन्हीं व्यक्तियों में है। अच्छे हैं या बुरे, काम इन्हीं लोगों से पड़ता है। मैं तो आज जिन-जिन घरों में गयी, सचमुच, कभी नहीं जा सकती। लोगों का जीवन-स्तर बहुत अधिक नीचा हो गया है। व्यवहार बदल गया है, रहन-सहन बदल गया है। नौजवानों की उद्दण्डता पराकाष्ठा को पहुंच गयी है।'

कमला ने कहा—'यह सब हमारे खान-पान का और रहन-सहन का दोप है। हमने अपने व्यवहार में काम आने वाली सभी वस्तुओं को भ्रष्ट बनाकर अंगीकार किया है। मांस और मदिरा आज हमारे समाज का विशेष भोज्य पदार्थ हो गया है। इसने हमारी शान्त इन्द्रियों को अधिक उन्मुक्त और तेज किया है।'

सरला बोली—'जीजी, मांस खाने वाले आज संसार में अधिक हैं। शराब पीने वाले भी कम नहीं हैं।'

कमला ने कहा—'भारत सरीखे उष्ण-प्रधान देश के लिए इन वस्तुओं का उपयोग उपयुक्त नहीं। यहाँ गर्मी है और इन वस्तुओं का गुण भी गर्म है।'

ज्ञाननाथजी बोले—'अन्य देशों में गर्मी कम है। और यदि वहाँ पर इन वस्तुओं का उपयोग किया जाता है, तो वहाँ का व्यक्ति सलीके से रहना और खाना जानता है। यहाँ का प्रत्येक भोज्य-पदार्थ बिगाड़कर खाया जाता है।

मसाला, मिर्च ठूँस कर भरा जाता है। उस पदार्थ को जला दिया जाता है उसकी स्वाभाविकता को नष्ट किया जाता है।'

कमला ने कहा—'भारत का व्यक्ति पैसा प्राप्त करता है, तो उसका उपयोग अपने इन्द्रिय सुख के लिए पहिले करता है। आँखों का, कानों का और जिह्वा का आनन्द लेता है। आज यह भी दोष चल पड़ा है कि शरीर-सज्जा का भी सुख प्राप्त करता है। इस शरीर को सुन्दर वस्त्रों से सजाया जाता है।'

ज्ञाननाथजी बोले—'फ्रेंच-क्रांति के बाद योरोप की काया बदली। जीवन-स्तर को उठाने के लिए व्यापार का ढँग बदला। स्टीम का आविष्कार उसी युग में हुआ। भारत में अंग्रेज आये, तो उन्होंने लंका शायर की मिलों का कपड़ा भारत के बाजार में बेचा। गाँधीजी ने जिस चर्खे का आविष्कार किया, उसका उद्देश्य ही यह था कि स्वदेशी का व्यवहार किया जाय। अपने देश की वस्तु को काम में लाया जाय। किन्तु देश तो गुलाम था। विशेषतः पंजाब अंग्रेजियत का अधिक समर्थक था। अकेले पंजाब में जितना माल योरोप से आकर खपता, उतना समूचे भारत में नहीं आता था।'

सरला ने कहा—'पंजाब नकल करता है। जीवन-आनन्द की ओर बढ़ता है।'

कमला बोली—'तभी पतन हुआ। पंजाबी अपने-आप में भ्रष्ट हुआ।'

ज्ञाननाथजी ने गम्भीर बनकर कहा—'किन्तु इतना कहने भर से हमारा काम नहीं चलता। पंजाब की जो विशेषताएँ हैं उन्हें भी दृष्टि से दूर नहीं किया जा सकता।'

सरला ने कहा—'पंजाबी कर्मण्य होता है। खूब खाता है, तो खूब काम करता है। पौरुष का प्रदर्शन करता है।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'उखड़े हुए पंजाब ने बहुत जल्दी अपने को बसा लिया। मेरी तो गौरव से छाती फूल जाती है कि जब देखता हूँ कि सड़क के किनारे, आकाश की खुली छत के नीचे पंजाबी बच्चे और बच्चियाँ शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। मास्टर पढ़ा रहे हैं। नौजवान लड़कियाँ कवायद कर रही हैं। दफ्तरों में जाकर काम कर रही हैं। पुलिस और फौज में लग गयी हैं। इस नये युग में, नये युग की पुकार को सुनकर, आज की नारी क्या घरों में

बन्द रही है। उसने अपना घूँघट हटा दिया है। पुरुष के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर अपने पौरुष का प्रदर्शन किया है। पंजाबी बाला ने इस ओर सर्व प्रथम अपने को अग्रसर किया। पंजाबी नौजवान भी मैदान में दिखाई दिया।'

कमला बोली; पिताजी, पंजाबी व्यक्ति में यदि प्रान्तीयता की भावना बलवती न हो, उच्छंखृलता न हो, तो वह देश का नेतृत्व करने की पूर्णरूप से क्षमता रखता है। पंजाबी मरना जानता है, जीना जानता है। पौरुष उसके शरीर से बोलता है, बाणी से बोलता है, कर्म से बोलता है। यह भी दुर्भाग्य की बात है कि पंजाबी अपना स्वार्थ पहिले देखता है।'

सरला ने कहा—'पिताजी, यह दोष भी परिस्थिति का है, जीवन को देखने वाले दृष्टिकोण का है।'

ज्ञाननाथजी बोले—'समय आयेगा, सभी कुछ बदलेगा। हमारा नौजवान सबल और तेज पुञ्ज दिखायी देगा।'

उसी समय सरला ने चुनाव की बात ली—'कल किस समय तक चुनाव का परिणाम निकलेगा?'

ज्ञाननाथजी बोले—'संन्ध्या तक।'

सरला ने कहा—'पिताजी मुझे इसी सप्ताह बम्बई जाना है। जिस फिल्म कम्पनी से मेरा एग्रीमेंट हुआ, उसका पत्र आया है। पचास हजार का बैंक ड्राफ्ट भी!'

ज्ञाननाथजी ने जैसे कुछ परेशानी अनुभव की, इसलिए उन्होंने एकाएक अपना मत नहीं दिया। उस अवस्था में ही उन्होंने कमला की ओर देखा।

कमला ने कहा—'आप साथ चले जाइयेगा, पिताजी!'

सरला ने कहा—'जीजी, तुम भी!'

कमला ने कहा—'मैं नहीं जा सकती।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'कल चुनाव का परिणाम आने पर कुछ निश्चय किया जा सकेगा। यदि परिणाम पक्ष में रहा, तो कमला का उत्तरदायित्व और बढ़ जायगा। काम का बोझ हो जायगा।'

कमला बोली—'मेरे सिर पर अभी जो बोझ है, उससे दूर होने का अर्थ

ही यह है कि संस्था की हत्या ! और जब मुझे भी उस काम में आनन्द आता है, तो अपनी भी हत्या ! पिताजी आप जाइयेगा ।'

ज्ञाननाथजी बोले—'बेटी, मेरे पास क्या कम काम है ? मैं कोई भार न लेकर भी, जिस प्रकार काम करता हूँ, उसका मुझी को पता है । यह भी जीवन का एक व्यसन है । सोचता हूँ अब जिन्दगी के दिन अधिक नहीं रहे, तो जितना भी समाज और देश का काम कर सकूँ, उतना ही अच्छा है । फिर तो इस काया को जल जाना है ।'

सरला बोली—'उन राजा साहब का भी पत्र आया है । वे भी अपनी पुत्रियों सहित पहुँच रहे हैं । कल मुझे हवाई जहाज के अड्डे पर भी पहुँचना है ।'

कमला ने हँस कर कहा—'तेरा प्रोग्राम बड़ा है ।

सरला बोली—'न, जीजी ! कल तो मुझे चुनाव परिणाम पहिले देखना है । राजा साहब दस बजे पहुँच रहे हैं, फिर इसके बाद परिणाम की खोज में जाना है । मैंने तो सुना है कि कुछ लोगों ने इस चुनाव पर हजारों रुपयों का सट्टा लगाया है ।'

ज्ञाननाथ जी ने हँस कर कहा—'तू ने लगाया सट्टा ?'

सरला ने तपाक से कहा—'मैं भी लगाती हूँ । हजार रुपया लगाती हूँ ।'

'किसके पक्ष में ?' पिता ने प्रश्न किया ।

'जीजी के पक्ष में ! शर्त्त बदती हूँ, जीजी की जीत होगी ।'

पण्डित ज्ञाननाथ और कमला ने इतना सुना और जोर से अट्टहास के साथ हँस दिया ।

उसी समय रामू नौकर ने भोजन करने के लिये कहा ।

सरला ने कहा—'मेरा मन कहता है ।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'अच्छा-अच्छा, तेरा यह कहना मुझे भला लगता है ।'

: ३४ :

अगले दिन के प्रातःकाल में सरला ने अपना श्रृंगार अपेक्षाकृत सुन्दर ढंग से किया। नयी साड़ी पहिनी, नया ब्लाऊज। सिर के जूड़े में भी उसने सुन्दर फूलों को लगाया। रामू जब प्रातः का जलपान लेकर आया, तो सभी स्नान कर चुके थे। उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ ने अपनी छोटी पुत्री की ओर देखा। उसके कपड़ों से आती खुशबू का भी अनुभव किया। तभी उन्होंने कमला को लक्ष्य करके कहा—'कमला तू तो निरी गँवारिन रही। सरला ने पहरने-खाने का तो शऊर सीख लिया।'

पिता जी से उस कटाक्ष को सुनकर भी, जीजी के समान सरला भी मुसकराई। तभी उसने कहा—'पिताजी, कभी ऐसा भी बनना पड़ता है। मेरा काम ही ऐसा बन गया है। बड़े आदमी की लड़कियों का स्वागत करने चली हूँ, तो मुझे भी वैसा ही बनना उचित दीखता है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'हाँ, हाँ, बेटी! तू भले वस्त्र पहिने, तो मुझे भी अच्छा लगता है। अपनी सन्तान का खाना-पीना कौन नहीं पसन्द करता।'

कमला ने कहा—'इस सरला ने कल जो खद्दर की धोती पहिनी, वह भी अच्छी लगती थी। इसको सभी कपड़ा अच्छा लगता है।'

चाय पीकर सरला ने व्यस्त भाव से कहा—'तो जीजी मैं शायद सीधी यहाँ न आऊँगी। जहाँ चुनाव का परिणाम सुनाया जायगा, वहीं पहुँच जाऊँगी।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'जल्दी आना। यदि विजय अपनी हुई, तो यहाँ लोगों का आना-जाना भी रहेगा। वे अमृतसर के बैरिस्टर साहब और लतीफ साहब भी आयेंगे।'

सरला ने कहा—'मैं जल्दी लौटने का यत्न करूँगी।'

कमला ने कहा—'मुझे भी आज अधिक काम है। उस नये रोगी का बोझ भी मेरे सिर पर है।'

सरला ने कहा—'जीजी, उस रोगी के पास जाना मुझे नहीं रुचा। उसे तपेदिक है।'

कमला ने कहा—'जब किसी के बुरे दिन आते हैं, तो अपने भी गैर

बन जाते हैं। मैं तो देखकर चकित हूँ कि उस रोगी की पत्नी भी उससे दूर रहती है। बच्चों को दूर रखती है।'

पण्डित ज्ञाननाथ जी बोले—'यह अच्छा है।'

कमला ने चिढ़कर कहा—'क्या खाक अच्छा है, पिता जी। उस बीमार को कोढ़ का भी रोग है।'

'राम! राम!' ज्ञाननाथ जी ने दयाभाव में कहा—'तब तो वह बड़ी मुसीबत में है।'

'और ऐसे समय हम डर कर उस इंसान की सेवा न करें, उसके पास न जायें! तपेदिक के अस्पताल में पैर रखने की भी जगह नहीं है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'जिस देश में अन्न की कमी हो, भोज्यपदार्थों में पौष्टिक तत्व कम हों, वहाँ तपेदिक का रोग न फैले, यह कैसे सम्भव हो सकता है।'

'लेकिन इन्सानियत आज इन्सान से दूर हो गयी है। जिस पुरुष की पत्नी ही उससे परहेज करे, तब भला और कौन उसकी सहायता कर सकता है।' कमला ने सरला की ओर देखकर कहा—'मैं शायद चुनाव के परिणाम सुनने न जाऊँ! मैं अपना काम करूँगी। मैं धारा सभा की मेम्बर बनकर तीसमारखाँ न बन जाऊँगी।'

सरला ने पिता जी की ओर देखा और होठों से हँस कर कहा—'जीजी के मन का क्या किसी को पता चलता है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'सभी का अपना-अपना रास्ता है। तुमने भी अपना रास्ता बना लिया है।'

सरला वहाँ से चली और जल्दी लौट आने की बात कहती गयी। उसके जाते ही ज्ञाननाथजी बोले—'मैं सोच नहीं पाता कि इस सरला का चुना हुआ रास्ता सही है, या गलत है।'

कमला बोली—'पिता जी, अब सरला को उस रास्ते से मोड़ा भी नहीं जा सकता। इसे दो प्रलोभन मिल चुके हैं। यश मिला और धन मिला। आप देखते हैं, हमारे घर में सौंदर्य प्रसाधनों का बाजार खुला है।'

व्यस्त तथा चिन्तित भाव में ज्ञाननाथ जी बोले—'सरला धन प्राप्त करती है, तो खर्च करने का भी अधिकार रखती है।'

कमला ने कहा—'यह तो ठीक है।' वह बोली—'बैंक में जितना रुपया है, उसे निकालने का अधिकार भी सरला को दिया जाय। वह रुपया इसी के नाम से जमा किया जाय।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'मैं बैंक को पत्र लिख दूँगा। अपना नाम हटा कर सरला के नाम से हिसाब चालू करा दूँगा।'

कमला बोली—'इस समय भी डेढ़ लाख से अधिक रुपया होगा। सरला कुछ भी न करे, तो जीवन भर के लिए यह रुपया काफी रहेगा!'

ज्ञाननाथ जी बोले—'रुपया जिस प्रकार आता है, उसी प्रकार जाता है। कृपण व्यक्ति के पास ही रुपया जमा होता है।'

'एक दिन कहती थी सरला कि जीजी मोटर खरीद लें। कोई बँगला मिले, तो वह भी ले लें।' कमला ने कहा—'मेरा मत है कि सरला बम्बई जायगी, तो जल्दी न लौट सकेगी। आप साथ जाइयेगा।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'बेटी, जीवन भर तो मैं दूसरे रास्ते पर रहा। देश और जाति के काम में रहा। अब अभिनेत्री बनी हुई पुत्री के साथ बम्बई के बाजार में फिरूँ, यह मुझे नहीं शोभेगा। मुझे लज्जा का अनुभव होगा।'

बोली—'सरला को जरूर जाना पड़ेगा। कन्ट्राक्ट किया है और पेशगी रुपया भी प्राप्त किया है, तो चित्र में काम करना होगा। न गयी तो फिल्म-निर्माता मुकद्दमा भी चला सकेगा।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'वैसे मुझे सरला पर भरोसा है। उसे अपना हित-अहित भी दीखता है।'

कमला ने कहा—'सरला अन्धी नहीं है। अपने-आप में चतुर है! जल्दी ही किसी व्यक्ति के द्वारा धोखा नहीं खा सकती।'

'फिर भी लड़की है। जवान है। यौवन की दुनिया में है। साधनों से युक्त है। पास में पैसा है।'

'यह भी संयोग की बात है। जिस रास्ते पर जीवन का जाना होता है, जाता है। संस्कार प्रबल हैं। जीवन की धारा में बहता हुआ प्राणी कहाँ रुकता है, जिस किनारे से जाकर टकराता है, भगवान को छोड़ भला कौन जानता है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'जीवन धारा में बहता हुआ व्यक्ति बुद्धि-बल से काम ले, तो वह उचित किनारा पकड़ लेता है। उसका जीवन ऊपर उठ जाता है। अन्यथा, तेज धार में बहकर फिर क्या जीवन पाया जा सकता है! जिसे अवसर मिलता है, वह लाभ उठा पाता है, वही कारगर होता है। ऐसा व्यक्ति सफल बनता है। उसी का जीवन उजागर होता है।' वह बोले—'बेटी, मुझे फिल्मी दुनिया का तो ज्ञान नहीं, शायद आज तक कोई चित्र भी नहीं देखा; परन्तु इतना सुना है कि वहाँ अभिनेता और अभिनेत्रियों को रुपया खूब मिलता हैं। वहाँ पैसा पानी की तरह बहता हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु वे सभी पैसा प्राप्त करने वाले मात्र लाखों रुपया पाकर भी नंगे रहते हैं। वे बहुव्यसनी बन जाते हैं। और रुपया प्रायः यही सिखाता है। दुर्व्यसनों में ही इस इन्सान को डाल देता है।'

कमला बोली—'रुपया जाता है, तो साथ में जाने के लिए अपना रास्ता भी बना लाता है।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'रुपये का प्रभाव और स्वभाव ही आसुरी है। मादकता से भरा है।'

कमला ने हँस कर कहा—'और सभी को इस रुपये की आवश्यकता है। इसके बगैर सभी का कारवाँ रुका रहता है।' वह बोली—'रुपया है, तो समाज में प्रतिष्ठा है। इन्सान, इन्सान है। पैसा नहीं, तो वह चोर और हैवान समझा जाता है।'

ज्ञाननाथजी ने मानो तड़प कहा—'पैसे रूपी दर्पण में ही इस जन-समाज ने अपना मुँह देखना सीख लिया है।'

उसी समय कुछ व्यक्ति वहाँ आये। उनमें लतीफ साहब भी आये। वे चुनाव में पहिले ही सफल हो गये थे। जो व्यक्ति उनके सामने खड़ा हुआ, वह बाद में बैठ गया था। इसलिए वे निश्चिन्त थे। जब उन कतिपय व्यक्तियों के साथ उन्होंने ज्ञाननाथजी के कमरे में प्रवेश किया, छूटते ही कहा—'वाह, वाह! बाप-बेटी यहाँ बैठे बात कर रहे हैं और वहाँ पर लोग सैकड़ों की तादाद में परिणाम सुनने की बाट जोह रहे हैं। वे लोग धूप सेंक रहे हैं। जाने कितने लोग फूल-मालायें तक साथ ले आये हैं।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'भाई, वहाँ तो तुम्हारा काम है, मेरा या कमला का नहीं। वोटों को गिनते समय बैठना हमारे बस का नहीं।'

लतीफ साहब बोले—'वोट तो गिने जा रहे हैं। मैंने कल ही कहा, कमला बिटिया की जीत के चान्स सौ फी सदी हैं।' उन्होंने कहा—'जो पेटी मेरे सामने खोली गयी, वही जीत के लिये काफी है। अभी दो बक्स तुम्हारे और दो रमाकान्त के खोले गये हैं।'

उस समय नगर कांग्रेस के अध्यक्ष भी साथ थे। वे मुँह से सिगरेट लगाये फर्र-फर्र धुआँ छोड़ रहे थे। मुँह में रखा हुआ पान भी चबाते जाते थे। वे शायद पान अधिक खाते, मुँह में सामने के दाँत पीले पड़े हुए थे। फिर भी वे जँचते थे। शेरवानी और चुस्त पाजामा पहिने हुए, वे लगते थे कि कोई नेता हैं, बड़े आदमी हैं।'

कमला ने उनकी ओर देखकर कहा—'तो चाय तैयार कराऊँ या लस्सी ?'

उन्होंने कहा—'नहीं, नहीं, अभी चाय पी थी।'

लतीफ साहब ने कहा—'और सरला बिटिया कहाँ है ?'

कमला ने कहा—'हवाई अड्डे गयी है। एक राजा साहब और उनकी कुमारियाँ आ रही हैं। वे उसकी सहेली हैं।'

लतीफ साहब ने कहा—'अच्छा, अच्छा, अब वह बिटिया बड़ी हो गयी है। बड़े आदमियों में उठने-बैठने लगी है।'

कमला ने कहा—'आप की तो बिटिया है। औलाद बाप से बड़ी बनकर भी क्या बड़ी बन जाती है ?'

लतीफ साहब ने कहा—'हाँ, हाँ, उस पर खुदा की नियामत है। उसने अच्छा आर्ट पाया है।'

कांग्रेस अध्यक्ष बोले—'इस परिणाम के बाद एक जलसा भी होगा। सरला बिटिया से तब नृत्य और गाने के लिये कहा जायगा।'

लतीफ साहब बोले—'भई, अपनी चीज होगी। कहा क्या जायगा ! उसे खुद खयाल रहेगा।'

उसी समय पण्डित ज्ञाननाथ ने कुरता पहन लिया। गले में खद्दर का दुपट्टा और सिर पर गांधी टोपी। उन्होंने कमला से उठने को कहा।

कमला ने कहा—'मैं वहाँ क्या करूँगी ! गयी तो अधिक देर न रह सकूँगी ।'

अध्यक्ष ने कहा—'लोग तुम्हारा स्वागत करेंगे । सम्भव है, जलूस भी निकालेंगे ।' वह बोले—'जिस इलाके का अभी बक्स खुला, वह उस क्षेत्र का था कि जहाँ पंजाबी अधिक रहते हैं । बक्स ऊपर तक भरा था ।'

इतना सुनते ही, गर्व के साथ ज्ञाननाथ जी ने कहा—'पंजाब सदा देश के साथ रहा है । पंजाब का बलिदान ऊँचा रहा है । जो लोग पंजाबियों को कांग्रेस के विरुद्ध बताते हैं, उन्होंने न पंजाब का पानी पिया, न पंजाब के वास्तविक रूप का दर्शन किया । देश का इतिहास पंजाब का इतिहास है और पंजाब का इतिहास भारत देश का इतिहास है ।'

कांग्रेस अध्यक्ष ने कहा—'मैं मानता हूँ ।'

'और आप यह भी मानिये कि अपने इस दुर्दिन-काल में भी पंजाब का युवक देश का साथ दे रहा है । युद्ध में लड़ रहा है । देश की प्रगति के पथ पर अग्रिम-पंक्ति में खड़ा है ।'

अध्यक्ष ने कहा—'निःसन्देह !'

लतीफ साहब ने हँस कर कहा—'पण्डितजी आप बूढ़े तो हो गये, परन्तु पंजाब का जोश अब भी आपके मुँह पर झलक आता है ।'

पण्डितजी ने कहा—'भाई, पंजाब की यही शान है । उसकी धरती से हमें यही मिला है । धरती माता के स्तनों का दूध हमें कम नहीं मिला । वही दूध अभी काम देता है ।'

लतीफ साहब बोले—'बेशक ! बेशक !'

मकान छोड़ कर सभी बाहर खड़ी हुई लतीफ साहब की गाड़ी में बैठ गये । वे उस स्थान की ओर चले कि जहाँ डिप्टी कमिश्नर के नेतृत्व में वोट गिने जा रहे थे । जब वे वहाँ पहुँचे, तो आदमियों की भीड़ बेशुमार थी । पुलिस बरबस ही रोक पा रही थी । वे सब अन्दर गये । सुना गया कि कमला के वोट रमाकान्त से पाँच सौ अधिक हो गये । किन्तु अभी कई बक्स गिनने बाकी थे । बाहर दोनों पार्टियों के व्यक्ति शोर मचा रहे थे । दोनों ही अपने पक्ष को प्रबल बता रहे थे । उस अवस्था में जब कमला देर तक बैठी रही, तो उसने पिता से कहा—'मुझे जरूरी काम है । जाना है ।'

पण्डितजी बोले—'इससे भी जरूरी काम ?'

कमला ने कहा—'हाँ, इससे भी श्रेष्ठ !' वह बोली—'मैं जल्दी लौट आऊँगी। जिस जगह मैं जा रही हूँ, वहाँ कल नहीं जा सकती।'

पण्डित जी ने कहा—'अच्छा, जाओ। जल्दी आना। प्रतीक्षा न कराना।'

कमला उस स्थान के दूसरे द्वार से बाहर निकल गयी। उसे गये देर हो गयी। जब घड़ी ने तीन बजाये, तो उसके बाद ही, वहाँ सरला आई। उसके साथ राजा साहब की कुमारियाँ! उनको देख कर लतीफ साहब उठे—'बेटी, आप ?'

सरला ने उनका परिचय दिया। कुर्सियाँ आईं वे कुमारियाँ बैठ गयीं।

सरला ने कहा—'चाचा जी, अब कितनी देर है ?'

लतीफ साहब बोले—'बस, बेटी ! खेल खत्म है ! तीन हजार से ऊपर कमला रानी अपने विरोधी से वोट अधिक पा चुकी हैं। रमाकांत का एक बक्स अभी बाकी है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'तुम कमला को लाओ। उसे देखो।'

सरला ने कहा—'जीजी यहाँ नहीं हैं ? कहाँ हैं ?'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'अपने काम से गयी है। देर से गयी है।'

लतीफ साहब ने कहा—'कमला का आना जरूरी है।'

सरला ने कहा—'मैं जाती हूँ। अभी आती हूँ।' उसने राजकुमारियों की ओर देखकर कहा—'तुम बैठो। मैं आती हूँ। जीजी को लाती हूँ। मैं जानती हूँ वे कहाँ हैं। एक कोढ़ का मरीज और तपेदिक का रोगी आज कल जीजी के हाथों से अपनी सेवा करा रहा है। निराश्रित, दीन और पीड़ितों की सेवा करना ही जीजी का काम है।'

राजा साहब की बड़ी लड़की ने कहा—'सचमुच !'

सरला ने कहा—'सचमुच !'

वह कुमारी खड़ी हुई और बोली—'मैं भी चलूँगी। तुम्हारी जीजी को अपने कर्म-क्षेत्र में ही देखूँगी।'

छोटी कुमारी ने कहा—'मैं भी चलूँगी।'

सरला ने कहा—'चलो।'

तीनों लड़कियाँ चलीं वे भीड़ के समक्ष पहुँचीं, तो जैसे लोगों की आँखें

चौंधियाँ गयीं। मानो आसमान से तीन परियाँ उतर आईं। भीड़ स्वतः ही उन्हें रास्ता देने के लिए हट गयी। वे गाड़ी में जा बैठीं। जब वह गाड़ी नगर में प्रवेश करके एक मकान के सामने पहुँचीं, तो उस जीर्ण मकान को देख, बड़ी कुमारी ने कहा—'पुराना मकान है। गिरने वाला है।' सरला ने कहा—'दीन और दरिद्र ऐसा भी नहीं पाता। विवशता में आदमी मौत का भी सहारा लेता है।'

अन्दर जाकर सभी ने देखा कि कमला रोगी के घाव धो रही है। सरला ने कहा—'जीजी, तुम यहाँ हो, लोग तुम्हारी प्रतीक्षा में हैं। ये राजकुमारियाँ भी तुमसे मिलने आई हैं।'

कमला ने उन सब की ओर बिना देखे ही कहा—'बस, मेरा काम समाप्त हो गया।' तभी वह उठी और हाथ धोकर जब बाहर आई, तो उन कुमारियों को देखा, मुसकरा दी।

बड़ी राजकुमारी ने कहा—'बहिन जी, आप चुनाव में विजयी हुईं, हमारी भी आपको बधाई है।'

कमला ने उस कुमारी को गले लगा लिया। छोटी कुमारी को भी पकड़ लिया।

सरला ने कहा—'जीजी, अब मिठाई लूँगी।'

सुनकर, तब भी कमला ने हँस दिया।

बड़ी कुमारी ने कहा—'आप के दर्शन किये, तो सुख मिला!' वह बोली—इस रोगी को क्या रोग है? क्या तपेदिक? कोढ़?'

कमला ने कहा—'हाँ, बहिन! इसे कोढ़ भी है, तपेदिक भी है। एक शब्द में कहूँ तो मौत का रोग है।'

कुमारी बोली—'सचमुच! बड़ी दीनता है। बेचारा गरीब है।'

कमला ने कुमारी की ओर देखकर कहा—'इस देश में अधिकांश का यही हाल है। देश में दीनता है।'

सरला ने व्यस्त भाव में कहा—'जीजी, अब चलो। जल्दी चलो।'

उसी समय कमला ने रोगी की ओर देखा और कहा—'अच्छा भाई, अब जाती हूँ। कल आऊँगी। तुम्हारी औषधि भी लाऊँगी।' उसने बीमार की

पत्नी से कहा—'बहिन, चिन्ता मत करो। सेवा करो। तुम्हारा पति है। तुम्हारा सोहाग है।'

पत्नी ने कमला के पैर पकड़ लिये—'तुम देवी हो!'

कमला ने कहा—'न, न, मेरा यही काम है।'

वह चल दी। सभी फिर वहाँ पहुँच गये कि जहाँ वोटों का निर्णय हो चुका था। कमला को देखते ही जनता ने घेर लिया। उसे मोटर से नहीं उतरने दिया। लोगों ने कमला के गले में हार डालने से साथ सरला और राजकुमारियों के गले भी हारों से भर दिये। मानों उन रूप की परियों का स्वागत करना सभी को अभीष्ट था। उसी समय कमला ने दूर से देखा कि उसके पिता, कांग्रेस अध्यक्ष और लतीफ साहब को भी लोगों ने फूल मालाओं से लाद दिया था।

यों जलूस बन गया। चल दिया। 'भारत माता की जय', 'महात्मा गांधी' की जय से आकाश गूंज उठा। उस समय लोगों में एक नया ही उल्लास फूट पड़ता हुआ दिखायी दिया—अनोखा और अनुपम!

: ३५ :

अवसर की बात थी कि जिस दिन कमला को लन्दन से विनोद कुमार का पत्र मिला, तो उसी डाक से कमला और सरला के नाम रूस से अशफाक मियाँ का पत्र प्राप्त हुआ। पत्र के साथ अशफाक ने अपनी वह कविता पुस्तक भी भेजी, जो रूस के एक प्रकाशक ने उसकी कुछ कविताओं का अनुवाद रूसी भाषा में छापा था। उन्हीं कविताओं का अंग्रेजी संस्करण भी उसने भेजा था। अशफाक ने लिखा कि उस एक पुस्तक से उसे बीस हजार रुपया मिल गया।

कमला ने हँस कर कहा—'अशफाक मियाँ बनिया भी हैं। जितना खर्च किया, वह वसूल कर लिया।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'अशफाक की उर्दू कविता आग उगलती है। मजदूर का सही और पूरा चित्रण करती है।'

सरला ने बोली—'तो यों कहो, अशफाक मियाँ का साहित्य पर भी अधिकार है। इसका मुझे पता नहीं था।'

आश्चर्य से ज्ञाननाथ जी बोले—'यह तो उसका बचपन का शौक था।'

कमला ने कहा—'पिताजी, साहित्य का शौक सबसे बड़ा है। सच्चे साहित्य की रचना करने वाला निष्कपट होता है। उसका हृदय भी उदार होता है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'निःसन्देह ऐसा व्यक्ति मनुष्यता और उसकी आत्मा के दर्शन करना चाहता है। साहित्य का सृजक इन्सान की पीड़ा को खोजता है।'

साँस भरकर सरला बोली—'साहित्यकार दुनिया का अनुपम और महान व्यक्ति होता है।'

'वह समाज का प्रणेता होता है।' कमला ने कहा।

'समाज का उद्धारक और पथ-प्रदर्शक।' ज्ञाननाथ जी ने उसमें और जोड़ा।

सरला बोली—' मैं इस पुस्तक को पढ़ूँगी।'

कमला बोली—'तुझे पत्र दिया है, पुस्तक की प्राप्ति लिख देना।' उसने कहा—'अशफाक मियाँ अभी नहीं आयेंगे। पहिले लिखा था कि आ रहे हैं, पर अब लिखा है कि रूसी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'अशफाक मियाँ उन्नति-पथ की ओर जा रहे हैं।'

कमला बोली—'उन्नतिशील व्यक्ति इसी प्रकार रास्ता खोजते हैं। कर्मण्य आदमी के भगवान भी सहायक होते हैं।'

उसी समय राजा साहब का आदमी आया और बोला—'मैं गाड़ी ले आया हूँ।' उस दिन पण्डित ज्ञाननाथ और उनकी पुत्रियों का राजा साहब के यहाँ भोजन था। यह पहिले दिन ही निश्चय हो गया था। कुछ अन्य विशिष्ट व्यक्तियों का भी वहाँ निमन्त्रण था।

पण्डित ज्ञाननाथ और उनकी पुत्रियाँ जब वहाँ पहुँचीं, तो राजा साहब ने उनका द्वार पर आकर स्वागत किया। वह पण्डितजी का हाथ पकड़कर उस कमरे में ले गये कि जहाँ पहिले ही कुछ अभ्यागत आये हुए थे। उन्हीं में भारतीय सरकार के गृह-मन्त्री थे। पण्डितजी की अपेक्षा उनकी पुत्रियाँ गृह-

मन्त्री से अधिक परिचित थीं। वे दोनों उनके समीप गयीं। मन्त्रीजी ने चुनाव-विजय पर बधाई दी। उत्तर में कमला ने कहा—'आपका आशीष था।'

उसी समय मन्त्री महोदय ने कहा—'कमला देवी, भारतीय सरकार तुम्हें योरोप भी भेजना चाहती है। भारत से सद्भावना मिशन अगले मास जायेगा। जानेवालों में तुम्हारा नाम भी रखा गया है। इसी सप्ताह तुम्हारे पास सूचना पहुँच जायगी। सभी व्यय सरकार देगी।'

कमला ने कहा—'अब तो मैं आपके हाथों में आ गयी हूँ। कहीं भी जा सकती हूँ।'

उसी समय गृह-मंत्री ने सरला की ओर देखा और कहा—'तुम्हारा नृत्य और गाना अभी भी याद आता है।'

सरला ने सुना और मुस्करा दिया।

राजा साहब की पुत्रियाँ भी वहाँ आ गयी थीं। वे भी गृह-मंत्री के पास बैठ गयीं। प्रायः सभी मेहमान आ गये। उसी समय राजकुमारी ने सरला की ओर देखा और कहा—'तुम्हारी बिना आज्ञा के मैंने दुष्टता की है। पिताजी को आश्वासन दे दिया है कि तुम्हारा नृत्य और संगीत होगा।'

सरला ने उलाहना देते हुए कहा—'तुम्हें यही करना था। मुझे पता था।'

राजकुमारी ने कहा—'यह अधिकार मुझे बरबस ही कम से प्राप्त हो गया है। वाद्य-यन्त्र आ गये हैं। बजाने वाले भी पहुँच गये हैं।'

सरला ने सुना और मुसकरा दिया।

तभी राजकुमारी ने राजा साहब की ओर देखा और कहा—'सरला बहिन तैयार हैं। आरम्भ किया जा सकता है।'

सरला ने कहा—'घुँघरू हैं?'

राजा साहब ने हँसकर कहा—'उन्हें भी मँगा लिया गया है।'

तब कटाक्ष भाव से सरला ने उनकी ओर देखा और अपने श्वेत दाँतों से हँस दिया।

कमरे में साजिन्दे आ गये। साजों का स्वर गूँजने लगा, मेहमानों के समक्ष उस बड़े कमरे में नृत्य-गान के लिए जो स्थान नियुक्त किया गया, वहीं पर पहुँचकर सरला ने अपने पैरों में घुँघरू बाँध लिये। बिछे हुए

ईरानी कालीनों से कमरे का फर्श शोभायमान था। विद्युत् का प्रकाश सभी ओर था। कमरे के चारों खूँटों पर अगरदान जल रहे थे। उनसे महँक उठ रही थी। मेहमानों में पान-सिगरेट का दौर चल पड़ा। उन मेहमानों में कुछ नारियाँ थीं, कुछ पुरुष थे। भारतीय सरकार के कई मन्त्री भी वहाँ उपस्थित थे। कई अभ्यागत विदेशी थे। उन सभी के लिये नीचे फर्श पर बैठने का प्रबन्ध था। पार्टी का आयोजन दूसरे कमरे में था। मनसदों के सहारे मेहमान बैठे हुए थे। राजा साहब बार-बार उठकर मेहमानों का स्वागत कर रहे थे।

उसी समय तबले पर थाप पड़ी और सरला ने खड़े होकर नृत्य आरंभ किया। नृत्य दरबारी था। किन्तु वन्दना का रूपक उस नृत्य का पहिला चरण था। सरला ने अपनी साड़ी का छोर कमर में बाँध लिया था। महाराष्ट्रीय ढंग से साड़ी की फेंट चढ़ा ली थी। तभी उसने वन्दना आरम्भ की। वह समाप्त हुई थी कि उसी के साथ वह दरबारी नृत्य पर आ गयी। उपस्थित जन एकाग्र होकर उसकी भाव मुद्रा और शरीर को मोड़ने की कला का प्रदर्शन देख रहे थे। राजा साहब बीच-बीच में वाह-वाह कर रहे थे। गृहमन्त्री भी साधुवाद देते जा रहे थे। लगभग आध घण्टे के नृत्य के बाद, सरला ने साथ में गाना भी आरम्भ किया। वह सूरदास का एक पद था। जिसका अर्थ था, मैं अन्धा, जग अन्धा; है राह दूर; घिरी अँधियारी; और निपट अकेला; तुम्हीं पकड़ लो बाँह हमारी,—दो, कृष्ण मुरारी!' पद छोटा था, परन्तु उस पद से भाव बताने में सरला ने लगभग बीस मिनट लगा दिये। मानो उसने पद के एक-एक शब्द की; उसकी व्याख्या की! जब वह पद समाप्त हुआ तो राजा साहब के पास बैठे हुए एक मन्त्री ने कहा—'बहुत सुन्दर! तुम्हें बधाई सरला देवी! हमारे मानस की सोती हुई भावना को जगा दिया।'

राजा साहब वैसे स्वभाव से मजाकिया थे, परन्तु थे कोमलता के प्रतीक! तुरन्त बोले—'सरला देवी, तुमने हमें अनुगृहीत किया।' तभी उन्होंने कहा—'आज यह प्रोग्राम नहीं था! परन्तु सरला देवी से कहा गया, तो इन्होंने भावनार्थ तुरन्त स्वीकार कर लिया।'

उसके उपरान्त मेहमान दूसरे कमरे में ले जाये गये। वहाँ खान-पान

का प्रबन्ध था उस समय गृहमन्त्री के निकट पण्डित ज्ञाननाथ थे, दूसरी ओर राजा साहब थे, स्पष्टतः उस कार्यक्रम का आयोजन राजा साहब ने गृहमन्त्री के स्वागत में किया था। खान-पान भारतीय ढंग पर था। सभी निरामिष, परन्तु उत्कृष्ट था। काँटे, चम्मच का उस भोजन में भी उपयोग नहीं था। जब भोजन समाप्त हुआ और मेहमान बिदा हो चले, तो बाद में पण्डित ज्ञाननाथ जी और उनकी पुत्रियों को बिदा देते हुए, राजा साहब ने कहा—'पण्डितजी, आप भाग्यशाली हैं। पुत्रियों के पिता हैं।'

पण्डितजी ने कहा—'यह भी ईश्वर की कृपा है।'

'कमला देवी चुनाव में सफल हुईं और योरोप के दौरे पर जायेंगी, इतना जानकर मैं प्रसन्न हुआ।' राजा साहब बोले—'आज के आयोजन में सरला देवी ने जिन अनुपम प्राणों का संचार किया, इसे मैं स्मरण रखूँगा।'

ज्ञाननाथजी बोले—'सरला आपकी पुत्री है, आपको अधिकार है।'

राजा साहब बोले—'सरला देवी इसी सप्ताह बम्बई जा रही हैं, सुना है, आप भी साथ जायेंगे। मेरा निवेदन है, आप मेरे स्थान पर ठहरें। इस प्रार्थना की रक्षा अवश्य करें।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'जैसी आपकी इच्छा! मैं जाऊँगा, अभी इसका निश्चय नहीं है।'

तदुपरान्त वे सब गाड़ी में बैठ लिये। राजा साहब ने कहा—'अच्छा, अब बम्बई में आपके दर्शन करूँगा। और कल दिल्ली छोड़ दूँगा।'

ज्ञाननाथजी ने हाथ जोड़े, नमस्कार किया। राजा साहब और उनकी पुत्रियों ने सबको बिदा किया। जब वे सब घर लौटे, तो रात के बारह बजे थे। अपने कमरे में जाकर ज्ञाननाथजी बोले—'इस युग में रुपया ही पुजता है। रुपया ही सफल बनता है।'

कमला ने कहा—'राजा साहब ने आज की दावत में काफी रुपया व्यय किया। भोजन राजकीय ठाट का था।'

ज्ञाननाथजी बोले—'जो कुछ था, अर्थ पूर्ण था। गृह मन्त्री को प्रसन्न करने के लिये था।'

कमला ने कहा—'सर्वत्र यही होता है। इसी प्रकार संसार का काम चलता है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'बड़ा आदमी जीवन के बड़े झरोखे से झाँकता है। ऊँचाई की ओर देखता है। ऊँचे व्यक्तियों के हाथ पकड़ता है। अपने ऊँचे स्वार्थ को सिद्ध करता है।'

सरला अपने पलंग पर पहुँच गयी थी। वह पड़ी थी। तभी कमला वहाँ गयी। वह सरला को देखकर बोली—'अरी, कपड़े उतार!'

किन्तु सरला ने अपने मन की बात लिए हुए कहा—'तो जीजी, अब तुम भी बाहर जाओगी!'

कमला ने अपनी धोती बदली। वह खूँटी पर टाँग दी। जब वह दूसरी धोती बदलने लगी, तो तभी सरला की बात सुनी और अपनी धोती की गाँठ बाँधती हुई बोली—'जाऊँगी भी, तो क्या दस-पाँच महीने में आऊँगी।'

सरला ने कहा—'रूस भी जाओगी?'

कमला बोली—'अवसर मिला, तो जाऊँगी।'

सरला ने साँस भरी। वह उठकर खड़ी हो गयी। उसने भी अपनी साड़ी और ब्लाऊज बदल दिये। दूसरे पहन लिये। वह जब फिर बिस्तर पर पड़ी तो बोली—'जीजी, अब मुझे लगता है कि हमारा जीवन बदल रहा है। दूर-दूर हो रहा है। वहाँ विनोदबाबू मिलेंगे?'

कमला बोली—'जाऊँगी, तो सभी से मिलना का प्रयत्न करूँगी।' उसने कहा—'और तू जीवन बदलने की बात कहती है, भला यह भी अचरज की बात है, कोई! कोई साथ नहीं रहता। साथ नहीं जाता। रास्ते सभी के बदलते हैं। अलग-अलग चलते हैं।'

सरला बोली—'जीजी, मेरी इच्छा थी कि हम दोनों बहिनें साथ रहतीं!'

कमला ने सरला की ओर देखा और कहा—'तो तू यह कैसे समझ रही है कि मैं दूर हो रही हूँ। अरी, पगली! महीने-दो-महीनों के लिये जा रही हूँ। और अभी क्या निश्चय है कि मैं चली ही जा रही हूँ।'

सरला बोली—'गृहमन्त्री की बात थी। बिना निश्चय किये उनके मुँह से थोड़े ही निकल सकती थी।'

उदास भाव में कमला ने कहा—'देखो! सरकार का पत्र आने दो!'

सरला ने कहा—'मैं परसों बम्बई चली जाऊँगी।'

कमला ने कह दिया—'अच्छा!'

सरला फिर बोली—'और तुम मेरे पीछे जाओगी। बम्बई होकर जाओगी ?'

कमला ने नींद में भरते हुए कह दिया—'शायद वहीं होते हुए !'

चुनाव के दूसरे दिन ही रामू नौकर चला गया था। दूसरा काम करता था। रामू जब घर गया, तो वेतन के अतिरिक्त कमला ने उसे सौ रुपया इनाम दिया। साथ ही कह दिया कि वह अपनी दुलहन के लिए कोई चीज बना लेगा। उसी समय सरला ने रामू को एक साड़ी और ब्लाऊज दी। वह भी सौ रुपये से कम कोई नहीं थे। नये थे। वह एक मास के लिये गया था।

तीसरे दिन सरला और ज्ञाननाथ बम्बई चल दिये। कमला उन्हें गाड़ी में बैठा आई। उसका भी बाहर जाना निश्चय हो गया। वह समाचार अगले दिन पत्रों में निकल गया। कितने व्यक्ति जायेंगे, उन सबका नाम भी आ गया। उनमें पाँच महिला थीं, पाँच आदमी। सभी पुराने कांग्रेसी थे। दो प्रौढ़ महिला भी थीं। चौथे दिन कमला के पास सरकार का पत्र आ गया। तभी कमला ने अपनी संस्था के अध्यक्ष को पत्र दिया। उसने संस्था से दो मास का अवकाश ले लिया। संस्था का जो हिसाब उसके पास था, वह भी सौंप दिया।

जब बहिन और पिता बम्बई चले गये, तो कमला को अपने प्रति सोचने का अवसर मिला। कुछ दिन पूर्व नगर में जिस चुनाव के कारण अधिक सरगर्मी थी, उसका निशान भी मिट गया। मानो सभी कुछ यथावत् हो गया। नदी में बाढ़ आई, कुछ प्रवाहित हुआ। परन्तु जब बाढ़ उतरी तो सभी कुछ मौन और शान्त दिखायी दिया। विनोदकुमार का जो पत्र कमला को मिला, तो उसका उत्तर उसने अकेलेपन में दिया। अपने पत्र में विनोद-बाबू ने लिखा, अजीब प्रकार का जीवन है, यह ! लगता है कि इस भौतिक-जगत् के सभी तत्व,—यह मनुष्य-नारी सभी दौड़ रहे हैं। नहीं जानता कि लोग क्या पाने के लिये भाग रहे हैं। क्या खोज रहे हैं। मुझे दिखता है, कि लोग जिस मानसिक भूख को मिटाने के लिए प्रयत्नशील हैं, वह मिटती नहीं, बढ़ती है। इस दुनिया के बाजार में अशान्ति खरीदी जा रही है। पर क्यों ? किस लिए ? उसने लिखा, यहीं पर मेरा एक मित्र

था। रात में हम दोनों मिले, बोले। प्रातः हुआ, तो सुना कि वह मर गया। भला ऐसा सन्दिग्ध जीवन! इतना हीन! इतना अल्प! और फिर भी हम धन पाना चाहते हैं, सुन्दर स्त्री का उपभोग पसन्द करते हैं। ऐ कमला रानी, मैं अपने हृदय की वेदना नहीं दिखा पाता। जिस अशांति की आँधी में मैं उड़ा जा रहा हूँ, उसकी असहनीयता भी नहीं समझा पाता।

लेकिन कमला ने अपने पत्र में बहुत कुछ लिखा। चुनाव विजय और अपनी योरोप यात्रा की बात लिखने के बाद उसने लिखा कि मनुष्य प्रायः ऐसी परिस्थितियों में भी घिर जाता है कि जब वह जीवन की सफलता पाकर भी शान्त नहीं रहता। वह तब दार्शनिक बनता है। वह जीवन के भौतिक तत्वों को अनुपयोगी और हीन मानता है। किन्तु मेरा मत यह है कि आखिर इस परिधि को छोड़ हमारी और सीमा क्या है? क्या सन्यास? आत्म-सत्य की खोज? मैं इसे भी अनुकरणीय मानती हूँ। लेकिन, प्रायः एक प्रश्न मेरे सामने आता है। मैंने बहिन सरला का पक्ष लेकर पिता जी से भी यही कहा कि सांसारिक पदार्थ और उनके भोगों से अरुचि क्यों? व्यक्ति का व्यक्तित्व यह तो नहीं कहता कि संसार से मुँह मोड़ लो। संसार में आये हो, तो संसार को कुछ दो, कुछ संसार से लो। इस लेन-देन के व्यापार में ही व्यक्तित्व की छाप है। आदमी का महत्व है। कौन क्या देता है, क्या लेता है। यह दृष्टिकोण की बात है। अपने जीवन-अध्ययन की बात है। मेरा आज भी मत यह है कि जीवन विरक्ति के लिए नहीं है। संन्यास ग्रहण करने के लिए नहीं। यह लड़ने के लिये है। सारभूत बनने के लिए! इसलिए अपनी चेतना, अपनी अर्चना विश्व के चरणों में चढ़ा देना ही पुरुष का प्रधान कर्तव्य है। नारी बच्चे को जन्म देती है। क्या जाने कि राम देती है, या रावण! यह तो उसकी गर्भ स्थिति की धारणा का प्रश्न है। उस नारी के संस्कारों का प्रश्न! नारी अपने गर्भ से हीरा भी उगलती है, कंकड़ भी। यही पुरुष की अवस्था है। वह कृष्ण भी बनता है, कंस भी! इस दुनिया में दोनों का उपयोग है। दोनों को ग्रहण करने वाले व्यक्ति हैं। अपनी इच्छा के व्यक्ति सभी पाते हैं।

पत्र के अन्त में उसने लिखा, आज मेरे भी मन की अवस्था ठीक नहीं है। सरला और पिता जी बम्बई गये हैं। अकेली हूँ। मैं स्पष्ट देखती हूँ कि मेरा जीवन भी अब सार्वजनिक बन गया है। जिस रास्ते पर मैं चल पड़ी हूँ,

उस पर मैंने कुछ पाया है। कुछ खोजा है। चाहती हूँ पाये हुए इस जीवन सौभाग्य को मैं अनजाने में खो न दूँ। मैं उसे सहेज कर रखूँ! और यह है, समाज-सेवा; उससे प्राप्त हुआ आशीष! सोचती हूँ, यही मेरी निधि है।

माता जी प्रसन्न हैं। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना।

तुम्हारी ही, कमला

: ३६ :

सार्वजनिक जीवन में रहने वाला व्यक्ति चाहे वह कितना ही विशिष्ट और योग्य क्यों न हो, लांछित और अपमानित अवश्य किया जाता है। और यदि वह नारी हो, युवा हो, तो उसके चरित्र पर प्रहार करना लोगों को और भला लगता है। चुनाव के बाद, कमला का नाम प्रायः सभी के सामने आ गया। उसका काम भी आ गया। किन्तु जहाँ उसे साधुवाद देने वाले व्यक्ति थे, उसके चरित्र पर प्रहार करने वाले भी कम नहीं थे। इस कार्य में रमाकान्त का विशेष हाथ था। वह व्यक्ति कितने निचले धरातल पर उतर आया, इसका सबसे अधिक ज्वलन्त उदाहरण यह था कि एक बार उसने भरी सभा में कह दिया, जिस कमला को लोग चरित्र भ्रष्ट समझते हैं, उसका धारा सभा में जाने से कोई हित नहीं हो सकता। उसकी दूसरी बहिन नाचती और गाती है। वह इसी प्रकार रुपया उपार्जित करती है। किन्तु चुनाव के बाद भी, रमाकान्त के साथी कमला पर छींटे उछालते। उसके शत्रु पैदा करते। वे सब इस बात का प्रचार करते कि एक ओछी नारी को समाज की सिरमौर बनाया है। उसके मुँह से रामायण और गीता का पाठ सुनना लोगों ने पसन्द किया है।

कमला इन बातों को सुनती और मन के अन्धेरे में उतार लेती। वह अनुभव करती कि मनुष्य ईर्षालु है। दम्भी है। पुरुष ने सदा ही नारी को पथ-भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया है। कमला अनुभव करती थी, कि रमाकान्त अब भी उसे पाना चाहता है। मेल चाहता है। उसकी कटुता का इसके

अतिरिक्त और अर्थ क्या ? परन्तु कमला पुरानी बातों को भूल चुकी थी। उसने एक लम्बा रास्ता पार कर लिया था। इसलिए कहाँ से चली, अब यह देखने की उसे आवश्यकता नहीं थी। योरोप जाने वाले सद्भावना मिशन की जब तिथी तय हो गयी, तो कमला ने यह सूचना पिता जी और सरला को दे दी। उसने बम्बई पहुँचने का समय भी लिख दिया, दिन लिख दिया। यात्रा पर जाने की तिथी से पूर्व उसने अपनी सभी तैयारी पूर्ण कर ली। वह दिन आ गया और कि जब वह अपने मिशन के साथ हवाई जहाज से बम्बई पहुँची, वहाँ हवाई अड्डे पर पिता और बहिन के साथ राजा साहब का परिवार भी था। वह मिशन उस दिन बम्बई ठहरा। कमला को राजा साहब के यहाँ ठहरने के लिये विवश किया गया। जब वह उस शानदार बँगले पर पहुँची, तो रानी और राजकुमारियों ने इस प्रकार कमला का स्वागत किया, मानो वह उनके लिए अपूर्व थी—उनके समक्ष श्रद्धा करने योग्य ! वह दिन कमला का घूमने में बीता। रात आ गयी। दोनों बहिनें एक पृथक कमरे में सोने गयीं। उसी समय कमला ने कहा—'मैं रूस भी जाऊँगी। अशफाक मियां से मिलूँगी।

सरला ने कहा—'तुमने पत्र दिया होगा ? लिखा होगा ?'

कमला ने—'मैंने लिखा। विनोदबाबू और अशफाक मियाँ को पत्र दिये।' वह बोली—'मेरी एक और इच्छा है। दिल्ली में ही तुझसे कहना था। बता तो, तूने अशफाक मियाँ को पत्र दिया ? मैं पूछती हूँ क्या तूने अपने भावी जीवन के विषय में भी कुछ लिखा ?'

सरला ने कहा—'न' जीजी ! मैंने कुछ नहीं लिखा।'

कमला बोली—'मैं सोचती हूँ, यदि पिताजी सहमत हों, तो अशफाक और तेरा जीवन एक धारा में बह सकता है। मिल कर चल सकता है।'

एकाएक सरला ने कहा—'क्या विवाह ?'

'हाँ, बहिन ! विवाह ! अशफाक मुझे हजारों में एक दीखता है। वह न मुसलमान है, न हिन्दू है। वह इन्सान है। इन्सानियत की उपासना करता है। वह इन्सानियत का दीवाना है।'

सरला ने खाँस कर कहा—'जीजी, मुझे यह सम्भव नहीं दीखता। देश

में हवा दूसरी लच रही है। हम स्वतंत्र तो हुए हैं, परन्तु समाज के बन्धन क्या ढीले हुए हैं ?'

कमला ने अपने स्वर में रोष लेकर कहा—'मैं उन बन्धनों को नहीं मानती। तू जानती है, बिनोदबाबू ब्राह्मण नहीं, परन्तु मैं उन्हीं को अपने जीवन का साथी बनाने की बात ले चुकी हूँ।' वह बोली—'देखो सरला! मैं भोग की इच्छा को महत्त्व नहीं देती। परन्तु एक साथी अवश्य पाना चाहती हूँ। ऐसे तो नारी अकेली है। वह कहीं भी बह सकती है। ठगी जा सकती है।'

सरला ने कहा—'जीजी, मेरे मन में भी इस प्रकार के विचार आये और गये हैं। मैं जिस रास्ते पर आ गयी हूँ, इसके लिए अश्फाक मियाँ को उपयुक्त पाती हूँ। लेकिन स्त्री स्वतन्त्र नहीं है। पराधीनता का चाबुक हमारे सिर पर है।'

कमला बोली—'इस विवशता को मैं भी अनुभव करती हूँ, पिताजी सहमत होंगे, इतना मैं मानती हूँ। मैं कहती हूँ, जब हिन्दू मुसलमान की लड़की ले सकते हैं, तो अपनी क्यों नहीं देते। और हमारा तो प्रश्न ही जुदा है। जातिवाद हमारी सीमा से परे हो गया है।' उसने कहा—'यदि विनोद बाबू मेरे जीवन में न आते, वह मेरे द्वारा सेवा सुश्रूषा पाकर मुझे अपनी ओर आकर्षित न करते, तो निश्चय ही, मैं अशफाक को चुन लेती, तेरे लिए किसी और व्यक्ति की तलाश करती।' वह कहने लगी—'सरला, मैं विवाह को जीवन का परम अंग नहीं मानती, इसे परिस्थिति के साथ समझौता मानती हूँ। मैं अनुभव करती हूँ कि नारी हो, या नर, जब एक ही समाज के स्तर पर दोनों रहते हैं, एक दूसरे के प्रति सोचते और अनुभव करते हैं, तो उनका पास-पास रहना भी अनुचित नहीं। विवाह इसी बात का सूचक है। यह न हो, तो सचमुच, बड़ी जहरीली हवा के फैल जाने का भय है। नैतिकता का जन्म इसी हेतु हुआ है।'

सरला बोली—'किन्तु यह नर-नारी का समाज फिर भी अपनी सीमा को लाँघता है।'

सरला ने कहा—'यही दुराग्रह है। बर्बर और क्रूर वासना-पूरित विचारों का प्रदर्शन है। हमें एक स्थान पर टिक जाना अधिक शोभता है।' वह

बोली—'दिन भर का थका पंछी अपने घोंसले में जाता है। अपने साथी से बात करता है। अपने बच्चों के चोंचें मारता है,—उन्हें प्यार करता है।'

सरला हँसी—'जीजी, यही तो ममता है। प्यार है।'

कमला ने कहा—'इस संसार में भला इसके अतिरिक्त और क्या है! सर्वत्र अनुभूति का प्रसार है। और यही हमें अपनी मा से मिला, पिता से मिला।' वह बोली—'हमारे घर न हों, वहाँ पर प्यार और ममता न हो, तो इस नर-नारी का समाज न सेवा को पसन्द करेगा, न आदर्श की पुकार करेगा। वह कोरा जंगली और हिंस्र बना रहेगा। हमने जो कुछ पाया, वह अब दूसरों को देना है। एक शब्द में कहूँ, तो अपने बच्चों को देना है।'

सरला ने कहा—'तो जीजी, तुम बच्चों पर विश्वास करती हो! उनका महत्त्व मानती हो।'

कमला बोली—'अवश्य!' उसने कहा—'अरी पगली इस पाषाण बने मनुष्य को, खूँखार जानवर तक को बच्चा मोह लेता है। गुलाब का फूल भी आकर्षित करता है।' वह कहने लगी—'मैंने ऐसे समाचार पढ़े हैं कि जब हिंस्र पशुओं ने घरों के बच्चे उठा लिये और वे खाने की बजाय उन्हें पाल लिये। यही आदमी की अवस्था है। जिस साँप को काल की जेवड़ी कहा जाता है, वह भी बच्चों को कम काटता है। उनसे प्यार करता है। खेलता है।'

सरला ने साँस भरी और कहा—'जीजी, तुम जानो! जहाँ चाहो, मुझे पटक दो! कोई साथी मिला तो ठीक है, नहीं तो तुम्हारा सहारा लिये लिये मुझे यह जीवन काट देना है। जीविका निर्वाह की मुझे चिन्ता नहीं, उसके लिये मैंने रास्ता पकड़ लिया है, खोज लिया है।'

कमला ने कहा—'इस अवस्था में यह रास्ता भी निरापद नहीं है। यौवनमयी सुन्दर नारी का जीवन सदा खतरे में रहता है। उसके चारों ओर चोर और डाकुओं का घेरा लगता है। तेरा इन राजा साहब की कोठी पर रहना भी क्या अच्छा है? स्वार्थ सब जगह अपना काम करता है।'

सरला बोली—'तुम लौटोगी, तो मैं भी बाहर जाऊँगी। यहाँ पर कुछ लोगों ने मुझे उत्साहित भी किया है।'

कमला ने कहा—'यह अच्छा है।'

उसी समय घड़ी ने टनटन करके प्रातः के चार बजा दिये। कमला ने कहा, 'लो, सबेरा हो गया।'

सरला ने कहा—'बातों में समय निकल गया। और तुम्हें सात बजे हवाई अड्डे पर पहुँचना है। एक घण्टा सो जाओ।'

कमला ने करवट ली। सरला भी मौन बन गयी। परन्तु कमला कुछ देर सो पाई थी कि ६ बजे उठा दी गयी। वह शीघ्रता से तैयार हुई। कोठी के टिफिन-रूम में चाय पीने का प्रबन्ध था। राजा साहब का परिवार आगया। चाय पी गयी। बाहर गाड़ियाँ तैयार थीं, सब चल दिये। हवाई स्टेशन पहुँच कर सरला ने कहा—'जीजी, मैं पत्र की प्रतीक्षा करूँगी।'

जीजी ने कहा—'जरूर, मैं जाते ही पत्र दूँगी।' इतना कहा—कमला ने पिता के चरण छुए। राजा और भाभी को नमस्कार किया और वह जहाज की तरफ चली। उसके साथी पहिले पहुँच चुके थे। जहाज छूट गया वह ऊपर उड़ गया।

घर की ओर जाते हुए सरला ने कहा—'आज जीजी भी चली गयी।'

राजकुमारी बोली—'वह भारत का प्रतिनिधित्व करने गयी हैं। दूसरे देशों से सम्मान पाने।'

सरला बोली—'जीजी ने पिछले दिनों सेवा भी अधिक की। ख्याति की इच्छा नहीं की।'

राजा साहब बोले—'सूर्य को छिपाया नहीं जा सकता।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'मेरा कोई लड़का तो रहा नहीं, इन लड़कियों के द्वारा ही मुझे सन्तोष मिला कि पुत्र से अधिक इन्होंने अपने पौरुष का प्रदर्शन कर दिखाया।'

राजा साहब ने कहा—'आप भाग्य के धनी हैं।'

कोठी पर पहुँच कर सरला ने फिल्म स्टुडियो जाने की तैयारी की। बाद में वह चली गयी। जिस चित्र में उसका अभिनय था, वह एक मात्र प्रधान चित्र था। सरला को चित्र की प्रधान नायिका का पार्ट मिला था। जो नायक उसके साथ काम कर रहा था, वह चित्र-जगत का मँजा हुआ अभिनेता था। सरला ने पहिले भी उसके कई चित्रों को देखा था। नायक-नायिका के उस प्रेमाभिनय में सरला आशा से अधिक सफल रही। चित्र आधा बन चुका था।

कुछ ऐसे दृश्य भी शेष थे, जिन्हें बम्बई से बाहर लिया जाना था। अतएव, एक दिन वह पार्टी बाहर गयी। सरला भी साथ थी। वहीं पर जिन दृश्यों के लेने की आवश्यकता थी, अवसर की बात कि मौसम पूर्णतः अनुरूप था। आसमान में बादल थे। चारों ओर पहाड़ थे। सामने झरना झर रहा था। उसी समय प्रेमिका रूप में, जब प्रेमी ने उसे पा लिया, तो वलवत् उसने कहा—'ऐ रानी! आइयो। हम दोनों प्रकृति के इस विराट सौन्दर्य में खो जायें। हम भी प्रकृति के एक अंग बन जायें।' चारों ओर हरियाली थी। फूल खिल रहे थे। खेत लहरा रहे थे।

तभी प्रेमिका ने कहा—'हम इतने अनुपम नहीं। भाग्य के मालिक नहीं।'

प्रेमी बोला—'न रानी! भाग्य हमारा भी है। हम उसके प्रणेता हैं। ये फूल जो खिलते हैं, खिले हैं, तो अन्त इनका भी है।'

प्रेमिका बोली—'प्यारे, हम बिछुड़ेंगे, तो फिर नहीं मिलेंगे। मिल नहीं सकेंगे।'

प्रेमी ने कहा—'नहीं! हम मिलेंगे। इस जीवन के बाद भी हम दूसरे जीवन को पायेंगे।'

किन्तु प्रेमिका मौन थी। जैसे तटस्थ! स्थिर!

और उसी समय आँधी आई। पेड़ उखड़े। वर्षा हुई। प्रेमी और प्रेमिका जुदे हुए दूर-दूर हो गये।

जिस दिन चित्र के उन दृश्यों का अभिनय करके सरला नगर में आई, तो कोठी पर आकर भी वह उदास थी। मानो उसके बदन में टीस थी। वह पीड़ा से भरी थी। पण्डित ज्ञाननाथ जी उन दिनों गीता के अध्ययन में अधिक रुचि रखते थे, राजा साहब की रानियों और कुमारियों को उपदेश देते थे। दो घण्टा वह इसी काम पर लगाते थे। अवस्था यह हुई उनकी कि उनकी कथा प्रसिद्ध हो गयी। उस मलाबार हिल पर जितनी कोठियाँ थीं, उनकी प्रायः सभी नारियाँ और पुरुष उस कथा में आने लगे। राजा जी की कोठी पर एक मेला लगने लगा। नौकरों का काम बढ़ गया। राजा का कुछ खर्च बढ़ गया। किन्तु उस कथा में पहिले नारी समाज ने पहल की, पुरुषों ने बाद में आना आरम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उस वैभव सम्पन्न समुदाय में पण्डित जी प्रसिद्ध हो गये। वे अनायास ही

मान्य बन गये। अब तो अवस्था यह हुई कि राजा साहब के घर में जो काम होते, उनमें प्रायः पण्डित जी से सलाह ली जाती। वे एक प्रकार से उस घर के बुजुर्ग बन गये।

जब संध्या के समय सरला अपने कमरे में चुप चाप आ पड़ी, उसने नौकरों को भी अपने आने का समाचार नहीं दिया, तो रानी, राजकुमारी तथा पण्डित ज्ञाननाथ को यही पता था कि सरला अभी नहीं आई। परन्तु वह उस दिन पैदल ही आई और सीधी अपने कमरे में जाकर पलंग पर पड़ रही। सन्ध्या के बाद रात आई, तो उसके कमरे में अन्धेरा था। कोठी में उसकी चर्चा थी। चिन्ता भी थी। उसी समय नौकर ने कमरे में जाकर प्रकाश किया, तो सरला को सोती हुई पाया। उसने सभी को इसकी सूचना दी। पण्डित ज्ञाननाथ आये, राजकुमारियाँ आईं। वे सब आकर हँसे। तभी सरला की आँख खुली। वह चकित भाव में उनको देखने लगी।

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'ऐसे आईं कि पता नहीं चला।'

सरला ने कहा—'पिताजी, मैं थकी थी। आज नगर से बाहर गयी थी।'

बड़ी राजकुमारी का नाम प्रमदा था, उसने कहा—'तो बहिन! पता देना था। अब उठो। भोजन करो। तुम्हारी प्रतीक्षा में किसी ने भी नही किया।'

सरला उठ बैठी। खड़ी हो गयी। वह गुसलखाने में मुँह-हाथ धोने चली गयी।

पीछे से ज्ञाननाथ ने राजकुमारी प्रमदा से कहा—'इसने व्यर्थ ही इतना बोझा उठा लिया। मुझे नहीं जँचता कि जो मार्ग इसने पकड़ लिया।'

प्रमदा ने कहा—'पण्डितजी, यह भी अच्छा मार्ग है। पैसा आता है, यश मिलता है।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'हम ब्राह्मणों को पैसा नहीं चाहिए। चलने के लिए सीधा और साफ रास्ता चाहिए।'

राजकुमारी ने कहा—'आज के युग में पैसा भी चाहिए, पण्डित जी! प्रसिद्धि भी चाहिए!'

राजकुमारी ने जिस विश्वास और बल के साथ अपनी बात कही, पण्डित जी को वह पसन्द नहीं आई, किन्तु उन्होंने अपने मुँह में आई हुई बात

रोक ली। उसी समय सरला कमरे में लौट आई। उसने आते ही कहा—'मैं रात सो नहीं सकी। जीजी से बात करती रही।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'यह स्वाभाविक भी था। दोनों बहिनों को कुछ दिनों के लिये बिछुड़ना था।'

वे सब भोजन के लिये चले। राजा साहब संध्या समय थोड़ी शराब पीते थे। कभी अधिक पी लेते थे। परन्तु उन दिनों जाने उनके मन में क्या आया कि वे शराब नहीं पी रहे थे। सम्भव है, पण्डित ज्ञाननाथजी के कारण वे शराब से दूर हो गये थे। कोठी में गीता प्रवचन होता था, तो इसीलिए सात्विक बन रहे थे। जब ज्ञाननाथ जी उन लड़कियों सहित भोजन कक्ष में गये, तो तभी रानी ने उन्हें सुनाकर कहा—'पण्डितजी, आपके आने से किसी और का लाभ हुआ या नहीं, परन्तु राजा साहब का जरूर हुआ। देखती हूँ, आजकल शराब का पीना छुट गया। शायद स्थगित हो गया।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'नशा एक शौक है। फिर स्वभावगत भी बन जाता है। खूराक हो जाता है। और नशा किया ही इसलिये जाता है कि आदमी अपनी मानसिक स्थिति से सन्तुष्ट नहीं होता। वह कुछ देर के लिए किसी दूसरी स्थिति का अनुसरण चाहता है।'

राजा साहब बोले—'पण्डितजी, आपने ठीक कहा।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'नशा प्रमाद पैदा करता है। तेजी लाता है। परन्तु ज़ब नशा उतरता है, तो मनुष्य अपने मन की स्वाभाविक तेजी से भी हाथ धो बैठता है। उसके शरीर का स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाता है।'

राजाजी बोले—'यह सत्य है। सही है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'और इसी का दुष्परिणाम होता है। मनुष्य का जल्दी अन्त,—उसकी मृत्यु!'

सभी के सामने थाल आ गये। खाना आरम्भ हो गया।

रानी ने कहा—'आजकल भोजन भी कम करते हैं, राजा साहब!'

पण्डितजी ने कहा—'नशे ने भूख मार दी।' वह बोले—'यदि आगे नशा न करेंगे, तो शरीर का प्राकृतिक गुण फिर विकसित होगा। शरीर को भूख लगेगी। राजा साहब खूब भोजन करेंगे।'

राजा साहब ने पूर्ण विश्वास के साथ कहा—'मैं अब शराब न पीऊँगा ! हजारों रुपया पानी में बहा दिया, अब आगे ऐसी भूल न कर सकूँगा ।

: ३७ :

योरोप से कई पत्र कमला ने लिखे । पिता और बहिन के अतिरिक्त राजा साहब और उनकी कुमारियों के नाम भी पत्र दिये । उस सद्भावना मिशन के समाचार भारतीय पत्रों में भी प्रकाशित हो रहे थे । किस देश में और कहाँ, उनका किस प्रकार स्वागत हुआ, पत्रों द्वारा इसे विशेष महत्व दिया जा रहा था । कमला ने अपने एक पत्र में लिखा, ऐसा लगता है कि योरोप स्वर्ग है, ऐशिया नर्क ! उसने बताया कि हमारे देश में छोटी-छोटी बातों पर झगड़े होते हैं, ईर्षा, द्वेष के वीभत्स चित्र आये दिन देखने को मिलते हैं, परन्तु यहाँ ऐसे दृश्य नहीं दीख पड़ते ।

उस पत्र को देखकर, ज्ञाननाथ जी ने कहा—'दूर के ढोल सुहावने लगते हैं ।' वह बोले—हमारा देश भी एक दिन ईमानदार था । दूसरे के पैसे को मिट्टी मानता था ।'

उस वार्ता के समय राजा साहब का परिवार भी उपस्थित था । तभी राजा साहब बोले—'पण्डितजी, हमारा देश योरोप का मुकाबिला नहीं कर सकता । उसका चलन और है, जीवन का दृष्टिकोण और !'

पण्डितजी ने कहा—'मैं इस बात को नहीं मान सकता । विश्व भर के आदमियों की आवश्यकता एक है । समस्या एक ।' वह बोले—'जिस चलन की बात आप लेते हैं, वह अर्थहीन है । बात यह है कि योरोप में रोटी का अभाव नहीं । सरकार अपनी जनता के प्रति उत्तरदायी है । वह जनता को रोटी, कपड़ा और मकान मुहैया करती है । और यहाँ कोई पूछने वाला नहीं । जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी होने पर आदमी उन्नतिशील बनता है । जीवन का उत्तरदायित्व समझता है । अच्छाई-बुराई की ओर भी देखता है । योरोप ने आज जिस विज्ञान का आविष्कार किया है, एक दिन समर्थ

भारत ने भी ऐसे चमत्कार का प्रदर्शन किया था।' पण्डितजी कहने लगे—'राजा साहब, समय का फेर अपना काम करता है, जो आज उठा है, कल गिरता है। योरोप अभी बच्चा है। जवान है। जीवन के चौराहे पर आकर खड़ा हुआ है! मानता हूँ कि वह विश्व भर का पथ-प्रदर्शक बन सका है। यह भी स्वीकार करता हूँ कि उसने अपने जीवन से कुछ दिया है। संसार आज उसकी ओर देखता है। परन्तु मुझे इतना भी कहने दीजिये कि योरोप ने जो कुछ भी विश्व को दिया, यदि वह न देता, तो इन्सान भला था, अपने-आप में शान्त था। बताइये, क्या उसने शान्ति दी? विज्ञान का यही अर्थ है कि जापान के लाखों नरनारी पाँच मिनट में समाप्त कर दिये जायें? योरोप ने शीतलता न देकर आग दी है। विश्व भर में फैला दी है कि जिससे इन्सान जले, जलता रहे। इसीलिए, मेरे मन में बात उठती है कि जवान योरोप, जब जीवन के मध्याह्न काल में ही स्वयं जलने लगा, संसार को जलाने लगा, तो निश्चय समझिये, बस स्वयं भी अधिक देर तक न टिक सकेगा। वह जल जायगा। मर जायगा। लेकिन भारत के साथ यह स्थिति नहीं रही। भारत ने किसी को दास बनाना नहीं चाहा। भारत कभी भी कहीं युद्ध करने नहीं गया। उसने अपने शांति-दूत सर्वत्र भेजे। भारतीय संस्कृति, भारतीय धर्म का उपदेश विश्व को दिया। वह भी इसलिए कि भारत के समान वे भी शांति और सुख पायें। और मेरा मत है कि सहस्रों वर्ष बीतने के बाद भी, भारत जीवित है। वह अपनी थाती को छाती से लगाये हुए है। मुस्लिम जाति के समान, योरोप की जातियाँ भी डाकू और चोर बनकर संसार में फैलीं। संसार को ठगने के लिए प्रस्तुत हुईं। भारत में अँग्रेज आये, तो उन्होंने क्या किया! इस का सर्वस्व हरण किया। इस देश की संस्कृति को भी नष्ट करने का प्रयत्न किया। अपने स्वार्थ के लिए समूचे देश में कत्लेआम मचा दिया। माताएँ और बहिनों की लाज छीनी, युवकों को फाँसी पर चढ़ाया। और जब यहाँ से जाने लगे, तो उन्होंने बूढ़े और कमजोर भारत की कमर में ऐसी लात मारी कि वह बेहोश हो गया। मरते-मरते बच गया। देखा आपने, समूचे देश में हिन्दू मुसलमानों का झगड़ा हो गया। वह झगड़ा अँग्रेजों ने कराया। हिन्दू और मुसलमानों को उन लोगों ने आपस में लड़ा दिया। भारत की जमीन इन्सान के लहू से भर गयी। बच्चे, बूढ़े, जवान—

औरत-मर्द—सभी का शरीर टुकड़े-टुकड़े बनकर छटपटा गया।' वह बोले—'मेरा अपना मत है, यह अंग्रेज जाति निहायत चतुर है। अपने स्वार्थ के लिये सभी-कुछ कर सकती है। दोस्त का भी सिर कटा सकती है!'

राजा साहब ने कहा—'अंग्रेजों का अब भी हम पर प्रभाव है।'

पण्डित ने फिर लाल बनकर कहा—'हमें दास क्या बनाया, आत्महीन कर दिया। कायर बना दिया। हमारा जीवन बदल दिया।'

राजकुमारी प्रमदा ने कहा—'पण्डितजी, अंग्रेजों ने हमें प्रकाश दिखा दिया!'

पण्डित जी चकित बन गये; वे उसी भाव में राजकुमारी की ओर देखकर बोले—'प्रकाश नहीं, तुम्हें अंधेरे में डाल दिया। तुम्हारी स्वाभाविक मनोदशा का भी नाश कर दिया। बताओ क्या तुम्हारे पास शांति है? मन में चैन है? मुझे तो आज प्रत्येक भारतीय शौकीन और चिड़चिड़ा लगता है। अंग्रेज गये, तो उन्हीं के खानदान और पहनावे में रुचि रखता है। भारतीय बनकर भी हम अंग्रेजी में बात करते हैं। अंग्रेजियत को स्वीकार करना अपना गौरव समझते हैं। सचाई यह है कि अब हमारे पास अपना कुछ नहीं है। पराया है।'

राजा साहब बोले—'पण्डितजी, दो सौ वर्ष की हुकूमत का रंग भी क्या आसानी से मिटता है?'

पण्डितजी ने कहा—'हां हां, वह नहीं मिटता। परन्तु अवस्था तो यह है कि आज हमें अपने देश के प्रति भी सम्मान नहीं है। हम योरोप की बातों में दिलचस्पी लेते हैं। दूसरों को बड़ा मानते हैं। अपने देश को हीन और कायर समझते हैं।'

रानी ने गम्भीर बनकर कहा—'पण्डितजी, आप ठीक कहते हैं।'

पण्डितजी ने कहा—'स्वतन्त्रता आ गयी है, परन्तु हमारे भाव अभी परतन्त्र बने हैं। हम विदेशी आईने में अपना मुँह देखते हैं।'

राजकुमारी प्रमदा ने कहा—'यह बुरा है! क्या अच्छा है!'

ज्ञाननाथ जी बोले—'योरोप के सभी देश बनिया हैं। अपने देश का माल खपाने के लिए दूसरे देशों के बाजार देखते हैं। उन पर एकाधिपत्य रखना चाहते हैं।'

राजा साहब ने कहा—'अमेरिका भी यही चाहता है। वह अपने डालरों के द्वारा संसार के बाजारों को खरीद रहा है।'

ज्ञाननाथ जी ने कहा—'व्यक्ति के समान, देश भी स्वार्थों के सम्बन्ध रखते हैं। आज अवस्था यह है कि एक हाथ में तलवार ली जाती है और दूसरा मेल करने के लिये बढ़ाया जाता है। युद्ध भी होता है और शांति का प्रयत्न भी किया जाता है।

राजाजी ने हँस कर कहा—'यह भी अजीब अवस्था है!

ज्ञाननाथ जी बोले—'जिस राजनीति का नाम प्रायः लिया जाता है, वह एक धोखा है, शब्दों का जाल-मात्र है!'

राजा साहब बोले—'आज इन्हीं शब्दों का बोलबाला है।'

उसी समय राजकुमारी प्रमदा ने राजा और रानी को सुनाया कि सरला बहिन का कार्य समाप्त हो गया। कल लौट जायँगी।'

राजा साहब ने कहा—'फिल्म बन गया? शूटिंग समाप्त हो गया?' वह बोले—'समय भी बड़ी तेजी से निकलता है। जैसे दौड़ता है।'

सरला ने कहा—'हमें यहाँ आये दो मास से ऊपर हो गया।'

राजा साहब बोले—'इतना समय एक सप्ताह के बराबर भी नहीं लगा।'

ज्ञाननाथजी ने हँस कर कहा—'समय की ऐसी ही गति होती है। जिन्दगी का पूरा सफर भी ऐसे ही कट जाता है।'

रानी ने कहा—'पण्डितजी, आप आ गये, तो इस घर में नयी भावना का प्रचार कर चले।'

पण्डितजी बोले—'मेरे पास जो कुछ था, वह दिया। मैंने भी यहाँ से बहुत कुछ लिया।'

राजकुमारी प्रमदा बोली—'आपने इस घर का रूप बदल दिया। कुछ विचार नये पैदा किये, कुछ पुराने मिट गये।'

ज्ञाननाथजी ने सुना और मुसकरा दिया।

दूसरे दिन जब पिता-पुत्री लौट चले, राजा साहब का परिवार स्टेशन तक आया। वह उद्वेग से पूर्ण था। राजकुमारियों की आँखों में आँसू थे।

सरला ने कहा—'मैं जल्दी ही फिर आऊँगी। जीजी बाहर से लौट आयें, तो मैं फिर कई मास के लिए बम्बई आ बसूँगी। दो चित्रों में काम करने

के लिये मैंने वचन दे दिया। एक से कुछ रुपया पेशगी भी प्राप्त कर लिया।'

उसी समय रानी ने पण्डितजी से कहा—'प्रमदा के विवाह में आप आना न भूलियेगा।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'जरूर आऊँगा। सूचना पाते ही, फिर आपके परिवार में आ बैठूँगा।'

रानी ने कहा—'आपका सहयोग हमें लाभप्रद होगा।'

ज्ञाननाथ जी हँस दिये—'वह आपको सदा सुलभ रहेगा।'

गाड़ी छूट चली। पिता-पुत्री ने फिर दिल्ली की ओर मुँह किया।

ज्ञाननाथजी बोले—'राजा साहब का परिवार सभ्य था। उदार था।'

सरला ने कहा—'हमारे सत्कार में कमी नहीं की। सदा ध्यान रखा। हमें अनुभव भी नहीं होने दिया कि नये परिवार में आये हैं, नयी जगह आये हैं।'

पण्डितजी बोले—'बम्बई बड़ा नगर है। विशाल है।'

सरला ने कहा—'यहाँ सभी कुछ नयापन है। बम्बई अंग्रेजियत का उपासक है।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'बड़े नगरों का यह भी दोष है कि यहाँ आदमी अधिक व्यस्त रहता है। और इस स्थिति के सीधे अर्थ यह हुए कि अपनी सीमा को छोड़ दूसरी तरफ नहीं देखा जाता। अवसर नहीं मिलता है। इसीलिए, यहाँ का आदमी अधिक रूखा है। उसका स्वार्थ प्रबल है, तो उसी के प्रभाव में रहता है।'

दूसरे दिन जब पिता-पुत्री दिल्ली पहुँचे, तो परिचित व्यक्तियों ने प्रश्न किया—'आप कहाँ गये थे? इतने दिन से बाहर थे?'

घर पर पुराना नौकर आ गया था। विनोद बाबू की मा के हाथों में घर की चाभियाँ थीं, और इतने दिन नौकर पर उन्हीं का नियन्त्रण था।

उन्हीं दिनों ज्ञाननाथ जी ने सरला से कहा—'मैं बाहर गया, तो यहाँ लोगों को कारण बताते भी थक गया। कुछ व्यक्तियों ने यह पसन्द भी नहीं किया। अब तुम बम्बई जाओ, तो अकेली जाना। आखिर मेरे जाने से तुमने क्या लाभ उठाया? केवल मैंने आत्मिक-हीनता का परिचय अवश्य

दिया। सोचा था, तू अकेली जायेगी, तो सुरक्षित न रह पायेगी। परन्तु मेरा तो कहीं भी उपयोग नहीं हुआ।'

सरला ने कहा—'यह तो जीजी का और तुम्हारा निर्णय था। मेरा नहीं। मुझे तो अपने ऊपर भरोसा था।'

ज्ञाननाथ जी बोले—'माता-पिता सन्तान पर भरोसे नहीं करते। उसे समझने का अवसर नहीं देते।'

सरला ने कहा—'यही दम्भ है। विश्वास की कमी भी है।'

आतुर भाव में ज्ञाननाथ जी बोले—यदि सन्तान चरित्रहीन हो, तो क्या उसे रोका जा सकता है? समर्थ सन्तान स्वयं अपने भले-बुरे को सोचती है। अपना निर्णय करती है।'

दिल्ली में ही कमला का पत्र मिला। वह पत्र रूस से आया। कमला की अशफाक मियाँ से भेंट हो गयी, यह भी उस पत्र से विदित हुआ। अपने पिछले एक पत्र में कमला ने सरला को लिखा था, विनोदबाबू उससे मिल लिये। एक सप्ताह तक दोनों साथ-साथ रहे लेकिन दिल्ली में प्राप्त हुए, सरला के पत्र में कमला ने यह भी लिखा कि अशफाक मियाँ से उसने विवाह की बात की है। वह इस प्रस्ताव को गौरव की बात मानते हैं। परन्तु देश की मानसिक स्थिति को देख, उपयुक्त भी नहीं मानते। अन्तिम बात तुम दोनों को करनी है। वे जल्द ही भारत लौटने वाले हैं। किन्तु वे फिर रूस आयेंगे, यह भी मुझसे कहा है।

अपनी जीजी का वह पत्र पाकर, एकाएक सरला ने अनुभव किया कि जरूर, अशफाक मियाँ ने रूस में अपना स्थान बना लिया है। और यह भी मनोविज्ञान के न जाने कौन से पृष्ठ की बात थी कि जब से सरला के मन में अशफाक की बात डाली गयी, तो प्रायः उसके प्रति सोचती। वह यह भी चाहती कि अशफाक आये, उसे दिखायी दे। वह हँसता हुआ अशफाक... मुसकराता हुआ! अपने अल्हड़पन का प्रदर्शन करता हुआ अशफाक! और चूँकि सरला ने नृत्य और गाने में अपने प्राण को लगा दिया था, वह उसका व्यापार बन गया था, तो उसे कलात्मक और साहित्यिक व्यक्ति के प्रति अभिरुचि रखना अस्वाभाविक भी नहीं था। अशफाक मियाँ की रचनाएँ रूस में छपीं, यह सुनना उसे बहुत अच्छा लगा। रूस भले ही, उसके देश से छोटा

हो, भूखा हो, परन्तु वह उसके समक्ष के विश्व में अपना एक विशेष स्थान बनाने में समर्थ हुआ, तो सरला की दृष्टि में वह महान था। अज्ञेय भी था। अशफाकमियाँ ने जिस भावना पर टिककर सरला के चित्र को रूसी चित्रकार द्वारा बनवाया, उसे फिर सरला को भेंट कर दिया, यह भी सरला ने अशफाक मियाँ की कलात्मक और साहित्यिक प्रवृत्ति का ही सूचक समझा। अशफाक-मियाँ ने उस चित्र के किनारे पर लिख दिया था, 'अशफाक की ओर से भेंट'। और उस भेंट के अन्तर्गत जिस हृदय की पुकार थी, अर्चना थी, पहिले भले ही सरला ने अनुभव नहीं किया, परन्तु अब उसे स्पष्ट हो गया, कि अशफाकमियाँ के मन में जो कुछ आया, उसे प्रगट नहीं किया। अपने हृदय में ही छिपाये रखा। और अब सरला के मन में था कि अशफाक आये,... जल्दी आये! वह उसे दिखायी दे। वह स्वयं उससे कहे, कि सरला देवी! तुझे प्यार करता हूँ। तेरी अर्चना करता हूँ। तू रूपवती है न,—भावनामयी; तो मैं भी अपना हृदय तुझे भेंट करता हूँ। यों सोचती सरला, क्या वह इतनी बात को सुनकर तटस्थ रहेगी। वह मौन रहेगी! न, वह स्थिर न रह सकेगी! वह तुरन्त ही उस अशफाक की ओर देख, शरमा जायेगी! वह स्वयं भी आँखें झुका कर कह देगी, मैं भी तुम्हें प्यार करती हूँ, अशफाकमियाँ! मैं भी तुम्हें अपना हृदय भेंट करती हूँ।'

किन्तु मन की ऐसी स्थिति आते ही, सरला चौंक जाती, वह तुरन्त दुर्दान्त विचारों में डूब जाती कि जिनका कहीं भी कूल-किनारा नहीं था। उन विचारों का सरला के विचारों से तनिक भी सम्बन्ध नहीं था। मानो वे उसके विचार नहीं थे। समाज के थे। देश के थे। वे एक व्यक्ति के विचार से मेल नहीं खाते थे। और जिनका अर्थ था, अशफाक मियाँ से विवाह करने का अर्थ है, समाज-द्रोह, धर्म-द्रोह और देश-द्रोह! उस अवस्था में सरला मानो अपने से ही द्रोह करना चाहती। वह विद्रोही बनकर, अपने-आप में झुँझलाती और चीत्कार करती, तो मेरी इच्छा स्वतन्त्र नहीं है! मेरा मन स्वतन्त्र नहीं है! अशफाक आदमी नहीं है! भला नहीं है! सुशिक्षित नहीं है! आखिर उसमें क्या है! लाखों हिन्दू युवक क्या उसके समक्ष हीन नहीं हैं। कायर नहीं है! वह मुसलमान है, तो इसीलिए नापाक है। कमीना है! क्षुद्र है! उस अवस्था में ही सरला कहती, हाय! इसीलिए तो हिन्दू

जाति का पतन हो गया। जाति का धरातल गिर गया। बड़प्पन का भाव इस जाति को सदा ही अन्धेरे में ले जाकर पटकता रहा...हे राम! सरला कहती, मैं जाति को सुना दूँगी, मैं धर्म से कह दूँगी, तू अन्धा है। जाति अन्धी है। विवेक-भ्रष्ट है। मैं जाति के बन्धन से परे हूँ। मैं देश की बेटी हूँ। देश के लिये जन्मी हूँ। देश के लिए ही मरना अपना गौरव मानती हूँ। मैं जाति और धर्म का भी आदर करती हूँ, उसके गौरव की प्रतिष्ठा करती हूँ। परन्तु जो उसके पास अविचार है, इसे क्या मैं मान सकती हूँ। न, मैं अपना पथ स्वयं निर्मित करना चाहती हूँ। मैं भी प्यार करने का अधिकार रखती हूँ। मैं अपना प्यार अशफाक मियाँ को दे सकती हूँ।

बम्बई से लौटकर, सरला के मन की अजीब स्थिति बन रही थी। मानो उसके मन पर बादल आ रहे थे। वे उस मन को ढँक रहे थे। तभी कमला का पत्र आया कि वह आ रही है। अशफाक मियाँ और विनोदबाबू भी आ रहे हैं।

: ३८ :

पण्डित ज्ञाननाथ उन व्यक्तियों में से एक थे कि जिनका जीवन न चौड़े-रास्ते पर चल रहा था, न संकरी पगडण्डी पर। वे अपने को मध्य वर्गीय समाज का व्यक्ति मानते थे। उसी प्रकार के रास्ते पर चलना पसन्द करते। परन्तु पण्डितजी का प्रभाव सभी पक्षों पर था। वे नेता नहीं थे, परन्तु समाज पर नेतृत्व करने वालों के साथी तथा सलाहकार अवश्य थे। वे सभी ओर आदरणीय और सम्माननीय समझे जाते थे।

कमला योरोप से लौट आई। विनोदबाबू भी आ गये। उन्हें आना नहीं था, परन्तु मा की प्रेरणा और कमला का अनुरोध उन्हें कुछ दिन के लिए भारत में ले आया। जब वह आये, तो उनकी मा द्वारा पुत्र और कमला के विवाह की बात चली। तय हो गयी। बिना किसी आडम्बर विवाह संस्कार की विधी भी पूर्ण कर दी गयी। कमला विनोदबाबू के परिवार की

अंग बन गयी। उस विवाह के अवसर पर नगर के विशिष्ट व्यक्ति आये और अपना शुभाशीष तथा शुभ कामनाएँ देकर लौट गये। यद्यपि, सरला की इच्छा थी कि जीजी के विवाह का विशेष आयोजन हो। परन्तु यह इच्छा न कमला की थी, और न विनोदबाबू ही इस पक्ष में थे। कमला चाहती थी कि उसी अवसर पर अशफाक मियाँ और सरला भी दाम्पत्य जीवन में बँध जाते। परन्तु अशफाक को कुछ रुकना पड़ा। विनोदबाबू जब फिर विलायत लौटे, तो तभी अशफाक मियाँ का पदार्पण देश में हुआ। इस बीच में एक नयी बात यह अवश्य हुई कि कमला ने पिता को इस बात के लिये तैयार कर लिया कि सरला का हाथ अशफाक मियाँ को थमा दिया जाये। उसने पिता को बताया कि दोनों के विचार एक हैं। दोनों की सहमति एक।

पण्डित ज्ञाननाथजी कई दिन तक इन विचार को लिये रहे। वह इस ऊहापोह में रहे कि क्या करें! क्या कहें! मानो उनकी परीक्षा ली जा रही थी। उनसे कहा जा रहा था, यह कड़ुवा ग्रास है, इसे मुँह में लो। सटको। यद्यपि, सिद्धान्त रूप से पण्डित जी इस बात को मानते थे कि लड़की स्वतंत्र है। वह किसी से भी विवाह कर सकती है। पसन्द उसकी है। लेकिन जहाँ तक व्यावहारिक बात का सम्बन्ध था, वह उन्हें मान्य नहीं थी। वह सोचते, यह अशफाक और सरला का दुर्भाग्य है कि वे एक जाति के नहीं हैं। धर्म भी एक नहीं मानते। यह दोनों जिस देश में जन्मे हैं, वहाँ धर्म प्रधान है, जाति का प्रश्न भी प्रधान। ऐसी अवस्था में दोनों का किस प्रकार समन्वय होगा! यह सम्बन्ध हिन्दू जाति को किस प्रकार मान्य होगा! हिन्दू-जाति का धर्म सरला को इस बात की आज्ञा नहीं देता कि वह मुसलमान से विवाह करे। अशफाक सरीखे योग्य और सुन्दर युवक का वरण करे!

किन्तु इतना कहकर भी पण्डित ज्ञाननाथ अपने को छुट्टी नहीं दे सकते थे। यह उनकी पुत्री का प्रश्न था। उसकी इच्छा का प्रश्न था। और वह प्रश्न सिद्धान्त रूप से उन्हें देर से मान्य था। उनका जीवन ही, उस विचार के पृष्ठ-पोषण में लगा था। उन्होंने सदा ही, समाज और देश से यह कहा कि हिन्दू-मुसलमान में अन्तर नहीं। दुराव नहीं। छिपाव नहीं। दोनों अपने धर्म को मानते हैं, मानें, परन्तु एक दूसरे की घृणा करें, हीन बनाने का प्रयत्न करें, यह कदापि सुखकर नहीं, न्यायोचित नहीं। इसलिए पण्डितजी का एक

मत यह भी था कि जब हिन्दू मुसलमान की लड़की को अपने घर में ले सकते हैं, तो अपनी लड़की क्यों नहीं दे सकते ! वह कहते रहे, इन दो विशाल धाराओं का मिलना ही हितकर है। देश का तभी भला है। किसी को हीन मानना कायरता है।

लेकिन उपदेश देना और है, उस पर व्यवहार करना और। पण्डितजी के समक्ष जब स्वयं ही पुत्रियों ने वह परीक्षात्मक निर्णय रख दिया, तो वे न उसे ठुकरा सकते थे, न एकाएक स्वीकार कर सकते थे। वे उलझन में पड़े थे, इस विषय को दिन में सोचते थे, रात में सोचते थे। सचमुच पण्डित ज्ञाननाथ चिन्तित थे। उन्होंने दुराग्रही बनना तो पसन्द किया नहीं, किन्तु जिस निर्णय की वह खोज में थे, वह उनसे दूर था। मानो उनके जीवन का समूचा तत्व, विवेचन, आत्म-प्रतिष्ठा का भाव उनका गला घोंट रहा था। उनकी आत्मा का वृहद् रूप उन्हें दिख रहा था। वह श्वेत था। सरल था। उस आत्मा के समक्ष किसी के अधिकार को मारना अभीष्ट कदापि नहीं। उन्हें पुत्री की इच्छा का दमन करना भी पसन्द नहीं। उन्हें यह भी रुचिकर नहीं कि उनकी लाडली सरला अपनी इच्छा का दमन करे। वह जीवन को घुट-घुट कर काटे। अनिच्छित व्यक्ति के साथ बँधे। वह अयोग्य व्यक्ति को अपना पति स्वीकार कर ले।

कमला को पिता से अभी अन्तिम निर्णय नहीं मिला था, इसलिए जब उसने कई दिन तक उन्हें उलझन और परेशानी में पड़ा पाया, तो उसका माथा ठनका। अनायास उस घर का शान्त वातावरण जैसे विषादमय बन गया। पिता-पुत्रियों का एकमत मिट गया। यद्यपि, वे सब प्रातः के समय एक स्थान पर चाय पीते, दोपहर और सन्ध्या का भोजन भी पूर्ववत् बैठकर खाते। परन्तु अब वे पहिले के समान हँसते नहीं। एक दूसरे को देखकर प्रसन्न नहीं बनाते। इसलिये दोनों पुत्रियाँ समझतीं कि पिताजी के मन में बात है,—अशफाक के साथ विवाह की बात ! अतएव, वे दोनों सोचतीं, हाय ! क्या यह अच्छा हुआ। बैठे-बिठाये पिताजी को कातर और दुःखी बना दिया, यह क्या न्याय युक्त हुआ ! वे दोनों सोचतीं कि उनके पिता इतने भारी नहीं हैं। प्रबल नहीं हैं कि कोई बोझ उठा लें। किसी विरोधी बात को अनायास ही मान लें। कमला कहती, पिताजी तर्क नहीं पसन्द करते। इन्होंने जीवन

भर समझौता किया है। किन्तु सरला का मत था कि समझौता भी सदा नहीं किया जा सकता। व्यक्ति को एक ओर टिकना पड़ता है। किसी एक पक्ष की बात को मानना पड़ता है। कमला कहती, पिताजी चिन्तित हैं। उलझन में हैं। सरला कहती, वह क्यों नहीं कह देते कि मुझे यह सम्बन्ध मान्य नहीं। विवाह दैहिक है, आत्मिक नहीं। यह वासना की वस्तु है, पवित्रता की नहीं।

किन्तु उस दिन जब अशफाकमियाँ का बम्बई से पत्र आया तो कमला ने पिताजी को बता दिया कि अशफाक भाई भारत आ गये। बम्बई पहुँच गये। यहाँ आने वाले हैं। उसी समय उसने कहा—'पिताजी, आपने क्या निर्णय किया ? सरला और अशफाकमियाँ का विवाह स्वीकार किया ?'

इतनी बात सुनी, तो ज्ञाननाथ जी जैसे चौंक गये, वे कमला की ओर देखने लगे।

कमला ने कहा—'देखिये पिताजी, आप इस प्रसंग पर शायद चिन्तित हैं। उलझन में हैं। और मैं समझती हूँ कि आपकी परेशानी का कारण क्या है। किन्तु यदि आप सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते, तो छोड़ दीजिये, इस विषय को ! सरला बम्बई जायेगी। वह स्वयं अपना निर्णय कर लेगी, चाहेगी, अशफाक को अपना पति मान लेगी।'

ज्ञाननाथजी ने इतना सुना, तो पुत्री को घूर कर देखा। जैसे उसने उनके मर्मस्थल पर आघात किया। पिता को हीन भी अनुभव किया। इसलिए, उनके मन में क्रोध पैदा हुआ अपने पर हुआ, पुत्री पर हुआ।

किन्तु कमला ने फिर कहा—'पिताजी, मैं आपकी स्थिति समझती हूँ। इस प्रसंग का समस्त दोष मैं अपना मानती हूँ। सचाई यह है कि सरला को बहिन के नाते मैं अतिशय प्यार करती हूँ। मैंने समझा कि अशफाक योग्य है। प्रतिभा सम्पन्न है। कलाकार है। सरला का उससे अच्छा सम्बन्ध निभ सकता है। दोनों की रुचि एक है। एक प्रकार से दोनों का जीवन एक। दोनों में भावना की प्रधानता है। इसलिए, बहिन का जीवन सफल हो, सजग हो, बड़ी बहिन के नाते यही मेरी अभिलाषा है।'

ज्ञाननाथजी बोले—'बेटी, मैं तेरी बात समझता हूँ। मैं समर्थक हूँ। सरला मेरी बेटी है, तो पिता के रूप में उसके प्रति शुभाकांक्षी होना मेरा

स्वाभाविक गुण है। किन्तु मेरी पुत्री का समाज में आदर हो, यह सम्बन्ध मान्य हो; मैं इसी बातपर टिका हूँ।'

कमला ने कहा—'पिताजी, हमारा समाज इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करेगा। हिन्दू-धर्म आज्ञा नहीं देगा। हमें अपने पौरुष पर निर्भर बनना पड़ेगा। पुत्री का भविष्य उज्ज्वल हो, इसके लिए, कुछ ऊँचे स्तर पर बैठ कर सोचना होगा।'

ज्ञाननाथजी ने कहा—'मेरी आत्मा इस सम्बन्ध को स्वीकार करती है। सिद्धान्त की बात आज भी गुरू बनी हुई मेरी आँखों के समक्ष खड़ी है। किन्तु जनसाधारण की आवाज क्या होगी, यही बात मेरे मन में खटकती है। मैं चोरी नहीं चाहता। मेरी पुत्री, या मैं कोई गुप्त काम करें, इसे भी मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मेरा जीवन कभी भी पुस्तक के बन्द पृष्ठों के समान नहीं रहा। मैंने अपने को खुला रखा है। अपने विचारों को सभी के समक्ष रखा है। यह विवाह भी यदि सम्पन्न हुआ, तो इस रूप में होगा कि मैं ढिंढोरा बजाकर लोगों को सुनाऊँगा। तभी यह विवाह सम्पन्न होगा।'

उस समय सरला निकट के कमरे में थी। वह एक बार पिता के कमरे की ओर आई और जीजी को बातें करती देख, द्वार से लौट गई। वह समझ गयी कि जीजी और पिताजी की बात का विषय क्या है। इसीलिए, उसने अपने को पृथक रखना पसन्द किया। जो अन्तिम बात होगी, जीजी उसे बता देगी। कितनी सरल और भोली है उसकी जीजी कि कुछ भी उससे नहीं छिपाती। सभी कुछ कहती है। जीजी उसे अतिशय प्यार करती है।

उसी समय कमरे में बैठे हुए ज्ञाननाथजी ने फिर आगे कहा—'बेटी, मेरे जीवन का किनारा निकट है। तुम दोनों पुत्रियों की इच्छा मारना मुझे अभीष्ट नहीं। देखती हो, तुम्हारे जीवन में ही मेरा अस्तित्व खो गया है। मैंने तुम दोनों का अस्तित्व स्वीकार कर लिया। जितनी प्रतिष्ठा मैंने जीवन में नहीं पायी, वह तुम पा चुकी हो, जितना पैसा मैंने जीवन में उपार्जित नहीं किया, सरला उतना ले सकी है। तुम दोनों समर्थ हो। अपनी इच्छा का स्वयं उपभोग कर सकती हो, तुम मुझसे पूछती हो, मेरा आदर करती हो, यही मेरा गौरव है। तुम्हारी बुद्धिमानी है। नहीं तो समर्थ सन्तान मा-

बाप का मुँह नहीं देखती। वे अपने रास्ते पर चलती हैं। लक्ष्य की ओर देखती हैं।

कमला ने कहा—'पिताजी, आप हमारे देवता हैं। मा नहीं हैं तो क्या, आप ही पिता हैं, आप ही मा हैं।'

एकाएक गद्‌गद्‌ भाव में ज्ञाननाथजी बोले—'बेटी, इस बूढ़े बाप का आशीष तुम्हें प्राप्त है। भगवान का हाथ तुम्हारे सिर पर है।' उन्होंने तभी अपनी वाणी पर बल दिया। आँखों में तेज आया। कहा—'मेरा भी निश्चय है कि सरला बेटी का विवाह उसकी इच्छानुसार होगा। अशफाक से होगा।'

बरबस ही, कमला के मुँह से निकला—'पिताजी!'

ज्ञाननाथ उस समय भावना में भरे थे। उद्वेग से पूरित थे। वे तुरन्त रो दिये। उसी अवस्था में बोले—'बेटी, मैं कई दिन से इस उलझन में पड़ा था। मैं अपने सिद्धान्त को छोड़ देने के लिए एक क्षण भी तैयार नहीं हुआ। अब निर्णय हो गया, तो मुझे भी सन्तोष मिल गया।'

किन्तु पिता को रोता हुआ देखकर, कमला की आँखें भी भर आई थीं। वह स्वयं रो पड़ी। उसी दिन उसने सरला को बता दिया कि पिताजी ने अशफाक मियाँ ने साथ उसका विवाह करना स्वीकार कर लिया।

अशफाकमियाँ बम्बई से दिल्ली पहुँच गये। अब वे ऐसे गुप्त व्यक्ति नहीं रहे कि जिन्हें कोई न जानता हो। देश का शिक्षित वर्ग अशफाक के नाम से परिचित था। वह अब श्रद्धामय भी था। अशफाकमियाँ के दिल्ली आगमन पर लोगों ने स्वागत किया। सुना कि बम्बई के साहित्यकारों ने भी उनका अभिनन्दन किया। किन्तु जब वह पण्डित ज्ञाननाथ के घर आया, तो स्वयं उनके चरणों में झुक गया। पण्डितजी बोले—'तुम्हें बधाई, अशफाकमियाँ! तुम विदेश में जाकर चमके। अपने देश का प्रतिनिधित्व भी सफलतापूर्वक कर सके।'

अशफाकमियाँ ने कहा—'आपका आशीष मेरे साथ था। वह भी मेरा सहारा था।'

इस प्रकार जब वर और वधू पास-पास आ गये, तो वह विवाह की बात घर से निकली और नगर में फैल गयी। अखबारों में भी यह खबर छप गयी।

पण्डित ज्ञाननाथ के पास बधाई के सन्देशे आने लगे। सरला को भी मुबारिक बादियाँ दी जाने लगीं।

किन्तु हर्ष के उस वातावरण में- जिस जहरीले विष को घोला गया, वह सम्प्रदायवाद था। धर्म और जाति के समर्थक तुरन्त ही मैदान में आगये। सभायें की गयीं। लोग ज्ञाननाथ जी से मिले। उन्होंने हिन्दू जाति की विशालता, मुसलमान जाति की क्षुद्रता का पूर्ण रूप से विवेचन किया। पण्डितजी को समझाने का प्रयत्न किया कि हिन्दू जाति में लड़कों की कमी नहीं। बहुतेरे योग्य वर हैं। और हिन्दू जाति के पक्ष की जो सबसे बड़ी दलील थी, वह यह कि जिस जाति के कारण अभी-अभी देश में कत्लेआम हुआ, भारतमाता की माँग को खून से भरा गया, तो आप सरीखे विचारक का यह कर्तव्य नहीं कि विधर्मी को अपनी पुत्री दें। जाति को नीचा दिखायें।

पण्डित ज्ञाननाथ के निर्णय के विरोध में जिन सभाओं का आयोजन किया गया, उनमें प्रमुख हाथ रमाकान्त का था। वह उस पक्ष का नेता था। नगर में सर्वत्र इस बात की चर्चा फैल रही थी कि पण्डित ज्ञाननाथ ने अच्छा नहीं सोचा! हिन्दू जाति के मुँह पर थप्पड़ मारना पसन्द किया है। जिस हिंदू कौम का जीवन भर सहारा लिया, जिससे प्राण पाया, उसी की कोख में मारने का निर्णय किया। राम-राम! ऐसा भला पण्डित, ऐसा सुधारक, इतना विचारशील, सचमुच ही, मूर्ख निकला! जाति-द्रोही निकला। नास्तिक निकला।

किन्तु उन हिन्दुओं में जो उग्र विचार के व्यक्ति थे, उनका मत और था। वे ज्ञाननाथ और उनकी पुत्री को ही खत्म कर देना पसन्द करते थे। यद्यपि, पण्डित ज्ञाननाथ के पास जो शुभकामनाएँ आईं, वे इतनी मुसलमानों की नहीं थीं, जितनी हिन्दुओं की। उनमें प्रायः एक ही बोल था, एक ही स्वर, आपने समय की पुकार को सुना, उसे बल दिया। चुनाव अच्छा किया। कन्या के लिए योग्य वर प्राप्त किया।

परन्तु नगर के समाज में चहुँ ओर हाहाकार था। लोगों को कोई बात मिलनी चाहिए थी, जिससे उनका मनोरंजन होता। चुनाव के बाद वहीं मसाला उनको मिला। जहाँ चार व्यक्ति एकत्र होते कि यही प्रश्न चलता। अवस्था यह हुई कि नगर की पुलिस को पण्डित ज्ञाननाथ के घर पर पहरा बैठा देना पड़ा। उनका बाजार निकलना बन्द हो गया। लड़कियों ने भी

आना-जाना कम कर दिया। उस अवस्था को देखकर, ज्ञाननाथजी की इच्छा थी कि विवाह के बाद सन्यास लेंगे। रावी का दरिया छूट गया तो क्या, गंगा का किनारा पकड़ेंगे। वह ईश्वर भजन करेंगे। सरला बम्बई जायेगी, फिर रूस! वह एक बार पूरे योरोप का भ्रमण करेगी। वहाँ भारतीय नृत्य का प्रदर्शन करेगी।

लेकिन, उस अवस्था के आने से पूर्व, उस विवाह की चर्चा पर ही हिन्दू समाज ने जो तूमार बाँधा, बात का बतंगड़ बनाया, उसे देख, पण्डित ज्ञाननाथ के मन में अपनी ही जाति के प्रति अतिशय दुर्भावना पैदा हुई। उनका मानसिक धरातल अत्यन्त क्षुब्ध बन गया। उन्होंने पैर उठा दिया था। वह आगे बढ़ गया था। बात फैल गयी थी। सभी के कानों में आ गयी थी। इसलिए, वह उठा हुआ पग अब पीछे नहीं हट सकता। अशफाक ने बार-बार कहा, इस विवाह को रोक दिया जाय, स्थगित कर दिया जाय! किन्तु ज्ञाननाथजी ने तभी तब दृढ़ स्वर में कहा—'अब नहीं रुकेगा। ज्ञाननाथ है, तो विवाह जरूर होगा। यह तो मेरे सिद्धान्त की पूर्णाहुति है। इसके बाद क्या मेरा और कोई कर्म रहेगा।'

लेकिन दिखायी यह देता था कि पण्डित ज्ञाननाथजी भले ही अपनी कन्या का विवाह कर रहे थे, उस कन्या पर उनका अधिकार था, किन्तु वह हिन्दू-समाज इस बात को मानने के लिए बाध्य नहीं कि ज्ञाननाथजी का निर्णय ही अन्तिम निर्णय था। समाज भी उस सरला पर अपना अधिकार मानता। उसके प्रति अपना उत्तदायित्व भी अनुभव करता। कदाचित इसीलिए, शहर का वातावरण विषैला और गन्दा बन गया। दोनों पक्ष तुल गये। एक विवाह कर रहा था, दूसरा रोक रहा था। दोनों जिद्दी थे। दोनों के पास अपने सिद्धान्त थे। एक पक्ष कहता, सिद्धान्ततः सरला पर जाति का अधिकार है। उसका विवाह हिन्दू-जाति में ही हो सकता है। किंतु दूसरा पक्ष इस बात का विरोध करता। वह कहता, व्यक्ति की स्वतन्त्रता अजेय है। सरला किसी से भी विवाह कर सकती है। कानून नहीं रोकता। किन्तु पहिला पक्ष कहता, जाति का कानून अमर है। वह इस विवाह को अनियमित घोषित करता है। यह कानून के विरुद्ध है। जाति का कानून धर्म है। धर्म अपने पक्ष की रक्षा करता है।

इस प्रकार विरोधी तत्व बढ़ रहा था। पण्डित ज्ञाननाथ ने ऊपर के अधिकारियों को लिख दिया था। फलस्वरूप, पुलिस का सहयोग उन्हें पूर्णरूप से प्राप्त था। समय पर वह और प्राप्त हो सकता था। इसलिए, पण्डितजी निश्चिंत थे। विवाह का केवल एक दिन रह गया। वह विवाह नगर के एक खुले मैदान में होने वाला था। नगर के सभी प्रकार के सुधारवादी और प्रगतिशील व्यक्तियों को निमन्त्रण-पत्र दिये जा चुके थे। सरला के पास निरन्तर उपहार आ रहे थे। उसे नेताओं और उच्च अधिकारियों से भी बधाई-सन्देश मिले थे।

विवाह से एक दिन पूर्व पण्डित ज्ञाननाथ के पास नगर के कुछ विशिष्ट व्यक्ति आये। उनमें कुछ शरणार्थी आये, वे सब पण्डितजी से निवेदन करने आये थे कि इस विवाह को रोक दें। जाति को लज्जित न करें। पण्डित ज्ञान-नाथ ने जब उन व्यक्तियों की बात सुनी, तो अत्यन्त नम्र तथा गम्भीर बनकर कहा—'आप पधारे हैं, यह मेरा अहोभाग्य है। किन्तु मैं अभी तक इतना नहीं जान सका कि आखिर मेरी लड़की का विवाह एक मुसलमान से हो, तो इसमें जाति के लिए लज्जा का प्रश्न क्या है।' वह बोले—'आज कई सौ हिन्दू बालाएँ मुसलमानों के घरों में हैं, तो हिन्दू-जाति को लाज नहीं आई! देखता हूँ, उन लड़कियों को पाने के लिए हिन्दू न घायल हुए न मरे! अब यदि मैं स्वेच्छा से अपनी लड़की मुसलमान लड़के को सौंपता हूँ, तो इसमें हीनता या लाज की क्या बात है? आप कहते हैं, यह जाति का प्रश्न है, धर्म का प्रश्न है, सो भाई! आप मेरी ओर से विश्वास कीजिये कि जाति और धर्म के लिए मेरी सन्तानें कभी बगावत न करेंगी! उसके सामने सिर झुकायेंगी! विवाह इच्छा का प्रश्न है। और व्यक्ति की इच्छा आप क्यों मारते हैं। मैं भी हिन्दू हूँ। जाति के प्रति आदर रखता हूँ।'

एक व्यक्ति ने कहा—'पण्डितजी, हम जानते हैं कि आप विद्वान हैं। समझते हैं। इसीलिए निवेदन है कि इस विवाह को रोक दें।'

पण्डितजी अपने सूखे होंठों से हँसे। उन सज्जन को लक्ष्य करके बोले—'आप तो देर से सुधारवादी हैं। क्या उस सुधार को स्वयं नहीं मानते! ज्ञाननाथ जो बात जीवन में कहता आया है, जब आज इसे उस बात को स्वयं अंगीकार करने का अवसर मिला, ऐसा साहस भी प्राप्त हुआ, तो आप

कृपा पूर्वक अपना आशीष मुझे क्यों नहीं देते। मुझसे क्यों नहीं कहते, कन्या की इच्छा का मैंने हनन नहीं किया, यह अच्छा किया,—पुण्य का काम किया!' वह तभी साँस भर कर कहने लगे—'भाई, जाति या विशेष धर्म किसी की विरासत नहीं। कोई उन्हें मानने के लिए बाध्य भी नहीं। अतएव, मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे न रोकें। मुझसे ऐसा न कहें कि मैं अपनी पुत्री की इच्छा मार दूँ। मैं अपने हाथों से ही उसका गला घोंट दूँ। देखते हैं आप, दासता का युग जा रहा है। स्वतन्त्रता का सूर्य इस देश में भी उदित हो रहा है। प्रकाश फैल रहा है। हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न बहुत दिन चला। जाने किस-किसने चलाया। अब इसे रोक दें। इस दूषित प्रवाह को बन्द कर दें। तभी जाति का भला है। देश का भला है।' इतना कहते हुए पण्डित ज्ञाननाथ अतिशय गम्भीर बन गये। वह फिर बोले—'महाशय, मैंने इस प्रश्न पर बहुत अधिक ध्यान दिया। चिन्तित भी बना। परन्तु मैंने तो सोचा, अपनी जाति और धर्म का उत्थान करने के लिये भी यह हेतु निराधार नहीं, निरुद्देश्य नहीं। जाति का प्रत्येक व्यक्ति इस पर गर्व कर सकता है। लेकिन मैंने देखा कि विचारों का प्रवाह दूसरी ओर है,—विपरीत है। सोचता हूँ, अभी जाति का दुर्भाग्य शेष है। दुर्दिनों का अन्त अभी नहीं है।'

आगन्तुकों ने समझा कि पत्थर पर पानी नहीं रुका। निदान, वह चल दिये,—चले गये।

और दूसरा दिन आ गया। जहाँ पण्डाल बना था, वहीं पर विवाह-संस्कार में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित आने लगे। उस पण्डाल में वर-वधू अभी नहीं पहुँचे थे। कमला और ज्ञाननाथ भी वहाँ नहीं थे।

नगर में शोर था; वातावरण में तनाव। चारों ओर आशंका और भय! लगता था कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा होगा। एक बार फिर दिल्ली में इन्सान का खून बहेगा। और दिल्ली में तो जाने कितनी बार खून बहा, एक बार और बहे, तो उसे देखते, क्या लोगों का मन ऊबेगा!

उसी समय नगर में तेजी के साथ बात चली, चारों ओर शोर उठा कि ज्ञाननाथ पण्डित के घर गोली चल गयी। पुलिस दौड़ी। पण्डाल में एकत्र हुए अभ्यागत भी उस घर की ओर चले। घर के द्वार पर भीड़ एकत्र हो थी। जो व्यक्ति पण्डितजी के अभिन्न मित्र थे, वे सभी आये। उन्होंने

वहाँ जाकर देखा कि कमरे में नव-वधू के वस्त्र पहिने सरला है, पास कमला है और उन्हीं के पास बैठा हुआ अशफाक है। उन सभी के सिर झुके हैं। आँखों में आँसू हैं। तभी पुलिस के एक बड़े अफसर ने बताया, एक युवक आया, धायँ-धायँ करके एक साथ कई गोलियाँ पण्डितजी की छाती पर मारने में सफल हो गया। वह युवक पकड़ लिया गया। किन्तु अपने हृदयों की धड़कन रोके हुए उस उपस्थित समाज ने देखा कि पृथ्वी पर पण्डित ज्ञाननाथ का शव पड़ा था और वह कफन से ढँका हुआ था......।